नारी की महिमा

विनोबा

नारी की महिमा

लेखक
विनोबा

संकलनकर्त्री
मीरा भट्ट

© ग्राम सेवा मण्डल
गोपुरी, वर्धा (महाराष्ट्र)

प्रकाशक
सर्व सेवा संघ-प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी 221001
फोन: 0542-2440223
Email: sarvodayavns@yahoo.co.in

यावत् स्याद् गुणवैषम्यं
तावन्नानात्वमात्मन:।
नानात्वमात्मनो यावत्
पारतन्त्र्यं तदैव हि ।।

- श्रीमद् भागवत

जब तक गुणों की विषमता है, तब तक आत्मा का अलगपन रहेगा और जब त्तक आत्मा का अलगपन है, तब तक वही परतन्त्रता है । तो परतन्त्र में से स्वतन्त्र बनने का भागवत का मार्ग यह है कि पर को स्वजन बना दो । यह मित्रता का, प्रेम का, अहिंसा का मार्ग है । लोग यह नहीं समझते और तन्त्र को बदलने की उपाधि में पड़ जाते हैं, दूसरों का तन्त्र गिराकर उसकी जगह अपना तन्त्र स्थापित करने के लिए संघर्ष करते हैं ।

अनुक्रम

१. शक्ति का मूल स्त्रोत

२. प्राचीन भारत में स्त्री की महिमा

३. सप्त शक्ति

४. ब्रह्मचर्य

५. गृहस्थाश्रम

६. सन्तति-नियमन की भारतीय दृष्टि

७. जागो हे शंकराचार्य

८. मेरो कोई नहीं रोकनहार

९. गृह-लक्ष्मी अब समाज-लक्ष्मी बने

१०. कुछ कार्यक्रम

११. सामाजिक समस्याएँ

१२. आत्मनिर्भर बनें

१३. स्वाध्याय और साधना

१४. मातृहस्तेन भोजनम् : मातृमुखेन शिक्षणम्

१५. ब्रह्म-विद्या-मन्दिर-लोक यात्रा

सन्दर्भ-तालिका

प्रकाशकीय

पूज्य बाबा की 'नारी की महिमा' नामक यह पुस्तक पाठकों के हाथों में अर्पित करते हुए हमें विशेष प्रसन्नता हो रही है । इसके पूर्व बाबा की 'स्त्री-शक्ति' तथा 'सप्त-शक्तियाँ' नामक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और जागरूक पाठकों ने इनका पर्याप्त स्वागत किया है ।

'नारी की महिमा' वास्तव में शब्दातीत है । वह जननी और जगज्जननी सर्वोच्च और शाश्वत पद पर अधिष्ठित है । पूज्य बाबा को जहाँ कहीं भी नारी-गौरव और नारी-शक्ति के विषय में अपने विचार व्यक्त करने का अवसर मिला है, उन्होंने सर्वात्मभाव से, उन्मुक्त मन से नारी की गरिमा एवं गौरव को विशद किया है । भारतीय धर्म-परम्पराओं और शास्त्रकारों की एकान्त, पक्षपातपूर्ण नीति की, जड़ सामाजिक विधि-विधानों की और नारी को नीचे गिरानेवाले तत्त्वों की बाबा ने स्पष्ट एवं जोरदार शब्दों में आलोचना की है, भर्त्सना की है; साथ ही नारी को बगावत करने की प्रेरणा भी दी है । एक स्थान पर उन्होंने कहा है :

"अगर मैं स्त्री होता तो न जाने कितनी बगावत करता । मैं तो चाहता हूँ कि स्त्रियों की तरफ से बगावत हो ।" बाबा तो मानते हैं कि वैराग्य-मूर्ति नारी ही बगावत की अधिकारिणी है, क्योंकि वैराग्य-वृत्ति में से ही मातृत्व सिद्ध होगा ।

बहन मीरा भट्ट ने बाबा के विविध प्रवचनों, पुस्तकों तथा पत्रिकाओं से बाबा के विचारों का संकलन करके यह रचना तैयार की है । मीराबहन बाबा के विचारों के अत्यन्त निकट रही हैं, आज भी हैं और एक नारी हैं | कहा जा सकता है कि यह पुस्तक बाबा के नारीविषयक विचारों का सर्वांगीण प्रतिनिधित्व करती है ।

स्त्री-पुरुष-अभेद तथा अध्यात्म के मूलभूत आधार पर बाबा के स्त्री-शक्ति-जागरणविषयक, सामाजिक चेतना से आप्लावित क्रान्तिकारी विचारों का ऐसा रत्नकरण्डक अन्यत्र दुर्लभ ही है । हम मीराबहन के हृदय से आभारी हैं कि इनकी श्रम-साधना से यह मूल्यवान् कृति प्रकाशित हो सकी ।

आशा है, इसका सर्वत्र समुचित स्वागत होगा ।

•

पृथिवी-सूक्त

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां

चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।

—ऋग्वेद, मण्डल १०, सूक्त १२५, मन्त्र ३

पृथ्वी कहती है :

मैं राष्ट्र की शक्ति हूँ ।

वसु यानी द्रव्य, बसाने योग्य पदार्थों को धारण करनेवाली हूँ ।

यज्ञिय यानी यज्ञ में अर्पित होनेवालों में मैं सबसे प्रथम हूँ ।

यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं

यास्त ऊर्जस्तन्व: संवभूवु: ।

तासू नो धेह्यभि न: पवस्व

माता भूमि: पुत्रो अहं पृथिव्या: । ।

पर्जन्य: पिता स उ न: पिपर्तु । ।

—अथर्ववेद, काण्ड १२, सूक्त १, मन्त्र १२

पृथ्वी तेरा मध्य जो नाभि तेरी

तेरी तनु से शक्तियाँ जो प्रकटीं,

उसमें रखकर शुद्ध कर हमें

भूमि माता, पूत्र मैं पृथ्वी का

पिता पर्जन्य से हमें भर दो ।

•

१. शक्ति का मूल स्त्रोत

दुनिया में मुझे सबसे ज्यादा आकर्षण ब्रह्मचर्य का, ब्रह्मविद्या का है । मैंने बचपन में ही ब्रह्मचर्य का संकल्प कर लिया था । मेरे दोनों भाई मेरे पीछे आये । अक्सर ऐसा देखने को नहीं मिलता । दो भाई ब्रह्मचारी रह जायँ तो तीसरे को लगता ही है कि कुलच्छेद न हो, इस वास्ते मैं कुल वृद्धि करूँ। परन्तु तीनों भाई ब्रह्मचारी रहे, यह अद्भुत घटना है । इसके परिणामस्वरूप कुलच्छेद होता है और हमारे माता-पिता को नरक में जाना पड़े तो भी मुझे उसकी कोई चिन्ता नहीं है । हमारी माँ ने तो हमसे कहा था कि "अगर माता-पिता का पुत्र उत्तम गृहस्थाश्रमी बना तो वह सात पीढ़ियों का उद्धार करता है और अगर पुत्र नैष्टिक ब्रह्मचारी रहा तो बयालीस पीढ़ियों का उद्धार करता है !"

तो, हम तीनों भाई तो ब्रह्मचारी निकले । परन्तु मेरी एक छोटी बहन थी, उसको तो संसार के क्रमानुसार शादी करनी पड़ी । तब से मेरे मन में विचार आता रहा है कि वह क्यों ब्रह्मचारिणी न रह सकी ? क्योंकि हमारा समाज पुरुष-प्रधान है । हम तीनों भाई निकले, तब हमारे माता-पिता और समाज सब चुप रहे, परन्तु मेरी बहन घर छोड़कर निकल जाती तो कोई भी चुप न बैठता । खोज करके उसको ढूँढ़ लाते और उसकी शादी करा देते।

सामान्या के लिए क्षेत्र कौन खोलेगा ?

मैं तो सामान्य शक्तिशाली था । मुझ जैसे सामान्य शक्तिवाले ने जो किया, वह कोई असामान्य स्त्री ही कर पाती । मीरा असामान्य स्त्री थी, इसलिए वह समाज के सामने और रिश्तेदारों के सामने टिक सकी । हमें तो स्त्री को समाज के बीच, अनेक क्षेत्रों में खड़ी रखना है । सामान्य स्त्री-पुरुष की कक्षा की हैसियत में वह टिक सके, इसलिए उसकी स्वतंत्र शक्ति को पनपाना है । स्त्रियों को आध्यात्मिक अधिकार दिलाना है । बहनों को आध्यात्मिक बल प्राप्त करना ही होगा । मैं अपनी जवानी में बहनों के लिए कुछ नहीं कर पाया । अब मैं स्त्रियों के लिए जीता हूँ । स्त्री-शक्ति अब जागृत होनी चाहिए । हमारी जवानी में हमने थोड़े जवानों को तैयार

किया । अब हमारे जीवन का अन्तिम समय स्त्री-शक्ति जगाने में बीते, ऐसा हम चाहते हैं । स्त्री-शक्ति यानी ब्रह्म की शक्ति । उसका मुझे आकर्षण है | उसको अब जगाना होगा ।

मैं स्त्री भी हूँ !

मेरा जैसा जीवन बना है, उसमें पुरुषत्व से स्त्रीत्व कम नहीं है । यह मेरा अपना अनुभव है और इसको मैं ब्रह्मचर्य कहता हूँ । ब्रह्मचर्य की साधना में स्त्री को पुरुष बनना पड़ेगा, पुरुष को स्त्री । गुणपूर्णता ही ब्रह्मचर्य है । मृदुता, भक्ति, त्याग, प्रेम, संयम आदि गुण तो स्त्रियों में हैं ही । अब उनको तो बुद्धि की प्रखरता और अन्य गुणों से सम्पन्न होकर पूर्ण पुरुष बनना पड़ेगा। उसके लिए बुनियाद ब्रह्मविद्या होगी और ज्ञान, कर्म तथा भक्ति उस ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के साधन बनेंगे। इसीलिए मैंने कहा कि मुझमें पुरुषत्व से स्त्रीत्व कम नहीं है। आज यहाँ मातृस्थान (कस्तूरबाग्राम) में मैं आया हूँ तो मुझे सिर्फ इतना ही कहना है कि मैं यहाँ पुत्र के नाते आया हूँ, लेकिन कन्या के नाते भी आया हूँ ।

मैं जब धूलिया-जेल में था, तब कैदी भाइयों के सामने 'गीता' पर मेरे प्रवचन होते थे । तो स्त्री-कैदियों ने भी माँग रखी कि विनोबा हमें भी कुछ सुनायें । वैसे तो स्त्री-कैदी के पास जाने की पुरुष-कैदी को इजाजत नहीं होती थी, परन्तु जेल-सुपरिण्टेण्डेण्ट श्री वेष्णव ने कहा : “विनोबा की गिनती पुरुष में करना गलत है । उनको स्त्रियों में ही एक मान लें तो कोई हर्ज नहीं ।“ और फिर बहनों के सामने प्रवचन शुरू हुए ।

अपनी जिम्मेवारी अपने कन्धे पर

मैंने शुरू में ही मान लिया है कि स्त्री की दुर्दशा का बहुत सारा जिम्मा पुरुषों पर है । मैं तो पुरुष के नाते सारा-का-सारा जिम्मा उठाने की इच्छा करूँगा । लेकिन इच्छा करने पर भी वह हो नहीं सकेगा । क्योंकि दो चेतन वस्तुओं में होनेवाले परिणामों का जिम्मा केवल एक पर ही नहीं डाला जा सकता । मैं अगर स्त्री होता, तो सहसा सब पुरुषों को मुक्त कर देता । कहता कि यह सारी जिम्मेवारी मेरी है । अगर मैं जड़ होता, स्त्री या पुरुष की तरह चेतन न होता, तो चुप रहता।

पर चूँकि चेतन हूँ, इसलिए अपनी सारी-की-सारी जिम्मेवारी दूसरों पर डालना कैसे पसन्द करूँगा?

बहनें आगे क्यों नहीं आतीं ?

मुझे बार-बार लगता है कि बहनों को आगे आना चाहिए । सार्वजनिक चिन्ता, ब्रह्म की साधना आदि की तीव्रता बहनों को क्यों नहीं होनी चाहिए ? जो बहनें संसार कर चुकी हैं, वे शायद आगे न आ सकें । परन्तु जिनका अभी संसार-प्रवेश नहीं हुआ है, वे अगर आगे आयें, तो मेरा आगे का जीवन उनके लिए हो सकता है । अध्यात्म-विचार का अधिकार जितना पुरुषों को है, उतना ही बहनों को है । फिर भी वे क्यों नहीं आगे आना चाहतीं, यह मेरी समझ में नही आता । स्त्रियाँ खुद आगे आयेंगी, तभी उनकी शक्ति जाग सकेगी ।

शक्ति का अधिष्ठान : आत्मा

हम स्त्री-शक्ति जगाने की बात करते हैं । परन्तु वास्तव में देखा जाय तो शक्ति का जो मूलस्रोत है, वह न तो स्त्री-शरीर में है, न पुरुष-शरीर में। शक्ति का मूलस्त्रोत अंतरात्मा में है । अंतरात्मा स्त्री-पुरुष-भेद-रहित है । आत्मा में स्त्री-पुरुष-भेद है ही नहीं । दोनों के जीवन का उद्देश्य भी एक ही है। मानव-जीवन का उद्देश्य है पूर्णता प्राप्त करना । सामाजिक दर्जा, आर्थिक अधिकार, नागरिक अधिकार, कुटुम्ब में स्थान, नैतिक योग्यता, शिक्षण-समता, मानसिक भाव, गुणोत्कर्ष—ये सारी बातें दोनों में समान होती हैं, इसलिए कुल मिलाकर स्त्री-पुरुषों में मूलतः अभेद है ।

बाह्य भेद, आन्तरिक एकता

मुझमें तो स्त्री-पुरुष में भेद करने को वृत्ति ही नही है । मैं मानता हूँ कि स्त्रियों के सामाजिक, कौटुम्बिक और राजनैतिक अधिकार और कर्तव्य वे ही हैं, जो पुरुषों के हैं । दोनों का आर्थिक अधिकार समान है और दोनों की नैतिक योग्यता भी एक है । दोनों का शिक्षण एकत्र होना चाहिए और विषय भी समान होने चाहिए । स्त्री-पुरुष का भेद बाह्य है, मूलभूत नहीं । स्त्री और पुरुष में

समान मानव-आत्मा होती है, इसलिए बाह्य भेद दिखाई दें, तो भी उनको महत्त्व देने की आवश्यकता नहीं । बाह्य भेद के कारण दोनों के कार्यक्षेत्र में कुछ फर्क होना स्वाभाविक है, लेकिन इतने-से आधार पर उस भेदभाव को ठीक नहीं कहा जा सकता, जो आज हम लोगों में मौजूद है पूर्णता प्राप्त करने के अन्तर्गत बहुत-से कार्य आ सकते हैं । उन भिन्न कार्यों के लिए भी मनोविकास की बुनियाद की जरूरत होती है । इस प्रकार बुनियाद एक है, शिखर एक है और बीचवाली इमारत का आकार भी एक है । इतना ध्यान रखकर फिर कहाँ कितनी खिड़कियाँ, ताक वगैरह हों, रंग-पुताई कैसी हो, यह भले ही अपनी रुचि और जरूरतों के अनुसार कर लें ।

गलत तत्त्वज्ञान

हिन्दुस्तान में बीच के जमाने में कुछ विचारक ऐसे हो गये, जिन्होंने स्त्री-पुरुष-भेद को मूलभूत समझा । उनका आधार केवल उनकी कवित्व-शक्ति है। सांख्यों ने सृष्टि का निरीक्षण करते हुए दो तत्त्व पाये : एक विविध रूपधारी जड़, दूसरा एकरस चेतन । एक को उन्होंने कहा 'प्रकृति' और दूसरे को 'पुरुष' । कुछ लोगों ने इन्हें 'माया' और 'महेश्वर' नाम भी दिये । दोनों के संयोग से संसार चल रहा है । 'प्रकृति' शब्द स्त्रीलिंग है और 'पुरुष' पुलिंग। इसी शाब्दिक लिंग-भेद का उपयोग कर कवियों ने कहा कि स्त्री 'प्रकृति-तत्त्व' का प्रतिनिधित्व करती है और पुरुष 'पुरुष-तत्त्व' का । कुछ विचारकों ने इसे गंभीर स्वरूप दिया और माना कि स्त्री संसारासक्त होती है, वह मोक्ष की अधिकारिणी नहीं हो सकती । स्त्री को मोक्ष पाना है, तो उसे दूसरे जन्म में पुरुष होना होगा । इन विचारकों के विचार की सिद्धि के लिए सिवा उनकी विकृत-बुद्धि और काव्य-शक्ति के और कोई आधार नहीं था । लेकिन सांख्यों ने तो प्रकृति को 'प्रधान' भी कहा है और यह शब्द पुलिंग है ।

शब्दों की महिमा !

संस्कृत-काव्यों में मैंने पढ़ा कि दमयंती के महल में वायु का प्रवेश नहीं था । क्योंकि वायु पुलिंग है और परपुरुष को दमयंती के महल में कैसे स्थान हो सकता है ? जब मैंने यह पढ़ा, तो यह सोचकर व्याकुल-सा हो गया कि दमयंती का क्या हाल हुआ होगा ? लेकिन फिर थोड़ी देर में

निश्चिन्त हो गया, क्योंकि ध्यान में आया कि वहाँ 'वायु' नहीं, तो 'हवा' तो जरूर आती होगी, क्योंकि हवा स्त्रीलिंग है । ऐसी है शब्दों की महिमा ।

गुणों में भी अभेद

स्त्री संसारासक्त और पुरुष मोक्ष-प्रवण और विरक्त माननेवाली विचारधारा से भिन्न एक दूसरी विचारधारा भी है, जो कहती है, "स्त्री पुरुष से श्रेष्ठ है । उसमें दयाभाव सहज ही अधिक होता है । बालकों की शिक्षा और समाज - शासन स्त्री के हाथ में दिया जाय, तो अहिंसक समाज-रचना सुलभता से सिद्ध होगी ।" इन सब कार्यों में स्त्रियाँ भाग लें, ऐसा मैं भी चाहता हूँ । अभी तक ये कार्य सामान्यत: पुरुष ही करते आये हैं, इसलिए स्त्रियों के प्रवेश से उनमें एक तरह की ताजगी आयेगी, ऐसा मैं भी मानता हूँ । लेकिन जैसा कि नये विचारक मानते हैं, वैसा मैं नहीं मान सकता । क्योंकि दया आदि गुण न किसी जाति के आश्रित हैं, न किसी लिंग के । बाह्य उपाधि के कारण गुणों के प्रकाशन में, उनके प्रकट होने की पद्धति में फर्क हो सकता है । लेकिन दोनों के गुणों में ही फर्क है, ऐसा मानना विचार और अनुभव के भी विरुद्ध है ।

ग्रहण-शक्ति में भेद मानना भ्रम

लेकिन भेद माननेवाले गुणों में तो भेद मानते ही हैं, दोनों की ग्रहण-शक्ति में भी अन्तर मानते हैं । कहते हैं, स्त्रियों के लिए काव्य अनुकूल है, गणित प्रतिकूल । पुरुष में पराक्रमशीलता अधिक होती है, उसकी बुद्धि की ग्रहण- शक्ति और स्वभाव के अनुकूल उसके अध्ययन के विषय होने चाहिए। इसी प्रकार स्त्रियों में सौन्दर्य-भावना, करुणा आदि मृदु शक्तियाँ अधिक होती हैं। वैसी ही उनकी ग्रहण-शक्ति और वैसे ही उनके अध्ययन के विषय होने चाहिए। किन्तु मैं मानता हूँ कि मूल-स्वभाव और उपाधिजन्य भेद में सम्यक् विश्लेषण न होने के कारण पैदा हुए ये भ्रम हैं।

वस्तुत: स्त्री-पुरुष में एक ही पुरुष-तत्त्व, जो चेतन है, समानभाव से मौजूद है और दोनों के शरीर उसी प्रकृति-तत्त्व के बने हैं । दोनों की संसारासक्ति और संसार-बन्धन समान हैं और

मोक्ष का अधिकार भी दोनों का समान है! लेकिन काव्य-शक्ति कहाँ तक अनर्थ कर सकती है उसका ये 'प्रकृति', 'पुरुष' शब्द एक उदाहरण बन गये हैं ।

पूरक नहीं, पूर्ण बनना है

गांधीजी युग-प्रवर्तक महापुरुष थे । उन्होंने एक नया जीवन-विचार यह दिया कि हमारे समाज में गुणों का जो बँटवारा हो गया है, वह गलत है। ब्राह्मण में अमुक गुण होने चाहिए और शूद्र में अमुक गुण, ऐसा हमारे यहाँ चलता आया है । सत्य, अहिंसा, प्रेम वगैरह सन्तों की पूजी मानी गयी, बाकी सब लोग संतों के लिए आदरभाव रखते हैं, उनकी पूजा करते हैं, लेकिन उनका अनुकरण नहीं करते । इस युग में अगर कोई स्वामी अपने सेवक का खूब अच्छी तरह पालन-पोषण करता है और दूसरी ओर सेवक भी स्वामी की सेवा अच्छी तरह करता है, तो भी हमें समाधान नहीं होगा । भर्ता यानी पति पत्नी का उत्तम पालन-पोषण करता है और भार्या आज्ञाकारिणी और कहने के अनुसार करनेवाली बनी रहती है, इस प्रकार दोनों अपने-अपने फर्ज का पूरा-पूरा पालन करते हैं, तो भी दोनों का पूर्ण विकास हुआ, यह नहीं कहा जायगा । पति को पत्नी और पत्नी को पति बनना पड़ेगा । यानी स्त्री को स्त्री और पुरुष दोनों बनना पड़ेगा और पुरुष को पुरुष और स्त्री दोनों बनना पड़ेगा । तभी दोनों का पूर्ण विकास होगा ।

देहभाव ही खत्म हो

यह एक बिलकुल नयी दृष्टि है । हम सब भगवान् के अंश हैं । कोई छोटा नहीं, कोई बड़ा नहीं । इसी जन्म में हमें भगवान् को पाना है । परमेश्वर यानी सम्पूर्णता । वह सम्पूर्णता हमें प्राप्त करनी है । अब ऐसी 'बहनें' और भाई निकलने चाहिए, जो स्त्रीत्व-पुरुषत्व के अभिमान से रहित हों । तभी इसका हल होगा । न पुरुष में पुरुषत्व का और न स्त्री में स्त्रीत्व का अभिमान हो । अभिमान न होना यानी भान न होना । अर्थात् 'मैं स्त्री हूँ, 'मैं पुरुष हूँ' यह भान ही न हो । जो स्त्री-पुरुष ऐसे होंगे, वे ही इसके उपाय ढूँढ़ेगे । ईसामसीह की भाषा में कहना हो तो 'जो भगवान् के लिए नपुंसक बना होगा, उसीका यह काम है ।' ईसामसीह ने बड़ा विलक्षण शब्द का प्रयोग किया। स्त्री-पुरुष दोनों को लागू होनेवाला यह शब्द है ।

ब्रह्मविद्या का आरम्भ

परन्तु ईसामसीह के इस वाक्य पर मैंने सोचा, तो मुझे लगा कि स्त्री, पुरुष या नपुंसक-भेद देह के साथ जुड़े हैं; परन्तु हम तो इन तीनों से भिन्न हैं। यदि दुनिया में स्त्री और पुरुष से ये ही जमातें होतीं, तो स्त्री और पुरुष से भिन्न कहकर 'नपुंसक' बनने के बात ठीक हो सकती थी । लेकिन नपुंसक भी एक जमात है। हम देह से भिन्न हैं, इसलिए इन तीनों से भी भिन्न हैं। ब्रह्मविद्या का आरंभ ही यह है कि "मैं देह नहीं हूँ ।" ब्रह्मविद्या का आरंभ ही वहीं से होता है, जहाँ से स्त्री-पुरुष-भेद खत्म होता है। बहुत-से लोग समझते हैं कि देहभाव के मिटने में ब्रह्मविद्या की समाप्ति है, लेकिन वह गलत है। वह तो ब्रह्मविद्या का प्रारंभ है। ब्रह्मविद्या की समाप्ति तो बहुत दूर की बात है।

तू आत्मा है, देह नहीं

एक बार मदालसा[१] ने पूछा : शास्त्रों में पुरुषों का ही जिक्र आता है तो क्या स्त्रियों ने कुछ किया ही नहीं ? जहाँ देखो वहाँ पुरुषों का ही महत्त्व है। गीता में तो स्त्रियों के लिए कोई शिक्षा ही नहीं दिखती। वहाँ 'स्थितप्रज्ञ' है, 'गुणातीत' है, 'योगी' है । 'स्थितप्रज्ञा' क्यों नहीं हो सकती ?' वह शायद चाहती थी 'ही' और 'शी' वाली कानून की भाषा । मैंने उससे कहा : "उसकी फिक्र मत करो । गीता खुद तो स्त्री है और उसके उदर में ये स्थितप्रज्ञ आदि पड़े हैं । कानून में 'ही' और 'शी' कहना पड़ता है, पर वेदांत और धर्म में ऐसा भेद नहीं । वहाँ प्रयोग पलिंग में है, तथापि वह स्त्री पर भी लागू होता है । यह जो लिंग है, वह परम-पुरुष से भिन्न है । 'पुरुष' में स्त्री और पुरुष यह भेद ही नहीं है । पुरुष तो प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष या अन्य पुरुष हो सकता है, उसे लिंग नहीं । स्थितप्रज्ञ का देह के साथ सम्बन्ध ही नहीं होता । स्थितप्रज्ञ पुरुष है, देह नहीं । इस तरह जहाँ 'स्थितप्रज्ञ' आदि शब्द आते हैं, वहाँ व्याकरण के खयाल से भी स्त्री और पुरुष दोनों का प्रयोग हो जाता है ।

"हमें जो गुरुमन्त्र मिला है, वह है—तत्त्वमसि। गोरा-काला, हरिजन-परिजन, हिन्दू-मुसलमान, स्त्री-पुरुष, ये सब भ्रम हैं | तू इनसे भिन्न विशुद्ध केवल आत्मा है | तू शव नहीं, शिव

है । जिन्दा तो एक आत्म-तत्त्व ही है। उसे पहचान और इसे भूल जा । भेदों में अभेद को पहचानना ही आत्मबुद्धि का लक्षण है । भेदों को बढ़ाना ही हीन-बुद्धि का लक्षण है, पुरुषार्थ-हीनता है ।"

---

१. श्री श्रीमन्नारायणजी को धर्मपत्नी तथा स्व० जमनालालजी बजाज की पुत्री ।

बाह्य भेद, आन्तरिक एकता

स्त्री और पुरुष में जो भेद है, उसे तो दुनिया जानती है । उसे मिटाने की न किसीकी इच्छा है,न शक्ति । लेकिन उस बाह्य भेद का स्वरूप लोगों में जिस तरह का हो गया है, वैसा नहीं है । केवल एक दृष्टि की योजनाभर है । उसके मूल में पवित्र भावना है । सन्तान पैदा करने का वह एक साधमनमात्र है । लेकिन इस विषय का मनुष्य ने अत्यनत दुरुपयोग किया है । वास्तव में वह एक शास्त्रीय वस्तु है, लेकिन आज शर्म का विषय बन गया है । उस विषय में खुले तौर पर बातचीत तक नहीं हो सकती । समाज जब शास्त्रीय बनेगा, तभी इस विषय की सारी गलत धारणाएँ दूर हो सकेंगी । आज जैसा इस विषय का दुरुपयोग हो रहा है, वैसा तब नहीं होगा । इसलिए मैं कहता हूँ कि इस बाह्य भेद को तो हमें भूल ही जाना चाहिए । मानव-दृष्टि से आन्तरिक अभेद की बुनियाद पर ही हमें अपने जीवन की रचना करनी चाहिए ।

मेरे अपने मन में तो स्त्री-पुरुष के बीच असमानता है ही नहीं । हमने तो भगवान् को भी कहा है कि **त्वं स्त्री त्वं पुमान् असि । त्वं कुमार उत वा कुमारी** ।—तुम स्त्री हो, पुरुष हो, तुम कुमार हो, कुमारी भी हो । यह तो ऊपर-ऊपर का आकारभेद है । अन्तर से मानवात्मा तो एक ही है ।

ब्रह्मविद्या-स्त्री-पुरुष-भान से परे

जब हम कहते हैं कि ब्रह्मविद्या स्त्रियों के हाथ में आनी चाहिए, तो वह एक सामाजिक भाषा है । लेकिन किसी स्त्री को यह अभिमान हो जाय कि मैं ब्रह्मविद्या की आचार्या बनी, तो

कहना होगा कि आरम्भ में ही सारा शून्य हो गया। बात यह है कि आज तक स्त्री पुरुष की आसक्ति का विषय बनी और वही उसकी विरक्ति का विषय भी बनी । किसी संन्यासी ने स्त्री की आसक्ति छोड़ी, तो उतने से ब्रह्मविद्या पूरी नहीं हो जाती । आसक्ति और विरक्ति दोनों छोड़नी चाहिए । अन्यथा प्रतिक्रियात्मक आसक्ति होगी । उसमें वे सारे दोष आते हैं, जो मूल में होते हैं । आसक्ति की प्रतिक्रियारूप विरक्ति तो आज तक की ब्रह्मविद्या में भरी पड़ी है ।

मीरां—कृष्णमय

एक प्रसिद्ध कहानी है । मीराबाई मथुरा पहुँची । वहाँ वह एक साधू के दर्शन के लिए उनके आश्रम में गयी, तो उसे जवाब मिला : 'संन्यासीजी स्त्री के दर्शन करना नहीं चाहते ।' इस पर मीराबाई ने उसे आड़े हात लिया :

'हूँतो जाणती हती के व्रजमां पुरुष छे एक ।
व्रजमां रही तमे पुरुष रह्या, भलो तमारो विवेक । ।'

- "मैं तो समझती थी कि व्रजभूमि में एक ही पुरुष है और वह है भगवान् कृष्ण । अन्य कोई पुरुष है ही नहीं । पर जब आप इस व्रज में रहकर भी 'पुरुष' बने रहे तो आपने अपना खूब विवेक सिद्ध कर दिखाया।" मीराबाई की फटकार सुनकर संन्यासीजी बाहर आये और उन्होंने मीराबाई से क्षमा माँगी ।

मेरा मानना है कि इस प्रकार के आधार पर जो ब्रह्मविद्या बनी, वह एकांगी बनी, कमजोर बनी ।[१] यही कारण है कि ब्रह्मविद्या की असली शक्ति प्रकट न हो पायी । समाज की तरह ब्रह्मविद्या भी डरपोक बनी । अत: जो स्त्री या पुरुष ब्रह्मविद्या में प्रवेश करना चाहता हो, उसे प्रथम इसका निराकरण करना होगा कि मैं स्त्री या पुरुष हूँ । उसे समझना होगा कि "मैं देह ही नहीं हूँ ।" जब तक देह से भिन्नता का भान नहीं होता, तब तक मनुष्य मनुष्य ही नहीं, दो पैरोंवाला जानवर है । और दु:ख के साथ कहना पड़ता है कि इतनी सारी सभ्यता और संस्कृति के बावजूद मनुष्य-समाज का काफी हिस्सा आज भी जानवर की अवस्था में ही पड़ा हुआ है ।

स्त्री-शक्ति यानी सर्वशक्ति

समझने की बात है कि भारत की पूरी जनता में एक समान स्त्री-शक्ति है । कई लोगों को शंका है कि स्त्रियों में कोई शक्ति है भी या नहीं ? लेकिन स्त्रियों में तो यह शक्ति है ही । साथ ही यहाँ के पुरुषों में भी वह स्त्री-शक्ति पड़ी हुई है । यह एक विचित्र बात मैं कह रहा हूँ । बहुत-से लोग कहते हैं कि स्त्री तो अबला है, रक्षण-योग्य है । लेकिन स्त्रियों का मूल नाम तो महिला है । महिला यानी महान् शक्तिशाली ।

अपने यहाँ शक्तिरूप में स्त्री-मूर्ति ही मान्य हुई है, पुरुष-मूर्ति नहीं। महिषासुर-मर्दन का जब प्रसंग आया और जब महिषासुर देवों और मनुष्यों को सताने लगा, तब उससे किस तरह मुक्ति मिले, यह सवाल पैदा हुआ । सभी देव विष्णु के पास इकट्ठा हुए और आखिरकार सभी ने एकत्र होकर शक्तिमाता के पास जाकर प्रार्थना की कि महिषासुर से हमारा छुटकारा कीजिये। तब माता ने कहा कि तुम सबके पास जो भी शस्त्र हो, सब मेरे सिपुर्द करो। तो विष्णु ने अपना शस्त्र दे दिया, शंकर ने अपना शस्त्र दे दिया, यानी जिसके पास जो कुछ था, वह उस शक्ति के सिपुर्द किया गया और तब उस शक्ति ने महिषासुर का मर्दन किया । इसलिए शक्तिरूप में हिन्दुस्तान में स्त्री-मूर्ति ही मान्य हैं ।

---

१. इसी कारण स्त्री हो केन्द्र बनो, विरक्ति की ओर आसक्ति की । संसार में रहना है तो केन्द्र में स्त्री । संसार को छोड़ना है तो केन्द्र में स्त्री ।

अर्धनारी-नटेश्वर : ब्रह्मविद्या की मूर्ति

परिणाम यह आया है कि हिन्दुस्तान में वह स्त्री-शक्ति स्त्रियों में तो है ही, लेकिन पुरुषों में भी है । यानी हिन्दुस्तान का पुरुष कुछ अंश में स्त्री है। उसका कारण है । अपने यहाँ केवल राम का नाम नहीं लेते, **'सीताराम', 'सीताराम'** कहते हैं | केवल कृष्ण का नाम नहीं लेते, **'राधा-कृष्ण', 'राधा-कृष्ण'** कहते हैं | दोनों को एकत्र करके हम चिन्तन करते हैं । इसके फलस्वरूप

एक ऐसा विचित्र चित्र हिन्दुस्तान में देखने को मिलता है, जिसकी दुनिया के किसी चित्रकार ने या कलाकार ने कल्पना नहीं की होगी । वह है, अर्धनारी-नटेश्वर का चित्र | दुनिया के और किसी देश में ऐसा चित्र देखने को नहीं मिलता । यह जो हिन्दुस्तान की कल्पना है, उसमें बहुत बड़ी प्रतिभा रही है। हिन्दुस्तान के कवि इस प्रतिभा को जानते हैं और वे सदा से स्त्रियों का आदर करते आये हैं । इसलिए यह शक्ति भारत की विशेषता है । स्त्रियों के गुण हिन्दुस्तान की स्त्रियों में पूरी तरह प्रकट हुए हैं । उसी स्त्री-शक्ति का उपयोग करने की योजना बनायी जाय, तो हिन्दुस्तान के उद्धार की चाबी मिल जायगी।

आत्मशक्ति का भान हो

तो कहना मैं यह चाहता था कि शक्ति आत्मा में है । शक्ति का स्रोत और कहीं नहीं । सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् आत्मा है । परन्तु मनुष्य को भास हो जाता है कि शक्ति हाथ में है, कान में है । जब तक आत्मशक्ति का भान नहीं होता तब तक हम लोग अपनी मूल शक्ति को छोड़कर उसके प्रतिबिंब को ही पकड़कर रखते हैं । कान और आँख में जो शक्ति है, वह तो अन्दर की किसी चीज के साथ उसका संबंध होने से है । वह चीज केवल 'शरीर' नहीं है । वह चीज तो है आत्मशक्ति । वह आत्मशक्ति आँख और कान द्वारा प्रकट होती है । इसीलिए जब आत्मशक्ति का भान होता है तब न किसी प्रकार का मोह रहता है, न भय रहता है । आत्मशक्ति का भान होते ही मनुष्य पर और कोई सत्ता चल नहीं सकती । उसको परिपूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाती है।

तो मैं चाहता हूँ कि भारत की स्त्रियाँ अपनी आत्मशक्ति का भान रखकर सामने आ जाये। भविष्य में स्त्रियों के हाथ में समाज का अंकुश आनेवाला है । उसके लिए स्त्रियों को तैयार होना पड़ेगा । स्त्रियों का उद्धार तभी होगा, जब स्त्रियाँ जागेंगी और स्त्रियों में शंकराचार्य जेसी कोई प्रखर, ज्ञान-वैराग्य सम्पन्न, भक्तिमान् और निष्ठावान् स्त्री होगी । दुनिया में अभी तक समाज पर जिन लोगों का प्रभाव हुआ है, वे पुरुष ही हैं । धर्म पर भी उनका प्रभाव हुआ है । इसी तरह जब स्त्रियों का धर्म पर प्रभाव होगा, तभी उनका उद्धार होगा । ऐसा होना बहुत जरूरी है ।

स्त्री-देह में परिपूर्ण रचना

कुछ लोग कहते है स्त्री-शरीर दुर्बल है । लेकिन मैंने एक जगह देखा था अपनी आँखों से। गाँव की अशिक्षित स्त्री थी, पति बाहर से आया और उसे डाँटकर बोलने लगा तो उस स्त्री ने पति को तमाचा मारा । ऐसी होती हैं स्त्रियाँ । शिक्षित स्त्रियाँ दुर्बल होती हैं, यह बात सही है, लेकिन अशिक्षित स्त्रियाँ दुर्बल होती ही हैं , ऐसी बात नहीं | कुछ वैज्ञानिकों नें शोध करके कहा है कि अधिक जिन्दगी जीनेवाली स्त्रियाँ जितनी होती हैं, उतने पुरुष नहीं होते । मतलब, स्त्री-शरीर में पुरुष-शरीर से शक्ति कम नहीं है । जीवन-शक्ति स्त्रियों में यानी स्त्री-शरीर में कम नहीं । दूसरी बात, एक स्त्री और एक पुरुष, दोनों समान उम्र के हों और समान काम करते हों, तो पुरुष का आहार २००० कैलरीज का होगा तो स्त्री को १६०० कैलरीज पर्याप्त होगी । अतः स्त्रियों की शक्ति कम नहीं और उन्हें आराम की आवश्यकता कम होती है ।

कुछ वैज्ञानिक ऐसा कहते हैं कि पुरुष-देह से स्त्री-देह श्रेष्ठ है । उसमें परफेक्ट मैकेनिज्म है । मुझे भी वैसा ही लगता है, क्योंकि स्त्री को गर्भ का रक्षण करना पड़ता है, इसलिए वह शरीर बराबर किले जैसा बँधा होना चाहिए। स्त्री का देह आक्रामक नहीं है, डिफेंसिव है । डिफेंसिव मैकेनिज्म तो पक्का होना ही चाहिए ।

यह तो मैंने शरीर-शक्ति की दृष्टि से कहा । परन्तु शक्ति का मूलस्त्रोत शरीर नहीं, आत्मा है, जिसमें स्त्री-पुरुष भेद है नहीं । तो भेद अगर भूला जाय और अपने को आत्मरूपेण देखना शुरू करें, तो शक्ति आयेगी ।

प्रश्न : स्त्रियाँ कोमल स्वभाव की होती हैं, पर शक्ति का रूप उन्हींको माना जाता है । पुरुष को क्यों नहीं माना जाता ?

विनोबा : क्योंकि कठोरता में जितनी शक्ति है, उससे कोमलता में बहुत अधिक शक्ति है । जिसमें कोमलता होगी, वह दूसरे के हृदय में प्रवेश करेगा और वहीं रह जायगा । जो कठोर होता है, वह हृदय में प्रवेश नहीं करता । वह हाथ पकड़ेगा, कान पकड़ेगा, लेकिन हृदय को नहीं पकड़ेगा । कान तो बेलों के पकड़ने चाहिए । लेकिन मैं कहता चाहता हूँ कि जो कोमल स्वभाव

के होते हैं वे बैलों के हृदय पर भी कब्जा कर लेते हैं । बैल उनके उत्तम सेवक होते हैं । 'एँड्रोक्लीस एण्ड दी लायन' की कहानी मशहूर है । उसने सिंह को कोमलता से वश में कर लिया था । तो कोमलता मजबूत शक्ति है और कठोरता शक्तिहीन है ।

.

२. प्राचीन भारत में स्त्री की महिमा

वेद में कहा है : '**वस्यां इन्द्रासि मे पितु: । माता च मे छदयथ: समा वासो**'—हे इन्द्र ! तू हमारे पिता से बढ़कर है । हे ईश्वर ! तू और मेरी माँ ये दो ही ऐसे हैं, जो मेरे पापों को, अपराधों को ढाँकते हैं, तुम दोनों समान हो । इसलिए कहा है : '**त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव** ।' इसमें प्रथम माता का नाम आया है । उपनिषदों ने आज्ञा दी है, उसमें नम्बर एक में कहा है : '**मातृदेवो भव**' । नम्बर दो में '**पितृदेवो भव**' । नम्बर तीन में '**आचार्यदेवो भव**' । और नम्बर चार में '**अतिथिदेवो भव**' | माता को पहला देव माना है, पिता को दूसरा, आचार्य को तीसरा और अतिथि को चौथा । इसके अलावा माता हजार पिताओं से भी बढ़कर है - यह तो उपनिषदों ने गाया ही है । शास्त्रों ने यह भी कहा है कि '**जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी** ।'—जननी और जन्मभूमि दोनों स्वर्ग से भी बढ़कर हैं । इस पर से माता की योग्यता हम नाप पायेंगे ।

इसके अलावा उपनिषद् कहता है :

'उपाध्यायान् दशाचार्यं आचार्याणां शतं पिता ।
सहस्त्रं तु: पितृन् माता गौरवेणातिरिच्यते ॥'

- दस उपाध्याय के बराबर में एक शिक्षक, सौ शिक्षकों की बराबरी में एक पिता और हजार पिताओं से भी बढ़कर एक माता है । गौरव में 'अतिरिच्यते' (बढ़कर) कहा । माता का ऐसा गौरव हमारे यहाँ गाया गया है । एक ऋषि ने अपने ज्ञान के बारे में बतलाते हुए कहा है : '**मातृवान्, पितृवान्, आचार्यवान् पुरुषो वेद** ।' याने जैसे माता, पिता और गुरु बतलाता है, वैसा यह ज्ञान है। अर्थात् पहला ज्ञान देने का गुरुत्व माता को सौंपा गया है । ज्ञानदेव का अभंग प्रसिद्ध ही हैं । शिशु को पालने में सुलाकर; पालना हिलाते-हिलाते मदालसा ने अपने बच्चे को वेदान्त सिखाया । माता में इतनी शक्ति भरी है । ऐसी माताएँ आगे आनी चाहिए । घर में उनका राज चलता है, ठीक ही है । लेकिन बाहर भी उनका अंकुश होना चाहिए । जिनके जीवन में ऐसा अंकुश रहा, उनके जीवन में एक अजीब ही चमक दीख पड़ती है । शिवाजी को, साने गुरुजी को बचपन में

माता से ही बोध मिला और उसी समय वह उनके हृदय में घर कर गया। श्रुति को शंकराचार्य ने 'माता' कहा है । हम लोग भी ज्ञानेश्वर को 'ज्ञानोबा माउली' (ज्ञानदेव मैया) कहते ही हैं । गुरु को भी मराठी में माउली कहा जाता है । ज्ञानदेव तो इससे भी आगे बढ़ जाते हैं :

'जेथे प्रियाची परिसीमा । तेथे भेटे माउली आत्मा ।'

- वहीं आत्मा मैया की भेंट होगी, जहाँ प्रिया के प्रेम की परिसीमा होती है ।

हमने भी गीता का जो मराठी अनुवाद किया है, उसको नाम दिया है— गीताई । यानी गीतामाता । इतना मातृ-गौरव हमारे देश में है ।

भारत की स्त्री 'महिला'

संस्कृत में बहनों के लिए कई शब्द हैं । उनमें एक शब्द है—महिला । स्त्री को भारत में महिला कहते हैं । इतना उन्नत शब्द, मुझे जितनी भाषाओं का ज्ञान है - दुनिया की २०-२५ भाषाओं का मुझे ज्ञान है - उन भाषाओं में नहीं है। महिला यानी महान् शक्तिशाली, बहुत बड़ी ताकतवाली । बहुत बड़ा शब्द है । वह शब्द ही सुझाता है कि स्त्री के बारे में भारत की क्या राय है और क्या अपेक्षा है । वैसा ही एक शब्द है—स्त्री । यह जो 'स्त्री' शब्द है, वह 'स्तृ' धातु पर से बना है । स्तृ का अर्थ होता है - विस्तार करना, फैलाना । प्रेम को कुल दुनिया में फैलाना, यह स्त्री का कार्य है । स्त्री का कार्य उस शब्द में ही सूचित है। यह संस्कृत भाषा की विशेषता है कि उसके शब्द बोलते हैं । 'स्त्री' शब्द है बहुत बड़ा, शक्तिशाली । प्रेम की व्यापकता स्त्रियों के द्वारा होगी।

बहनों ने 'महिला' शब्द चुना है

वैसे तो बहनों के लिए एक दूसरा शब्द है 'अबला'। अबला के माने है दुर्बल, कम ताकतवाली, जिसकी रक्षा दूसरों को करनी होगी, रक्षणीया। इधर अबला भी कहा और उधर महिला भी कहा । दो नाम दे दिये । परन्तु मैंने देखा है, हिन्दुस्तान में स्त्रियों की कई संस्थाएँ खड़ी हैं, लेकिन कहीं अबला समिति देखी नहीं, महिला समिति देखी है । यानी बहनों ने परीक्षा की है

और महिला शब्द चुन लिया है | मतलब, महिलाओं ने तय किया कि हमारी महान् शक्ति बनेगी, अल्प-शक्ति नहीं । बल्कि संस्कृत में तो 'शक्ति' शब्द ही स्त्रीलिंगी है।

प्राचीन स्त्री पूर्ण स्वतन्त्र

भारत में, एक जमाने में स्त्रियों के लिए पूर्ण स्वातन्त्र्य था । जैसे पुरुष ब्रह्मचारी हो गये हैं, वैसे ही स्त्रियाँ भी ब्रह्मवादिनी हो गयी हैं । स्त्रियों के कुछ सूक्त भी वेदों में आते हैं । पहले स्त्रियों को वेदाभ्यास का अधिकार था। अब स्त्रियों को वेदाध्ययन का अधिकार नहीं दिया जाता है, परन्तु वेद में अम्भृणी, ऋषि-कन्या का एक सूक्त है । कुछ ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ परमेश्वर के साथ इतनी एकरूप हो गयी थीं कि उनका गौरव करते समय वे कहती हैं कि परमेश्वर की कृति मेरी ही कृति है । उन्होने गाया था कि "सृष्टि के सारे प्राणी मेरे आश्रय में रहते हैं परन्तु वे जानते नहीं हैं । वे सब मेरा आधार लेकर ही काम करते हैं ।"

ईश्वर के साथ एकरूप होकर ईश्वर का सारा कर्तृत्व है, ऐसा मानकर वह वर्णन करती है कि "मैं जिन्हें ऊँचा चढ़ाना चाहती हूँ, उन्हें चढ़ाती हूँ, जिन्हें ऋषि बनाना चाहती हूँ, उन्हें ऋषि बनाती हूँ । परमेश्वर का कर्तृत्व मेरा कर्तृत्व है ।" परमेश्वर का रूप लेकर वे बोलती हैं ।

विवाह की सामाजिक आवश्यकता

मनुस्मृति में एक वाक्य है, जिसका अर्थ लोग ठीक से समझते नहीं। अर्थ समझने के लिए संस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान चाहिए । आज जिन शब्दों का जो अर्थ होता है, वह अर्थ प्राचीन काल में नहीं होता था ।

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत् । पाणिग्राहस्य यौवने ॥
पुत्राणां भर्तरि प्रेते । न भजेत् स्त्री स्वतंत्रताम् ॥

- बाल्यकाल में स्त्री को बाप के वश रहना है, यौवन में पति के वश, वार्धक्य में पुत्र के वश में रहना है—न भजेत् स्त्री स्वतन्त्रताम्—इसका अर्थ यही है कि अगर स्त्री शादी करनेवाली हो तो अपना पेट पालने की, आजीविका-संपादन की जिम्मेवारी स्त्री पर नहीं होनी चाहिए । उस पर यह

जिम्मेवारी डालना कि तुम बच्चे भी पैदा करो, उनका पालन-पोषण करो और आफिस में जाकर काम भी करो, यह स्त्री पर इतना जुल्म है कि इससे अधिक जुल्म की मैं कल्पना नहीं कर सकता। इसलिए इसमें जो स्त्री-स्वातंत्र्य का विरोध किया है वह स्त्रियों के इंडिपेंडेंस (स्वातंत्र्य) का विरोध नहीं है । वहाँ जो स्वातंत्र्य शब्द है, वह आज की भाषा का नहीं, प्राचीन भाषा का है । आज स्वातंत्र्य यानी इंडिपेंडेंस (आजादी) । परन्तु प्राचीन भाषा में स्वातंत्र्य का अर्थ होता है अपने पोषण की जिम्मेवारी । पत्नी के पोषण की जिम्मेवारी पति पर है, कन्या की पिता पर और वृद्धावस्था में पुत्र पर है । आजीविका की जिम्मेवारी उस पर न डाली जाय । शादी न करने का अधिकार जितना पुरुष को है उतना ही स्त्री को भी है । जैनों में आज भी उत्तम श्रमण और श्रमणियाँ हैं । रोमन कैथोलिक में भी ब्रह्मचारिणी स्त्रियाँ होती है, प्रोटेस्टंट में नहीं होती हैं । लेकिन हिन्दू-धर्म में 'कलिवर्ज्य' प्रकरण में शादी की जिम्मेवारी स्त्री पर डाली गयी । कलियुग के आरम्भ में पुरुषों की और स्त्रियों की गिनती हुई तो ध्यान में आया कि सौ पुरुषों के पीछे नब्बे स्त्रियाँ होती हैं। आज भी ऐसा ही कुछ है । इसका अर्थ यह हुआ कि सौ में से दस पुरुषों को अविवाहित रहना पड़ेगा, अगर हर पुरुष के लिए एक स्त्री हो । एक पुरुष दो-दो शादी करेगा तो ज्यादा पुरुषों को अविवाहित रहना पड़ेगा । और कुछ स्त्रियाँ ब्रह्मचारिणी रहें तो और ज्यादा पुरुषों को अविवाहित रहना पड़ेगा । इस वास्ते सामाजिक दृष्टि से नियमन हुआ और माना गया कि स्त्री के लिए शादी करना अच्छा है । दो पहलू होते हैं, आध्यात्मिक और सामाजिक । तो वह नियमन सामाजिक दृष्टि से हुआ ।

स्त्रियों की ऊँची भूमिका ही मान्य

शंकराचार्य का वाक्य है : '**कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति** ।' कोई कुपुत्र पैदा हो सकता है, लेकिन माता कभी कुमाता नहीं हो सकती । शंकराचार्य परिव्राजक थे, फिर भी माता के लिए कितना आदर ! उन्होंने माता को वचन दिया था कि आखिरी दिनों में तेरा दर्शन करने आऊँगा। तब तक उन्होंने क्षेत्र-संन्यास नहीं लिया था । अन्तिम समय माता का दर्शन किया और उसका अन्तिम श्राद्ध वगैरह करने के बाद फिर बद्रीकेदार जाकर क्षेत्र-संन्यास लिया । तात्पर्य

यह है कि उन्होंने संन्यास लेने के बाद भी मातृविषयक कर्तव्य पूरा किया । इस सबका तात्पर्य यह है कि हमारे यहाँ स्त्री-पुरुष की बराबरी का सवाल ही नहीं उठता । क्योंकि स्त्रियों को पुरुषों से ज्यादा हक है । स्त्रियों को समान अधिकार होना चाहिए । यह कहना यानी उनके अधिकार कम करना है ।

हिन्दू-धर्म की समान दृष्टि

इसलिए जहाँ तक हिन्दू-धर्म का विचार मालूम है, स्त्री को समान अधिकार देने का सवाल ही नहीं उठता । क्योंकि उसमें स्त्री को पुरुष से बहुत ज्यादा अधिकार दिये हैं । स्मृति में एक वाक्य ऐसा है कि पुरुष को मुक्ति के लिए संन्यास की अपेक्षा हो सकती है, लेकिन माता को मोक्ष के लिए संन्यास आवश्यक नहीं है । अपनी संतान की सेवा ईश्वर-भाव से करना मोक्षदायक है । जैसा राम की माता ने राम का पालन ईश्वरभाव से किया । जैसे कृष्ण की माता ने कृष्ण का पालन ईश्वरभाव से किया । वैसे ईश्वरभाव से जो अपने पुत्र का पालन करेगी, वह गृहस्थ रहते हुए भी मोक्ष पा सकती है ।

मुस्लिम शासन में स्त्री कैद हुई

यह सब मैंने आपके सामने इसलिए रखा, जिससे कि हिन्दू-धर्म में स्त्रियों के बारे में जो दृष्टि थी, वह आपके ध्यान में आये । परन्तु आधुनिक जमाने में बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान में स्त्रियों को घर के अन्दर दबाकर रखते हैं । यह कैसे हुआ ? मुसलमानों के डर के कारण और अनुकरण के कारण । मुसलमान लोग जनाना घर के अन्दर रखते हैं । बाहर नहीं आने देते हैं । मुझे याद है कि जब मैं दिल्ली में डॉ० जाकिर हुसेन साहब से मिलने गया था, जो लगभग मेरी ही उम्र के थे, तब उनकी पत्नी का दर्शन मुझे नहीं हुआ था । यद्यपि मेरे लिए उनको बहुत प्रेम था । अब यह डॉ० जाकिर हुसेन साहब और विनोबा की बात है । तो दूसरे पुरुषों के बारे में क्या कहा जाय ? इस तरह मुसलमानों के राज में उनका अनुकरण किया गया । जैसे अंग्रेजों के राज्य में गर्मी में 'नेकटाय-कालर' लगाकर बैठते थे और आज भी बैठते हैं। दूसरा कारण था डर । बहनों को बाहर रखने से उन पर हमला हो सकता है । इन दो कारणों से कुछ प्रान्तों में

बहनों को दबाकर रखा गया है । लेकिन जहाँ तक भारतीय संस्कृति की बात है, उसमें स्त्री को समान नहीं, ज्यादा अधिकार था ।

मताधिकार सहज प्राप्त हुआ

योरोप में, इंग्लैण्ड वगैरह में स्त्रियों को वोट का अधिकार नहीं था । इसलिए उन्हें आन्दोलन करना पड़ा । वहाँ बहनों ने पार्लमेण्ट में जाकर पुरुषों पर अंडे फेंके । उसके बाद उन्हें वोट का अधिकार मिला । लेकिन आपके देश में स्त्रियों को वोट का अधिकार प्राप्त करने के लिए कुछ भी करना नहीं पड़ा । बल्कि यह स्वाभाविक ही माना गया कि जैसे पुरुषों का हक है, वैसे ही स्त्रियों का भी है | दूसरी बात यह है कि यहाँ पर स्त्री प्राइम मिनिस्टर हो सकती है और है भी । चीफ मिनिस्टर, गवर्नर हो सकती है और थी भी। तात्पर्य यह है कि आज भारत में स्त्रियाँ किसी भी स्थान पर जा सकती हैं।

भारत में साम्य विचार है ही

समता का सिद्धान्त हर युग पर लागू है, किन्तु किसी जमाने में समता के लिए जमीन के बँटवारे की जरूरत नहीं थी, जैसी आज है । किसी जमाने में वोट के हक की जरूरत नहीं थी, लेकिन आज है । आज वोट का हक सबको मिलना चाहिए, ऐसी भावना और जागृति हुई है । यहाँ स्त्री-पुरुष में समता प्राचीनकाल से, कम-से-कम विचार में तो मानी गयी है, यद्यपि आचार में अभी भी नहीं मानी गयी है और उसमें सुधार की जरूरत है ।

हमारे शास्त्र कहते हैं कि स्त्री और पुरुष दोनों को मोक्ष का समान अधिकार है । दोनों की आध्यात्मिक योग्यता समान है । ब्रह्म-विद्या में हम जितना आगे बढ़े हैं, उतना दुनिया में कोई नहीं बढ़ा है । हम 'सीताराम' इसलिए कहते हैं कि स्त्री-पुरुष की समता को मानते हैं । यद्यपि ईश्वर एक ही है, इस मूल तत्त्व को हम जानते हैं । इसीलिए हिन्दुस्तान में स्त्रियों को वोट का हक हासिल करने के लिए आन्दोलन नहीं करना पड़ा । इंग्लैण्ड में पचास साल तक स्त्रियों को वैसा आन्दोलन करना पड़ा और आज जिस तरह गरीब विरुद्ध अमीर का सवाल खड़ा है, वैसा ही उन्हें स्त्री विरुद्ध पुरुष, ऐसा सवाल खड़ा करना पड़ा । किन्तु यहाँ की स्त्रियों को इसकी आवश्यकता नहीं रही,

क्योंकि यहाँ की हवा में आध्यात्मिक और मानसिक अधिकार समान होने की बात प्राचीनकाल से है। हिन्दुस्तान जैसे देश में इस तरह की समता का विचार प्राचीन काल से चला आ रहा है ।

विवेकयुक्त समता

समता की प्रवृत्ति के साथ-साथ विवेक-बुद्धि भी रहनी चाहिए । हिन्दुस्तान के बाहर लोग समता की बात करते हैं, किन्तु वहाँ अविवेक से काम किया जाता है । उन्होंने कत्ल और हिंसा से समता लाने की जो बात कही है, वह विवेकशून्य है । हम तो अन्दर की समता को मानते हैं और देह के लिए जितनी आवश्यकता है, उतनी ही समता चाहते हैं | हम तो आध्यात्मिक समता चाहते हैं, यही सनातन धर्म-विचार है ।

स्त्रियों का विशेष इतिहास

भारत में स्त्रियों का अपना एक स्थान है और उसका एक इतिहास भी है । वैसे तो स्त्री-पुरुषों का इतिहास एक-सा ही है, तो भी स्त्रियों का एक विशेष इतिहास भी है ।

स्त्रियों के तीन उद्धारक

वैसे तो बहुत पुराने जमाने से भारत में संस्कारों की परम्परा चली आयी है, और वह कम-से-कम पाँच हजार साल की तो है ही । और उसके इतिहास की कहानी हजारों ग्रन्थों में भरी पड़ी है । जहाँ तक मुझे मालूम है, स्त्रियों के उद्धार के लिए भारत में जो कोशिश हुई, उसमें प्राचीनकाल में देखें तो भगवान् श्रीकृष्ण और महावीर—ये दो नाम नजर आते हैं और अर्वाचीन काल में गांधीजी का नाम चमकता है । बीच का सारा समय बिलकुल शुष्क गया, ऐसा नहीं है । उसकी भी एक कहानी है । परन्तु ये तीन नाम ऐसे हैं, जो भूले नहीं जा सकते ।

गोपीजनप्रिय कृष्ण

भगवान् श्रीकृष्ण ने स्त्रियों के लिए जो कुछ किया है, उसकी यशोगाथाएँ लगातार पाँच हजार साल से गायी जाती है । जब द्रौपदी के चीरहरण का प्रसंग आया, तब वह श्रीकृष्ण को

पुकारती है । इसके तीन श्लोक हैं । ये तीन श्लोक संसार-सागर पार करने के लिए काफी समर्थ हैं, ऐसा माना जाता है । गांधीजी ने आश्रम में जो प्रार्थना चलायी, उसमें ये श्लोक बोले जाते थे।

अद्वितीय स्त्री-भक्त कृष्ण-मुरारी

भगवान् श्रीकृष्ण का नाम लेकर द्रौपदी प्रार्था कर रही थी कि "जब मेरे पति हार गये, दूसरे भाई भी देखते रहे, भीष्म-द्रोण भी हार गये, तो इस वक्त तेरे सिवा मेरी रक्षा और कौन करेगा ?" उन श्लोकों में भगवान् के जो विशेष सम्बोधन आये हैं, उनमें एक 'गोपीजन कृष्ण' है । याने "हे कृष्ण, तू जो कि गोपीजनों का प्रिय है, जिस पर गोपियों का प्यार था और जिसका गोपियों पर प्यार था, वह तू मेरे बचाव के लिए आ जा ।" ऐसी प्रार्थना द्रौपदी ने की । सारा भागवत इसी एक कथा पर खड़ा है । श्रीकृष्ण का गोपियों पर जो प्रेम था, स्त्रियों के लिए मन में जो इज्जत थी और बन्धु के नाते स्त्रियों के लिए वे जो काम करते थे, वह हिन्दुस्तान के इतिहास में अद्वितीय है । हिन्दुस्तान में श्रीकृष्ण-गाथा से मधुर गाथा सुनने को या पढ़ने को दूसरी नहीं मिली ।

भगवान् महावीर की समदृष्टि

महावीर का इतिहास एक अद्भुत इतिहास है । जिस जमाने में महावीर थे, उसके चालीस साल बाद गौतम बुद्ध अवतरित हुए । ऐसा ही मान लीजिये कि जितना लोकमान्य और आज की पीढ़ी में अन्तर है उतना ही महावीर और बुद्ध के जमाने में था । दोनों का जन्म एक ही प्रदेश में, बिहार में हुआ। इसीलिए हो सकता है कि महावीरस्वामी को बुद्ध ने देखा हो । महावीर वृद्ध होंगे और बुद्ध जवान, ऐसा मान सकते हैं और वैसे प्रमाण भी हैं । महावीर-आम्नाय में स्त्री-पुरुष में किसी प्रकार का भेद नहीं किया गया है । पुरुषों को जितने अधिकार दिये गये, वे सब अधिकार स्त्रियों को भी दिये गये थे। उन मामूली अधिकारों की बात नहीं कहता, जैसा कि इन दिनों होता है और जिनकी चर्चा आजकल बहुत चलती है । उस समय वैसे अधिकार प्राप्त करने की आवश्यकता भी महसूस नहीं हुई होगी । मैं तो आध्यात्मिक अधिकारों की बात कर रहा हूँ । पुरुषों को जितने आध्यात्मिक अधिकार हैं, वे सब स्त्रियों के भी हो सकते हैं । इन आध्यात्मिक अधिकारों में महावीर ने कोई भेद-बुद्धि नहीं रखी । परिणामस्वरूप उनके शिष्यों में श्रमणों से ज्यादा

श्रमणियाँ थीं । वह प्रथा आज तक जैनों में चली आयी है । आज भी जैन स्त्रियाँ 'सन्यासिनी' होती हैं । जैन-धर्म में नियम है कि संन्यासी अकेले नहीं घूम सकते । दो से ज्यादा भी नहीं घूम सकते और दो से कम भी नहीं—ऐसा सन्यासी और संन्यासिनियों के लिए नियम है । अत: दो-दो साध्वियाँ हिन्दुस्तान में घूमती दीखती हैं ।

भगवान् बुद्ध की सतर्कता

महावीर के चालीस ही साल बाद गौतम बुद्ध हुए, जिन्होंने स्त्रियों को संन्यास देना उचित नहीं माना । स्त्रियों को संन्यास देने में धर्म-मर्यादा नहीं रहेगी, ऐसा अन्देशा उनको था । एक दिन उनका शिष्य आनन्द एक बहन को ले आया और बुद्ध भगवान् के सामने उपस्थित किया और कहा : "यह बहन आपके उपदेश के लिए सर्वथा पात्र है, ऐसा मैंने देख लिया है। आपका उपदेश अर्थात् संन्यास का उपदेश इसे मिलना चाहिए ।" तब बुद्ध भगवान् ने उसे दीक्षा दी और कहा : "आनन्द, तेरे आग्रह और प्रेम के कारण यह काम कर रहा हूँ । लेकिन इससे अपने सम्प्रदाय के लिए बड़ा खतरा मैंने उठा लिया है ।" इस वाक्य से बुद्ध को जिस खतरे का अन्देशा था, वह प्रकट होता है। यद्यपि बौद्ध धर्म का इतिहास पराक्रमशाली है, उसमें दोष होते हुए भी वह देश के लिए अभिमान रखने लायक है । लेकिन जो डर बुद्ध को था, वह महावीर को नहीं था यह देखकर आश्चर्य होता है । इसका मेरे मन पर बहुत असर है । इसीलिए मुझे महावीर के प्रति विशेष आकर्षण है । बुद्ध की महिमा भी बहुत है । सारी दुनिया में उनकी करुणा की भावना फैल रही है । इसलिए उनके व्यक्तित्व में किसी प्रकार की न्यूनता होगी, ऐसा मैं नहीं मानता । महापुरुषों की भिन्न-भिन्न वृत्तियाँ होती हैं । लेकिन कहना पड़ेगा कि गौतम बुद्ध को व्यावहारिक भूमिका छू गयी और महावीर को वह छू न सकी । उन्होंने स्त्री-पुरुष में तत्त्वतः भेद नहीं रखा । वे इतने दृढ़प्रतिज्ञ रहे कि मेरे मन में उनके लिए एक विशेष ही आदर है ।

परमहंस का योगदान

रामकृष्ण परमहंस के सम्प्रदाय में स्त्री सिर्फ एक ही थी और वह थी श्री शारदादेवी, जो रामकृष्ण परमहंस की पत्नी थी, सो भी नाममात्र की । वैसे तो वह उनकी माता ही हो गयी थी तथा सम्प्रदाय के सभी भाइयों के लिए वह मातृस्थान में ही थी । फिर भी उनके सिवा और किसी

स्त्री को दीक्षा नहीं दी गयी थी । महावीर स्वामी के बाद २५०० वर्ष बीत गये, लेकिन हिम्मत नहीं हो सकती थी कि बहनों को दी जाय । मैंने सुना कि चार साल पहले रामकृष्ण परमहंस-मठ में स्त्रियों को दीक्षा दी जाय, ऐसा उन्होंने तय किया । स्त्री और पुरुषों का आश्रम अलग रखा जाय, यह अलग बात है, लेकिन अब तक स्त्रियों को दीक्षा ही नहीं मिलती थी, वह अब मिल रही है। इस पर से अन्दाज लगता है कि महावीर ने २५०० साल पहले स्त्रियों को दीक्षा देने में कितना बड़ा पराक्रम किया ।

श्रीकृष्ण की अभेद-दृष्टि

श्रीकृष्ण ने जो काम किया, वह संन्यास-दीक्षा का नहीं बल्कि यह था कि स्त्री-पुरुष भक्ति-भावना में समान रहें और अनासक्ति तथा निर्लेपभाव से आपस में किसी प्रकार का संकोच न रखें । यह जीवन का एक बुनियादी विचार है । बहनों को संन्यास का अधिकार मिल जायगा तो बहुत ज्यादा स्त्रियाँ संन्यास ले लेंगी, ऐसा कुछ होनेवाला नहीं है । उस हालत में कम ही बहनें ऐसा संन्यास लेंगी, यह अलग बात है । संन्यास का समान अधिकार लेने में एक तरह से खतरा है । किन्तु सर्वसामान्य गृहस्थाश्रम में भी संकोच न रहे, एक-दूसरे के साथ भाई-बहन की तरह मिलते रहें, यह श्रीकृष्ण ने बताया। इस जीवन-दृष्टि से श्रीकृष्ण ने काम किया, लेकिन तत्त्व-विचार की दृष्टि से मुझे महावीर स्वामी का इतिहास अद्वितीय लगता है ।

मध्ययुग में केवल भक्ति-मार्ग

फिर बीच में एक जमाना आया, जिसमें न महावीर के समान दीक्षा देने की किसीने बात की, न गांधीजी के समान वानप्रस्थ-वृत्ति की बात और न कृष्ण जैसी सब क्षेत्रों में एक साथ सहजभाव से बिना संकोच काम करने की किसीने बात की । उस जमाने में भक्ति के द्वारा स्त्रियों के लिए मुक्ति का द्वार खोलने की बात चली । उस समय बहनों को संन्यास-दीक्षा की मनाही थी । बीच में ऐसी स्थिति हो गयी कि पुरुष संन्यासी स्त्रियों का दर्शन भी नहीं कर सकते थे । मीरा का प्रसंग विख्यात है । उस समय सन्यासियों का इतना कड़ा रुख था और स्त्रियों को तो संन्यास देने की कोई बात ही नहीं थी । लेकिन उस जमाने में भक्ति-मार्ग ने रास्ता खोल दिया

। मारवाड़ में मीराबाई, उत्तर प्रदेश में सहजोबाई, महाराष्ट्र में मुक्ताबाई—आदि कई स्त्रियाँ भक्त-शिरोमणि

निकलीं । यह हिन्दुस्तान के लिए बड़ा गौरवशाली पृष्ठ है । लेकिन इसकी मर्यादा है । सांसारिक स्त्रियों के लिए यह नहीं है । इसका भक्ति से ताल्लुक है । जहाँ भक्ति का ताल्लुक आता है, वहाँ स्त्री और पुरुष का भेद मिट जाता है ।

गांधी ने समाज-प्रवेश कराया

गाँधीजी ने तो स्त्रियों की सारी शक्ति ही खोल दी । गांधीजी के कारण अहिंसारूपी शस्त्र सामने आया । वह शस्त्र पुरुष जितना इस्तेमाल कर सकते हैं, उससे ज्यादा स्त्रियाँ इस्तेमाल कर सकती हैं ।

पचीस साल पहले की बात है । चर्चा चल रही थी कि शराब की दुकान पर पिकेटिंग करने का क्या इन्तजाम किया जाय । किसीने कुछ सुझाया तो किसीने कुछ । गांधीजी ने सुझाया कि यह काम स्त्रियों का होना चाहिए। लोग सुनते ही रहे कि गांधीजी क्या बोल गये । जहाँ बिलकुल अनीतिमान् लोग जाते हैं और सब प्रकार का बुरा बर्ताव चलता है, ऐसे लोगों के बीच स्त्रियाँ क्या करेंगी ? लेकिन गांधीजी ने कहा कि वहाँ स्त्रियाँ ही काम करेंगी। जो सबसे गिरे लोग हैं, उनके खिलाफ हमारे पास जो ऊँची-से-ऊँची नैतिक शक्ति है, वही भेजी जानी चाहिए । अतः स्त्रियाँ वहाँ गयीं और उन्होंने जो काम किया, वह सारे भारत ने देखा ।

समानता के लिए अहिंसा अनिवार्य

एक बार अण्णासाहब वर्धा आये थे । वे बोले कि गांधीजी ने जादू कर दिया । स्त्रियों की उन्नति के लिए २५-२५ साल तक मेहनत करके जो काम हम नहीं कर सके और जिसकी कल्पना नहीं कर सके, वह चीज गांधीजी ने कर दी । यह गांधीजी ने क्या किया, यह तो अहिंसा ने किया है । जब तक आपका शस्त्र हिंसा रहेगा, तब तक दुनिया में आप कितने भी तत्त्व लायें, स्त्रियों का स्थान दोयम दर्जे का ही रहेगा । कितनी भी कोशिश करें, उन्हें अव्वल स्थान नहीं मिल सकता । इसलिए अगर स्त्रियों को अव्वल स्थान देना हो, तो यह जरूरी है कि रक्षण का साधन अहिंसा

हो। इससे मातृशक्ति को स्थान मिलेगा । बुद्ध भगवान् और महावीर के जमाने में स्त्रियों का उद्धार हुआ और गांधीजी की बदौलत स्त्रियों का उत्थान हुआ, कारण इन लोगों ने रक्षण-शक्ति अहिंसा मानी, हिंसा नहीं । हिंसा तो भक्षण-शक्ति है ।

रक्षक-देवता माँ

इस प्रकार हम देखते हैं तो पता चलता है कि भारत में स्त्रियों के लिए एक विशेष स्थान था । बल्कि यहाँ तो उसे 'माँ' के रूप में ही देखा गया। इसीलिए भारत में ‘अम्बे माँ’ और ‘काली माँ’ की पूजा होती है । स्त्री को यहाँ शक्ति के रूप में देखा गया और वह ऐसी शक्ति कि जो असुरों का संहार करेगी और सज्जनों का रक्षण करेगी । मातृशक्ति रक्षक देवता है । (पुरुष जब हिंसक-शक्ति का आवाहन करते हैं, तब स्त्री उसे वह रूप देती है ।) ‘उत्तर माँ अम्बा माँ, ‘पूरब माँ काली माँ ।' काली और दुर्गा के रूप में संहारिणी शक्ति की कल्पना भी है । अहिंसा और शांति की मूर्ति तो स्त्री है है ।

.

३. सप्त शक्ति

भगवान् ने भगवद्गीता में नारी की सप्त शक्तियों का विवरण इस प्रकार किया है : '**कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां समृतिर्मेधा धृतिः क्षमा**' । इनमें से एक-एक के विषय में हम थोड़ा सोचें । ये शक्तियाँ ऐसी हैं, जिनसे समाज का और व्यक्ति का धारण और पोषण होता है । विभूतियोग में यह श्लोक आया है। वह सारा विभूति का प्रवाह कोई सुव्यवस्थित योजनापूर्वक कहा गया है, ऐसी बात नहीं । जैसे-जैसे सहज जो शब्द सूझा वैसे बोलते गये हैं । वह एक जंगल ही है । इस दसवें अध्याय में कोई सुव्यवस्थित बगीचा नहीं है । लेकिन इस वाक्य में मैने व्यवस्था देखी, सात व्यक्तियों का चुनाव करके नारीणाम्—नारियों में इन शक्तियों के रूप में हूँ, ऐसा भगवान् ने अपना स्वरूप बताया। इसमें मैंने एक योजना देखी, इसलिए उसमें मेरा चिन्तन चला।

कीर्ति-कृति की सुगन्ध

'कीर्ति' के यानी संस्कृति के परिणामस्वरूप दुनिया में पैदा होनेवाली सद्भावना । कीर्तन-संकीर्तन नाम भी उसीमें से निकला है । कृति मूल है । कृति में कीर्ति अन्तर्भूत है । कृति की परम्परा चलानेवाली शक्ति की कीर्ति कहते हैं । वह एक स्त्री-शक्ति मानी गयी है । वैसे तो कृति की परंपरा चलाने की जिम्मेवारी सारे समाज पर ही पड़ती है, परन्तु कह दिया कि 'नारीणां कीर्तिः' । तो कृति की सुगन्ध फैलाने की जिम्मेवारी स्त्रियों पर विशेष रूप से आ गयी । और यह पाया भी गया है कि अच्छी कृतियों को संग्रहीत करने की, परम्परा को सतत जारी रखने की शक्ति स्त्रियों ने दिखायी है । परम्परा में से ही तो संस्कृति बनती है । कृति कोई कर लेते हैं, लेकिन फैलानेवाले कोई दूसरे होते हैं, जिनके हाथ में शिक्षण का अधिकार है । शिक्षण का प्रथम और विशेष अधिकार माता को ही है । वह अपने बच्चे को दूध पिलाते वक्त अपनी संस्कृति की कहानियाँ सुनायेगी और उससे बच्चे का दिल और दिमाग बनेगा । यह सबकी सब सत्ता विशेषत: स्त्रियों को हासिल है । कृति-परिणामस्वरूप समाज में सद्भावना जागृत रखकर उसकी परम्परा जारी रहे और तत्परिणाम संस्कृति बने—इतना कुल का कुल कार्य-विभाग साधारण तथा प्राधान्यत:, स्त्रियों का माना गया है ।

श्री = लक्ष्मी + कान्ति + शोभा

दूसरी शक्ति है—श्री । 'श्री' शब्द बहुत पुराने जमाने से चला आया है । श्री-राम, श्री कृष्ण हम कहते हैं । यह शब्द ऋग्वेद का है । अग्नि का वर्णन करते हुए उसकी श्री का वर्णन किया है: '**सदर्शत: श्री**:' । अग्नि की कांति दर्शन-श्री यानी दर्शनीय है । अग्नि से लक्ष्मी पैदा होती है । श्रम-शक्ति में भी श्री है । इस तरह 'श्री' शब्द के मुख्य अर्थ है—लक्ष्मी, कांति, शोभा ।

'श्री' सबका आश्रयस्थान है । उत्पादन बढ़ता है तो सबको आश्रय मिलता है । स्त्री की शक्तियों में 'श्री' का वर्णन किया है, तो स्त्री पर यह जवाबदारी आती है कि समाज में उत्पादन बढ़े | इसलिए वह उद्योगशीलता की प्रेरणा दे, ताकि लक्ष्मी रहे । घर साफ करना, आसपास का आँगन साफ करना इत्यादि स्वच्छता का काम स्त्री करती है । इसलिए तो कहा है : '**न गृहं गृहमित्याहु: गृहिणी गृहमुच्यते**' । —घर को घर नहीं कहते, गृहिणी को ही गृह कहते हैं। गृह की शोभा स्त्री कायम रखती है और बढ़ाती है । समाज और घर का—कुल-का-कुल स्वच्छता का विभाग श्री में आता है ।

कांति यानी प्रचार-शक्ति । सूर्य में सिर्फ आभा होती और प्रभा नहीं होती तो उसका प्रचार न होता । अंदर तेजस्विता हो और बाहर वह फैली हो, उसका नाम है कांति ।

शोभा यानी औचित्य । औचित्य के लिए ज्ञान की जरूरत है । तो कर्मक्षेत्र में सावधानी, व्यवहार में सावधानी, चिन्तन में सावधानी—अनेकविध सावधानियों का परिणाम 'श्री' है | तो हमारी 'श्री' कम न हो, शोभा कम न पड़े, हतश्री न हो—यह एक जिम्मेवारी समाज पर है, शायद स्त्रियों पर विशेष है ।

वाणी—वाचा-शुद्धि से वाचा-सिद्धि

मनुष्य को भगवान् ने अन्य प्राणियों से भिन्न ऐसी शक्ति 'वाणी' दी है। वाणी याने विचार-प्रकाशन का साधन । वाणी को हम कल्याणकारिणी शक्ति के रूप में परिणत कर सकते हैं । **'यद् यद् वदति तत्तदेव भवति'**—जिसकी वाचा सिद्ध है, वह मनुष्य जो भी बोलेगा, वैसा होगा।

इसीको आशीर्वाद-शक्ति कहा जाता है । आशीर्वाद या शापोक्ति सफल होती है, ऐसा हम सुनते हैं ।

जिसे हम सत्य समझते हैं, उसीका उच्चारण करना यह वाणी की प्रथम मर्यादा है । वाणी की दूसरी मर्यादा यह है कि वाणी से मित-भाषण होना चाहिए। मित-भाषण सत्य को मदद करनेवाला पथ्य है । तीसरी मर्यादा यह है कि वाणी से निन्दा-वचन न निकले, जिससे वाणी में हित-शक्ति आती है। वाणी यानी सिर्फ बाहर प्रकट होती है वह नहीं है, मन में जो उठती है उसे भी परावाचा कहते हैं, जो वाणी का गूढ़-रूप है । उससे भी हित-चिंतन, गुण-ग्रहण ही होना चाहिए । किसीका भी दोष-विश्लेषण का मौका आये तो वह उसके सामने हो, उभयमान्य हित-बुद्धि से हो ।

इसके अलावा मौन भी वाणी का ही एक साधन है । मौन गुण-चिन्तन के साथ होना चाहिए। इन पथ्यों के साथ वाणी का उपयोग हो तो वाणी बहुत बड़ी शक्ति का रूप लेगी ।

'स्मृति' में विवेक हो

'स्मृति' बहुत ही सूक्ष्म शक्ति है । जो कर्म किये जाते हैं, वे तो करने पर समाप्त होते हैं, लेकिन उनका एक संस्कार चित्त पर उठता है । शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्म होने के कारण संस्कार भी दोनों प्रकार के होते हैं । उन संस्कारों का रेकार्ड मन में होता है और उसे स्मृति कहते हैं । उनमें से कुछ स्मृतियाँ दीर्घकालीन होती हैं । सबकी सब स्मृतियों का बोझ चित्त नहीं उठाता । चित्त उनमें से कुछ फेंक देता है और कुछ रह जाता है, उसको स्मृति-शेष कहेंगे । अच्छी स्मृति का अच्छा और बुरी का बुरा असर चित्त पर होता है । यह काम 'विवेक' करता है । विवेक यानी चयन-शक्ति ।

बुरी स्मृतियाँ क्षीण हों और अच्छी स्मृति बढ़ती चली जाय, इसके लिए 'वीर्य-रक्षा' अत्यन्त आवश्यक है । जैसे दीपक में दीये को तेल मिलता है तो बत्ती की प्रभा, ज्योति कायम रहती है । तो जो तेल है वह वीर्य है और जो बत्ती है वह बुद्धि है और उसमें जो चमक है, ज्योति है वह

उसकी ज्ञान-प्रभा है । अगर नीचे का तेल कुण्ठित हो जाय तो बुद्धि की ज्ञान-प्रभा, जिसका स्मृति एक अंग है, क्षीण हो जायगी । इस तरह वीर्य-रक्षा पर ही स्मृति-शक्ति निर्भर है ।

फिर स्मृतियों में भी सबसे बुरी स्मृतियाँ होंगी, वे दूसरों की होंगी । मनुष्य अपने लिए उदार होता है । तो, स्मृति में भी अपना-पराया भेद मिटना चाहिए। इस तरह वीर्य-साधना, विवेक-साधना और आत्मज्ञान हो तो जीवन का परममंगल होगा और स्मृति-शक्ति का आविर्भाव होगा, जो कल्याणकारी होगी। अन्यथा स्मृतियाँ कल्याण भी कर सकती हैं और अकल्याण भी कर सकती हैं।

मेघा = आकलन + बलिदान

हरएक भाषा में कुछ शब्द ऐसे होते हैं, जिनका ठीक पर्याय दूसरी किसी भाषा में और उस भाषा में भी नहीं मिलता । ऐसे शब्दों में यह शब्द है—और 'मेघा' । गीता में त्यागी पुरुष के वर्णन में 'मेधावी' शब्द आया है—'**त्यागी सत्त्वसमाविष्टोमेधावी छिन्नसंशय**:'।—सत्त्वसमाविष्ट मेधावी त्यागी, छिन्नसंशय होता है । इसमें भगवान् ने शब्द के मूल अर्थ में प्रवेश किया है—मेधा यानी त्याग, बलिदान ।

मेधा शब्द मूल में आकलन-शक्ति का द्योतक है । अकल यानी आकलन-शक्ति । 'लक' धातु को 'आ' उपसर्ग जोड़कर 'आकलन' शब्द बनता है, वह मेधा है । मेधा यानी परिपूर्ण आकलन, जो विश्लेषण और संश्लेषण के जरिये होता है । व्यास और समास की उभयविध प्रक्रिया करके जो समग्र आकलन होता है, वह मेधा है ।

लेकिन बलिदान और त्याग के लिए भी संस्कृत में 'मेध' शब्द है । आकलन के लिए द्रष्टा होना पड़ता है, खेल में शामिल नहीं हो सकते । तो त्याग-बुद्धि मेधा का दूसरा अंग है । उसका तीसरा अंग है—संशुद्धि, पावित्र्य । आहार-शुद्धि से सत्व-शुद्धि होती है ।

भागवत में शुकदेव ने उद्धव को 'हरिमेधा' की पदवी दी है । यानी ये तीन शक्तियाँ जिसने हरि के चरणों में समर्पित की हैं ।

इस तरह भगवान् ने स्त्रियों से अधिक त्याग, अधिक अंतर्शुद्धि और अधिक सात्त्विकता की अपेक्षा रखी होगी । गांधीजी ने स्त्रियों को 'त्याग-मूर्ति' कहा ही है । स्त्रियाँ त्याग तो बहुत करती हैं, परन्तु वह त्याग लाचारी का होता है । वह त्याग प्रीति से, आकलन-दृष्टि से, द्रष्टा बनने के लिए नहीं किया होता है, इसलिए इससे आकलन-शक्ति बढ़ने का अनुभव नहीं आता ।

धृति में संकल्प-बल

छठी शक्ति है—धृति । मनु ने दशविध धर्मों में प्रथम 'धृति' को रखा है । धृति याने धीरज। धृति का पूरक गुण है—उत्साह । गीता ने सात्त्विक कर्त्ता के लक्षण बताये : '**धृत्युत्साहसमन्वित**:' । उत्साह यानी कर्म-चेतना, कर्म-प्रेरणा । उत्साह की कायम रखनेवली शक्ति 'धृति' है ।

'धृति' का दूसरा अर्थ है एक इंद्रिय, एक बुद्धि-शक्ति, जो प्राण के परिणामस्वरूप पैदा होती है । एक हिया बोध-शक्ति और दूसरी है, अपने पर नियंत्रण करनेवाली शक्ति । यह जो दूसरी शक्ति है, जो प्राण-शक्ति के परिणामस्वरूप है, वह है धृति । धृति का अंग्रेजी पर्याय बताना मुश्किल है, लेकिन उसके नजदीक का शब्द है 'विल पावर'। अपने पर पर काबू रखने की, संकल्प करके उसको पार करने की हिम्मत रखनेवाली शक्ति धृति है । मन, प्राण और इंद्रियों की क्रियाओं को धारण करनेवाली शक्ति । प्रबोधन बुद्धि से होगा, नियमन धृति से होगा । यह बुद्धि की पूर्ति करनेवाली शक्ति है

तो इस विषय में स्त्री से खास अपेक्षा भगवान् ने रखी और दीखता भी वैसा है । कुल मिलाकर स्त्रियों में सहनशीलता बहुत होती है । सहन करने के प्रसंग भी काफी आते हैं तो वे उसमें धृति गुण का विकास अधिक कर सकती हैं । अहिंसा का जब जमाना आयेगा, उसमें खास प्रकार की धृति की जरूरत रहेगी, जिसमें मुमकिन है कि स्त्रायाँ पुरुष से कुछ ज्यादा टिकें। बीमारों की सेवा करने में कभी-कभी बहनें इतनी तकलीफ उठाती हैं कि वहाँ कोई दूसरा जायगा तो उसका दिल फट जायगा । लेकिन बहनें अत्यन्त तकलीफ उठाकर रोज मृत्यु की तरफ जानेवाले को देखते हुए उसकी सेवा करती हैं। कभी-कभी उल्टा अनुभव भी आता है । अपने बच्चे का

ऑपरेशन माँ नहीं देख सकती । इतनी ध्रति नहीं है । परन्तु उसका यदि शिक्षण मिले तो विकास हो सकता है

पृथ्वीसम क्षमा

कोई अपना अपराध करता है, निन्दा-अपमान करता है तो उसे सहर्ष, उदारतापूर्वक माफ करने को क्षमा कहते हैं । क्षमा याने पृथ्वी | पृथ्वी सहज भाव से हम सबका बोझ उठाती है । क्षमा सहज होनी चाहिए । दशविध धर्मों में नाम 'क्षमा' का है । (जैन-धर्म में दशविध धर्मों में क्षमा का प्रथम स्थान है ।)

क्षमा का दूसरा अर्थ है : 'द्वन्द्व-सहिष्णुता' । द्वन्द्व यानी परस्पर-विरुद्ध बर्ताव, शीत-उष्ण, मान-अपमान, सुख-दु:ख आदि सहन करना क्षमा है ।

किसीने अपराध किया तो उसे दण्ड न देना, यह प्रथम स्थिति हुई । उसे भूल जाना, यह दूसरी स्थिति हुई और कोई अपकार करने आया है, उसमें भी गुण हैं और उन्हें ग्रहण करना, यह तीसरी स्थिति है । चौथी स्थिति है—अपकार करनेवाले पर उपकार करने का मौका आया तो उसको न खोकर उसका उपकार करना । और पाँचवीं स्थिति है—यह सब करते हुए चित्त पर इसका कोई बोझ न हो, स्वभाव से ही किया जा रहा है, ऐसी अवस्था होना ।

क्षमा में 'क्षम' धातु है । गुजराती में उसे 'खमवुं' कहते हैं । क्षमा को जब शक्ति के रूप में देखते हैं तो वह सत्याग्रह का अत्यन्त सूक्ष्म और सौम्यरूप है।

प्रेम एक बहुत बड़ी चीज है । परन्तु उसकी भी शक्ति तब बनती है, जब प्रेम क्षमा के रूप में आता है । अपराध को क्षमा-शस्त्र से खण्डित करना । व्यक्तिगत और सामाजिक—दोनों क्षेत्रों में यह लागू होता है । यों प्रेम का सप्त शक्तियों में उल्लेख नहीं किया गया, परन्तु प्रेम का अत्यन्त उत्कर्षमय रूप ध्यान में लेकर 'क्षमा' शब्द इस्तेमाल किया है । शस्त्ररूप और शक्तिरूप से यहाँ 'क्षमा' की तरफ देखा गया है ।

इस प्रकार भगवान् ने गीता में 'सप्त शक्ति' का विवरण किया, जो ऐसी शक्तियाँ हैं, जिससे समाज का और व्यक्ति का धारण और पोषण होता है।

४. ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य भारतीय संस्कृति का एक खास विषय माना जायगा । यद्यपि दुनिया के सब समाजों में इस पर विचार हुआ है और प्रयोग हुए हैं, फिर भी हिन्दुस्तान के साहित्य और संस्कृत भाषा में ब्रह्मचर्य के प्रति जितना आदर है और उस विषय पर जितना गहरा चिन्तन मिलता है, उतना अन्यत्र नहीं।

ब्रह्मचर्य का अर्थ

'ब्रह्मचर्य' शब्द का अर्थ है मनुष्य ब्रह्म की खोज में अपना जीवन-क्रम रखे । ब्रह्मचर्य में हमारे सामने कोई 'निगेटिव' बात नहीं रखी गयी, बल्कि 'पाजिटिव' बात रखी गयी है । उसमें किसी खास चीज से परहेज हो, इतनी ही बात नहीं है, बल्कि एक बात प्रत्यक्ष करने की है । उसीको ब्रह्मचर्य कहेंगे । 'ब्रह्मचर्य' का अर्थ है - सबसे विशाल ध्येय अर्थात् परमेश्वर का साक्षात्कार करना । उससे कम कोई बात नहीं कही गयी है । इतना विशाल और व्यापक ध्येय है वह ।

वीर्य-हानि यानी प्रज्ञा-हानि

शंकराचार्य कहते हैं कि जो ब्रह्माध्ययन करता है और ब्रह्म-प्राप्ति की साधना में रत है और सब ब्रह्म है, ऐसा जानता है, वह ब्रह्मचारी कहा जाता है । अपनी जो प्रज्ञा है वह ज्योति है और मानव का वीर्य तेल है । अगर वीर्य-हानि होती गयी तो प्रज्ञा खतम होगी । हम कल्पना नहीं कर सकते कि शंकराचार्य जैसे प्राज्ञ, ज्ञानी ब्रह्मचर्य की हानि करते हुए ब्रह्मचर्य रख सकते थे ! न्यूटन को प्रज्ञा की जरूरत थी, इसलिए उसके लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य जरूरी था ! वीर्य-हानि यानी प्रज्ञा-हानि । प्रज्ञा के लिए वीर्य की उपयोगिता है । महामेधावी संशोधकों के लिए, चाहे वह आध्यात्मिक हों, चाहे वैज्ञानिक हों, प्रज्ञा की आवश्यकता होती है । जिनको भगवद्दर्शन की धुन है वे अगर प्रज्ञा को क्षीण करते जायेंगे, तो कहाँ से भगवद्दर्शन होगा ?

केवल अविवाहित रहने से मनुष्य ब्रह्मचारी नहीं बनता है । ब्रह्मचारी ऊर्ध्वरेतस् होता है। ब्रह्मचर्य में 'चर्' धातु है । सुन्दर शब्द है । उतना सुन्दर शब्द अंग्रेजी में नहीं है । आजकल अंग्रेजी में 'चेस' (पावित्र्य) कहते हैं । 'वाव ऑफ चेस्टीटी' यानी ब्रह्मचर्य । (यह एक नया शब्द बनाया गया ।) लेकिन ब्रह्मचर्य सर्वोत्तम शब्द है । 'ब्रह्म के लिए चर्या' वह ब्रह्मचर्य है । कहते हैं, भीष्मदेव ब्रह्मचारी थे । लेकिन मैं नहीं कहता कि वे ब्रह्मचारी थे । वे पितृचारी थे । अपने पिता के लिए उन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन किया था । आजकल राष्ट्रचर्य चलता है । भले ही उन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन किया हो, पर वह ब्रह्मचर्य नहीं, राष्ट्रचर्य है । ब्रह्मचर्य में तो ब्रह्म को नित्य सामने रखना पड़ता है और सारी चर्या, सारा जीवन उसीके लिए होता है । तब वह ब्रह्मचर्य कहा जाता है । केवल विवाह नहीं किया, इतने से नहीं होता है । ब्रह्म-प्राप्ति का, ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग कठिन है।

पितृ राष्ट्र-चर्या में से ब्रह्मचर्या

किसी अन्य बड़े ध्येय के लिए भी ब्रह्मचर्य की साधना की जाती है। जैसे भीष्म ने अपने पिता के लिए ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा की थी और उसका भलीभाँति जिन्दगीभर पालन किया । आगे चलकर वे उसकी आध्यात्मिक गहराई में उतरे । उनकी बड़े आत्मनिष्ठ पुरुषों में गिनती होती है । यद्यपि उनका आरंभ ब्रह्म की प्राप्ति के लिए नहीं हुआ था, आरम्भ में वह 'पितृचर्य' था । फिर भी उनका जो ध्येय था, वह बड़ा ही था । अपने पिता के लिए उन्होंने त्याग किया और फिर उसका अर्थ उन्होंने गहरा सोच लिया । इसी तरह गांधीजी ने भी समाज की सेवा के लिए ब्रह्मचर्य का आरम्भ किया, लेकिन बाद में उनका विचार उस चीज की गहराई में पहुँचा । इस तरह किसी व्यापक और विशाल ध्येय के लिए भी आरम्भ करके फिर आगे बढ़ना होता है ।

इसी तरह ब्रह्मचर्य दूसरी चीजों के लिए भी होता है । कुछ लोग विज्ञान की खोज में इतने एकनिष्ठ होते हैं कि उस हालत में गृहस्थाश्रम में पड़ना उन्हें उचित नहीं मालूम होता । तन्मयता एक बड़ी शक्ति है, इसीलिए उन्हें ब्रह्मचर्य सधता है । यद्यपि वह पूरा ब्रह्मचर्य नहीं है । कारण, जब तक 'ब्रह्मनिष्ठा' उत्पन्न नहीं होती तब तक पूरा 'ब्रह्मचर्य' नहीं कहा जा सकेगा ।

सर्वेन्द्रिय-निग्रह

ब्रह्मचर्य में बहुत बड़ी साधना की जरूरत है । सिर्फ एक इन्द्रिय का निग्रह ही उसका अर्थ मान लिया जाय, तो खतरा पैदा होगा । उसका अर्थ है—सभी इन्द्रियों पर काबू पाना । इसलिए ब्रह्मचर्य में दो बातें होती हैं : (१) ध्येय उत्तम होना चाहिए और वह विकसित होते-होते ब्रह्म की उपासना तक पहुँच जाना चाहिए । (२) सब इन्द्रियों पर और मन पर काबू होना चाहिए। इसका मतलब यह नहीं कि इन्द्रियों और मन को दबाना चाहिए । ब्रह्मचर्य में यह बात है कि मन और इन्द्रियों को उचित दिशा में ले जाना है । अगर दबाने के खयाल से काम चला, तो मनुष्य का विकास नहीं होगा । वह तो निगेटिव बात है । इसलिए सब इन्द्रियों का उचित उपयोग हो, इन्द्रियों का उचित नियमन हो, तो साधकों को बहुत लाभ होता है ।

तलवार की धार पर चलना है

इन्द्रिय-निग्रह बड़ा कठिन मामला है, खास करके इस जमाने में । जरा आँख खोलो तो बाहर आपको इन्द्रियों को खींचनेवाली अनन्त चीजें मिलेंगी, जितनी पहले नहीं थीं । स्वाभाविक आकर्षण थे वे । लेकिन अब और असंख्य कृत्रिम आकर्षण पैदा किये गये हैं । कया सिनेमा, क्या गाने, क्या साहित्य - ये सब कितने आक्रमणकारी हैं ! चारों ओर से हमला है । खास करके जो राष्ट्र आज वैभव के शिखर पर हैं, वहाँ से जो साहित्य आता है, वह हद दर्जे का खराब होता है । इसलिए इन्द्रियों को काबू में रखना बहुत कठिन बात हो गयी है । तुलसी-रामायण में एक जगह आता है, 'काम-कौतुकम्' | काम को इजाजत मिल गयी । उसने कौतुक शुरू कर दिया और हर चीज में वह दाखिल हुआ । उससे वही तरे, जिनको भगवान् ने तारा ।

ब्रह्मचर्य के बिना अहिंसा नहीं

गीता में आता है कि '**ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते**'—शारीरिक तप में ब्रह्मचर्य और अहिंसा दोनों आते हैं । अगर दोनों को इकट्ठा नहीं रखेंगे और मानेंगे कि विषय-वासना बढ़ती जाय और फिर भी अहिंसा रहे, तो वह होगा नहीं । इसीलिए महावीर और बुद्ध ने अहिंसा के

साथ-साथ बह्मचर्य और तृष्णा-त्याग पर जोर दिया । पतंजलि ने भी पंच महाव्रतों में अहिंसा के साथ ब्रह्मचर्य को रखा ही है ।

विरक्ति के साथ पाणिग्रहण

जैसे गृहस्थ किसी कन्या के साथ पाणिग्रहण करता है, वैसे ब्रह्मचर्य विरक्ति के साथ पाणिग्रहण करता है और जैसे पत्नी पति को संयम में रखती है वैसे विरक्ति ब्रह्मचारी को संयम में रखती है । जैसे गृहस्थ को लकड़ी जलाकर, रसोई पकाकर अतिथियों का स्वागत करना होता है, वैसे ब्रह्मचारी को योगरूपी अग्नि जलाना चाहिए ।

विकार को दबाना होगा

इन दिनों फ्रायड का शास्त्र चला है कि वासना को सप्रेस नहीं करना चाहिए । यह कुछ समझ में नहीं आता । हम वासना को न दबायें तो क्या हम उससे दब जायें ? अपने अन्दर की वासना को पहचानना चाहिए । विकार पैदा हो न हो ऐसा मनुष्य तो स्थितप्रज्ञ हो गया, परंतु सामान्यत: विकार तो उठेगा, परन्तु उसको बाहर न आने देने का पूरा प्रयत्न करना होगा ।

सौन्दर्य का उपभोग नहीं, पूजा

उसके लिए विपुल योग साधना पड़ेगा । सबमें परमेश्वर देखना होगा। सौंदर्य मेरे उपभोग के लिए नहीं है । वह तो परमेश्वर का सर्जन है । वह भले ही वहाँ रहे । सुन्दर फूल देखा तो वह डाली पर ही भले रहे, वहीं ईश्वर की पूजा हो जाती है । सुन्दर फूल देखकर बालों में डालने की इच्छा क्यों होनी चाहिए ? वैसे ही सुन्दर स्त्री देखकर विकार क्यों उठना चाहिए ? बल्कि उस वक्त तो पावित्र्य और माधुर्य ही पैदा होना चाहिए ।

श्रीरंगपट्टन में गीतगोविन्द की नृत्य-नाटिका में एक लड़की कृष्ण-नृत्य करती थी । मेरे सामने ही वह नृत्य हुआ । उसे देखकर मुझे लगा कि मेरे सामने साक्षात् नटवर नाच रहे हैं, परन्तु बाद में मैंने सुना कि कुछ जवान लोग उस लड़की के पीछे पड़े थे । यह कितनी हीन मनोवृत्ति है ! वास्तव में दृष्टि को ही ऐसी आदत हो जानी चाहिए कि वह सर्वत्र हरिदर्शन करे !

वास्तव में सौंदर्य का आकलन समग्र दर्शन के बिना होता नहीं है । जीवन में जितना सत्य का शोध होगा उतनी जीवन की समग्रता ध्यान में आयेगी और उतना ही गंभीर सौंदर्य प्रकट होगा।

आज सौन्दर्य-दृष्टि विकृत हुई है

परन्तु आज सौन्दर्य ने विकृत रूप धारण किया है । सौन्दर्य के नाम से लोग वासना के शिकार हो रहे हैं । समाज में भोग-साधन तेजी से बढ़ रहे हैं । एक प्रकार से, सेक्स का विस्फोट ही होता जा रहा है ।

पहले आध्यात्मिक मूल्य, अब सामाजिक भी

लेकिन अजीब बात है । इधर तो विषम-वासना के लिए उत्तेजन देनेवाली सामग्री लोगों के सामने पेश की जा रही है और उधर कहा जा रहा है कि सन्तान नहीं बढ़नी चाहिए । यानी इस वक्त ब्रह्मचर्य को एक नया सामाजिक मूल्य आ गया है । पहले तो बहुत व्यक्तिगत मूल्य था । देह को वश करके आत्मोन्नति की राह में ऊर्ध्वगामी होना, यह उसका मूल्य था । वह तो त्रैकालिक है । पहले था, आज भी है, आगे भी रहेगा । लेकिन आज नया सामाजिक मूल्य आया है कि समाज को अब ज्यादा सन्तति की जरूरत नहीं ।

रस-निरसन की साधना

उस हालत में जो ब्रह्मवादी हैं, वे तो नाचेंगे । कहेंगे कि हमें अनपेक्षित क्षेत्रों से बल मिल रहा है । पहले धर्मगुरु संयम के अनुकूल बोलते थे, लेकिन आज समाजशास्त्र ब्रह्मचर्य के अनुकूल बोल रहा है । इसलिए मैं कहता हूँ कि विज्ञान के जमाने में अगर मनुष्य को जीवित रहना है तो अध्यात्म बड़ा जोर करेगा, अन्यथा मनुष्य उखड़ जायगा । इसलिए 'स्थितप्रज्ञ-लक्षण' में प्रज्ञा अच्छी बनाने के लिए इन्द्रिय-निग्रह की जो बात कही है, वह स्थूल नहीं है। क्योंकि अगर विषयों का ध्यान रहा और बाहर-बाहर से ही रोकना हुआ, तो काम नहीं बनेगा | इसलिए निग्रह अन्दर से होना चाहिए । रस अन्दर रहा तो वह फूट निकलेगा । इसलिए रस-निवृत्ति के लिए इन्द्रिय-निग्रह के उपरांत भक्ति तथा चित्त-संयम की भी जरूरत पड़ेगी । जहाँ दुनिया आँख खोलकर

बैठी है, वहाँ आँख बन्द करने की जरूरत पड़ेगी । नहीं तो दिल और दिमाग धर्मशाला-अधर्मशाला ही कहना चाहिए—बन जायगी । इसलिए अब हम ब्रह्मचर्य को पूर्ण अर्थ में विकसित करने के लिए आध्यात्मिकों के समक्ष बड़ा उत्साहकारक समय आया है ।

समाज की हरी झंडी

ऐसा न होता तो कन्याओं का यह जो ब्रह्मविद्या-मन्दिर बना है, वह मान लीजिये ३००-४०० साल पहले बनता तो इस पर कितना हमला होता ? समाज के लोग उसको टिकने नहीं देते, बल्कि उसको अभिशाप समझते । और कहीं किसीके द्वारा गलत काम हो जाता, तो उसको इतना व्यापक विज्ञापन मिलता, मानो इस संस्था में अनाचार ही पनपता है, ऐसा दिखाया जाता और उसको खत्म करने की चेष्टा होती । लेकिन अभी ऐसी चेष्टा नहीं हो रही, क्योंकि इस प्रकार का गम्भीर प्रयोग कहीं चलता हो, तो उसके लिए समाज में आदर की भावना रहती है । मानते हैं कि अगर यह प्रयोग सफल हुआ तो उसकी समाजशास्त्र को ही जरूरत है । इसलिए इस वक्त ब्रह्म-विद्या-मन्दिर के लिए आशीर्वाद है - ज्ञानियों का, सज्जनों का और सबसे बड़ी बात-समाजशास्त्रियों का ।

सर्वसाधक साधना-ब्रह्मचर्य

आज सारा समन्वय ब्रह्मचर्य में आकर बैठ गया है । समाज के लिए जरुरी, व्यक्ति के लिए जरुरी, तत्त्वज्ञान के लिए जरुरी तो माना ही था प्राचीनकालवालों ने । इसीलिए तो ब्रह्मचर्य नाम दिया । ब्रह्म-प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य साधन है ।

उपनिषद् में एक जगह आता है, कोई कहता है यज्ञ करो, कोई कहता है स्त्र करो, कोई कहता है फाका करो । तो कहा कि "अरे भाई, '**अथ यद् यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तत्**' - यज्ञ-यज्ञ कहते हो, वह ब्रह्मचर्य ही है । '**अथ यद् सत्रायणं इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तत्**'- सत्रायण कहते हो, वह ब्रह्मचर्य ही है । '**अथ यद् अनाशकायनं इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तत्**'- उपवास कहते हो, वह ब्रह्मचर्य ही है । यज्ञ, सत्र, उपवास ब्रह्मचर्य में आते हैं । इस प्रकार करके सब साधना ब्रह्मचर्य में समाप्त होती है, सम्मिलित होती है, अंतर्भूत होती है ।

हर आश्रम में ब्रह्मचर्योपासना

इस दृष्टि से भारत के धर्म-विचार में सुव्यवस्थित आयोजन किया गया है । हिन्दू-धर्म में चार आश्रमों की व्यवस्था है । मनुष्य में सर्वप्रथम गुरु-निष्ठा होनी चाहिए । उसके साथ ब्रह्मचर्य जोड़ दिया । यह हुआ पहला आश्रम, ब्रह्मचर्याश्रम । फिर दूसरा आता है गृहस्थाश्रम । उसमें पति-पत्नी की एक-दूसरे के लिए निष्ठा आती है । उसके साथ भी ब्रह्मचर्य जोड़ दिया | उसके बाद आता है, वानप्रस्थाश्रम । उसमें समाज-निष्ठा के साथ ब्रह्मचर्य जोड़ दिया। और फिर अन्तिम संन्यास-आश्रम में ब्रह्म-निष्ठा होती है । उसके साथ भी ब्रह्मचर्य जोड़ दिया । इस तरह पहले से आखिर तक ब्रह्मचर्य के लिए विचार रख दिया है । विचार से ही पोषण मिलता है । बिना विचार के काम नहीं होता। बिना विचार से तकलीफ उठायी जाय तो वह ताप होता है, परन्तु विचार से तकलीफ उठायी जाय तो वह आनन्दमय ही होती है, इसलिए उसको 'तप' कहा जाता है ।

जीवन की बुनियादी निष्ठा

ब्रह्मचर्याश्रम में गुरु-निष्ठा की बात थी । अध्ययन करना था । उसके साथ ब्रह्मचर्य आता है । ब्रह्मचर्य उसमें बुनियादी निष्ठा है । ब्रह्मचर्य से मनुष्य के जीवन के लिए बुनियाद बन जाती है। ब्रह्मचर्य ऐसा गुण है, जिससे मनुष्य को नित्य मदद मिलती है और जीवन के सब प्रकार के खतरों में सहायता मिलती है । इसीलिए बुनियादी तालीम में भी यही व्यवस्था की जाय कि बच्चों में सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य की निष्ठा पैदा हो ।

अध्ययन-काल समाप्त होने के बाद गृहस्थाश्रम आता है । उसमें पति-पत्नी की परस्पर निष्ठा और केवल सन्तान के हेतु से मिलना, यह बात आती है । आजकल दुनिया में यह बात चलती नहीं है, परन्तु लोगों को अगर यह बात जँच जाय, तो चल सकती है । इस तरह गृहस्थाश्रम का आधार भी ब्रह्मचर्य होता है । सन्तान की वासना के साथ सन्तान की सेवा और अतिथि-सेवा की बात आती है । ये सब साधन ब्रह्मचर्य के लिए आवश्यक हैं । उसके बाद वानप्रस्थाश्रम और संन्यस्ताश्रम में भी बुनियाद तो ब्रह्मचर्य ही है ।

धर्म का जीर्णोद्धार आवश्यक

हिन्दुस्तान के धर्म में यह जो खास बात थी, वह अब नहीं रही है। अब तो सिर्फ थोड़ा भक्ति-मार्ग रहा है, जो आध्यात्मिक जीवन का आधार है । उस बुनियाद पर सारा मकान खड़ा करना है | आज तो हिन्दू-धर्म का मकान गिर गया है । हिन्दू-धर्म की फिर से स्थापना करनी है, जिसमें ब्रह्मचर्य एक बहुत बड़ा विचार है ।

इसलाम का भिन्न आदर्श

इसलाम ने यह विचार रखा है कि गृहस्थ-धर्म ही पूर्ण आदर्श है । बाकी के आदर्श, जैसे ब्रह्मचर्य का, गौण आदर्श है । वैसे भगवान् ईसा आदरणीय थे, ब्रह्मचारी थे । परन्तु इसलाम की दृष्टि से उनका जीवन पूर्ण जीवन नहीं माना जायगा । मुहम्मद का आदर्श पूर्ण है । वे गृहस्थ थे । वैसे ब्रह्मचारी को 'एक्सपर्ट' जैसा माना जायगा । विशेषज्ञ एकांगी होते हैं, परन्तु समाज को उनकी भी जरूरत होती है । इसी तरह जिन्होंने शुरू से आखिर तक ब्रह्मचारी का जीवन बिताया, उनका आदर्श पूर्ण नहीं है । पुरुषोत्तम, पूर्ण आदर्श तो गृहस्थ ही है । स्त्री और पुरुष दोनों के लिए गृहस्थ का ही आदर्श है । इस दृष्टि से मुसलमानों का चिन्तन चलता है ।

वैदिक आदर्श

वैदिक धर्म में दूसरी ही बात है । यहाँ पर ब्रह्मचारी को ही आदर्श माना गया है । बीच में जो गृहस्थाश्रम आता है, वह तो वासना के नियंत्रण के लिए है । इस तरह नियंत्रण की एक सामाजिक योजना बनायी गयी थी, जिससे मनुष्य ऊपर की सीढ़ी जल्द-से-जल्द चढ़ सके । परन्तु उसमें सर्वोत्तम आदर्श तो ब्रह्मचारी का ही था ।

स्त्री-पुरुष में भेद

बीच के जमाने में स्त्री-पुरुष में भेद माना गया, जिससे हिन्दू-धर्म की दुर्दशा हो गयी । पुरुष को तो ब्रह्मचर्य का अधिकार रहा, लेकिन स्त्री को इसका अधिकार नहीं रहा । इसलिए स्त्री को गृहस्थाश्रमी बनना ही चाहिए, ऐसा माना गया । अगर वह गृहस्थाश्रमी नहीं बनती, तो अधर्म

होता है । अधर्म का यह आरोप सहन करते हुए भी कुछ ऐसी स्त्रियाँ निकलीं, जो समाज के खिलाफ खड़ी होकर ब्रह्मचारिणी रहीं । जैसे मीराबाई और महाराष्ट्र की मुक्ताबाई । लेकिन समाज ने जो उन पर अधर्म का आरोप किया ही । उन्होंने अपने लिए ब्रह्मचर्य का आग्रह रखा, लेकिन समाज ने उनके ब्रह्मचर्य का हक नहीं माना ।

दोष का संशोधन जरुरी

इस तरह बीच के जमाने में यह एक बहुत बड़ा दोष पैदा हुआ । अब इस जमाने में उसका संशोधन करना जरुरी है । हक देने पर भी उसका पालन करनेवाले कम ही होंगे । परन्तु कम हो या ज्यादा, स्त्री को ब्रह्मचर्य का अधिकार नहीं है, यह बात ही गलत है । उससे अध्यात्मिक अपात्रता पैदा होती है । अगर कोई व्यावहारिक अपात्रता होती, तो उसमें सुधार करना सम्भव था । लकिन अपात्रता आध्यात्मिक ही हो, तो बड़े दु:ख की बात है । हिन्दुस्तान में बीच के जमाने में जो तेजोहानि हुई, उसका यह भी एक कारण है कि स्त्रियों को ब्रह्मचर्य का अधिकार ही नहीं रहा ।

गलतफहमी

प्राय: यह माना जाता है कि स्त्रियों में काम-वासना ज्यादा होती है। लेकिन यह ख्याल गलत है । स्त्री को प्रसूति के परिणाम भोगने पड़ते हैं और बच्चों के लिए बड़ी तकलीफ उठानी पड़ती है । तो, जिसमें इतनी तकलीफ उठानी पड़ती है, उसके प्रति उसके मन में अधिक वासना हो, यह सम्भव नहीं लगता । एक दिन मैं मन्दिर देखने गया था । वहाँ माता देवकी का चित्र था । उस चित्र में दिखाया गया था कि उसे प्रसूति की वेदना हो रही है। जब उसकी तकलीफ मैंने देखी, तो मुझे लगा कि जब इतनी तकलीफ हो रही है, तो भगवान् जन्म ही न लेते । मुझे कई बार लगा कि मेरा शरीर तो कमजोर है, अगर मैं स्त्री होता और ऐसी हालत में मुझे बच्चे पैदा होते, तो मैं कैसे टिक सकता ? लेकिन माना जाता है कि स्त्री को संतान की इच्छा रहती है। स्त्री सृष्टि में मातृप्रेरणा है । इसलिए यह हो सकता है कि स्त्री को प्रथम संतान की इच्छा हो । बिलकुल ही सन्तान-विरहित रहने का आदर्श शायद पुरुष की अपेक्षा स्त्री को अधिक कठिन मालूम होता हो।

परन्तु एक सन्तान हो जाने के बाद स्त्री को वासना नहीं रहती होगी, क्योंकि उसे सन्तान होते समय काफी तकलीफ उठानी पड़ती है । यह मेरा अपना विश्लेषण है । मैं नहीं जानता कि यह कहाँ तक सही है ।

तात्पर्य यह कि यह गलतफहमी फैलायी गयी है कि स्त्री में काम-वासना अधिक होती है । इसी गलतफहमी का परिणाम है कि स्त्री पर अंकुश रखा जाता है । इसका परिणाम हिन्दुस्तान में यह हुआ कि कहीं अत्याचार हो जाता है, तो स्त्रियाँ भी पुरुषों का बचाव करती हैं । जरा गहराई से देखें, तो मालूम हो जायगा कि इसका मतलब है कि स्त्री के मन में पुरुष के लिए अनादर है । पुरुष कोई गलत काम करता है, तो कोई बहुत बड़ी बात हो गयी, ऐसा उसे नहीं लगता । अगर कोई स्त्री बीड़ी पीती हैं, तो उसको गलत माना जाता है । लेकिन पुरुष पीता है, तो गलत नहीं लगता । मुझे भी स्त्रियों को बीड़ी-सिगरेट पीते देखकर बड़ा भयानक मालूम होता है । पर ऐसा क्यों होना चाहिए ? स्त्री-पुरुष समान ही तो हैं ।

स्त्री की अपात्रता खत्म हो

हिन्दुस्तान में स्त्री के लिए आध्यात्मिक उच्चता की भावना है और स्त्री के मन में भी वही भावना है । इसलिए कोई व्यभिचारी पुरुष निकले, तो स्त्रियाँ ही उसे मुआफ कर देती हैं । वे कहती हैं, “अरे, पुरुष ही है यह !” इसको स्त्री का 'सुपीरिआरिटी काम्प्लेक्स’ कहा जा सकता है । लेकिन स्त्रियों के लिए जो गलत मान्यता हुई हैं, उसे हटाना चाहिए, अन्यथा समाज का उद्धार न होगा । मैंने तो कई बार कहा है कि जब तक शंकराचार्य जैसी कोई स्त्री नहीं निकलेगी, जो कि पुराने शास्त्रों की गलतियाँ दिखायेगी, शास्त्र फाड़ डालेगी, तब तक स्त्रियों का उद्धार नहीं होगा । लेकिन शास्त्रों की गलतियाँ बताने के काम तो वही कर सकती है, जो अत्यन्त तेजस्वी, वैराग्यशील और ज्ञाननिष्ठ हो । तब अपात्रता नष्ट होगी और तभी स्त्री को ब्रह्मचर्य-पालन का वास्तविक हक प्राप्त होगा । पर, आज तो ब्रह्मचारिणी स्त्री की समाज में निन्दा ही की जाती है ।

अमृत के नाम पर विष

मैंने देखा है कि विषय-वासना को प्रेरणा देनेवाला जो श्रृंगारिक साहित्य है, उससे मनुष्य जितना गिर सकता है, उससे भी अधिक गिर सकता है उसको पढ़ने से, जो कि वासना से बचने के लिए लिखा गया है । इतना गन्दा साहित्य होता है वह !

माँ के सामने सुरक्षितता

होना तो यह चाहिए कि ब्रह्मचारी के सामने यदि कोई स्त्री आती है, तो वह अपने को ज्यादा पवित्र और सुरक्षित महसूस करे । मेरा अपना तो यह अनुभव है कि जब सामने कोई स्त्री आती है, तो लगता है कि मेरी माता ही आ गयी । इसलिए मुझे अधिक सुरक्षा मालूम होती है । माता पास खड़ी हो, तो हम गलत काम नहीं करते । उसी तरह ब्रह्मचारी को स्त्री के सान्निध्य से अधिक सुरक्षितता महसूस होनी चाहिए । अतः ब्रह्मचारी को स्त्री के सम्पर्क से बचना चाहिए, यह खयाल ही गलत है । उससे नाहक कृत्रिम मर्यादाएँ डाली जाती हैं ।

स्त्री की ओर देखने की दृष्टि बदले

मुसलमानों का पर्दा लीजिये, उसमें भी यही बात है । हिन्दुओं में स्त्री की अपात्रता मानी गयी है । यह सब गलत है । हाँ, जैनों में स्त्री और पुरुष दोनों को समान माना गया है । ईसाइयों में जो कैथोलिक हैं, वे स्त्री-पुरुष को समान मानते हैं, लेकिन प्रोटेस्टंटों का खयाल करीब-करीब मुसलमानों जैसा ही है । वे मानते हैं कि ब्रह्मचर्य अशक्य वस्तु है और गृहस्थाश्रम ही आदर्श है । लेकिन कैथोलिकों में भाई और बहन, दोनों ब्रह्मचारी होते हैं । इसलिए साधना में एक सामाजिक विषय आता है कि स्त्री की तरफ किस दृष्टि से देखना चाहिए । स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध की तरफ देखने की हमारी आज की दृष्टि में आमूलाग्र परिवर्तन की आवश्यकता है ।

ब्रह्मचारी की दृष्टि

ब्रह्मचारी की दृष्टि यह नहीं होनी चाहिए कि वह स्त्री को देख ही नहीं सकता । मुझे रामायण का एक प्रसंग याद आता है । जब रावण सीता को हरण कर ले गया, तब लंका जाते समय सीता

ने अपने गहने एक-एक करके फेंक दिये, जिससे रामचन्द्र को पता चले कि उसे किस रास्ते से ले जाया गया है । प्रभु रामचन्द्र ने लक्ष्मण को सीता के गहने दिखाये और पूछा कि क्या तुम गहने पहचानते हो ? तब लक्ष्मण ने जवाब दिया :

'नाहं जानामि केयूरे, नाहं जानामि कुण्डले ।
नूपुरे त्वभिजानामि, नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥'

- केयूर और कुण्डल, जो ऊपर के हिस्से के गहने हैं, वे तो मैं नहीं पहचानता, लेकिन नूपुरों को पहचानता हूँ, क्योंकि प्रतिदिन सीताजी की पाद-वन्दना करते समय मैंने उन नूपुरों को देखा था ।

एक बार साबरमती-आश्रम में इस श्लोक पर चर्चा चली । बापू तो क्रांतिकारी ही थे । उन्होंने कहा कि "लक्ष्मण का यह कथन मुझे अच्छा नहीं लगता है ।" फिर उन्होंने मुझसे पूछा कि "तेरी इस पर क्या राय है ? तू ता शास्त्र बहुत अच्छी तरह जानता है ।" मैंने कहा कि "आपने जिस दृष्टि से यह वाक्य नापसंद किया, उस दृष्टि से तो वह नापसंद करने ही लायक है । क्योंकि लक्ष्मण ब्रह्मचारी था और उसने सीता का मुख ही नहीं देखा था । अगर ब्रह्मचारी ऐसी मर्यादा से रही कि वह स्त्री का मुख न देखे, तो वह गलत बात है । परन्तु मैंने इस वाक्य का दूसरा अर्थ देखा है । इसमें तो लक्ष्मण ने सीता के चेहरे की तरफ नहीं देखा इतना ही नहीं है । इसमें तो रामजी उससे पूछ रहे हैं, इसका मतलब है कि रामजी भी उन गहनों को नहीं पहचानते थे । मतलब, पति ही पत्नी के गहने नहीं पहचान रहा है ।"

इसका अर्थ है कि क्या सीता और क्या राम, दोनों अनासक्त थे । दोनों एक-दूसरे की आकृति नहीं देखते थे, बल्कि एक-दूसरे को ब्रह्म के रूप में ही देखते थे । लेकिन लक्ष्मण तो सीता के चरणों की पूजा करता था, पादाभिवन्दन करता था । इसलिए वह उपासना के तौर पर चरणाकृति को देखता था, तो उसमें पैर के गहने भी आ जाते थे । वह गहनों के साथ चरणाकृति को मूर्ति समझकर उपासना करता था । जब मैंने यह अर्थ बताया, तो बापू ने कहा कि "तू तो शास्त्र-वचनों का बहुत अच्छा बचाव करना जानता है। यही सही है और होना भी यह चाहिए कि जहाँ तक हो सके, शास्त्र-वचनों का अच्छा अर्थ ही करना चाहिए ।" इसलिए जहाँ ब्रह्मचारी के

मन में यह भावना आयी कि सामने जो स्त्री आयी है, उसे मैं देख नहीं सकता, तो वह उसकी कमी मानी जायगी । यह तो बहुत गौण आदर्श है । वाल्मीकि को यह अर्थ अभिप्रेत नहीं रहा । वास्तव में सौन्दर्य के दर्शन से बुद्धि पवित्र होनी चाहिए, न कि मलिन । सूर्योदय को देखने से, बहती हुई नदी के निर्मल जल के दर्शन से बुद्धि पावन होती है । जहाँ सौन्दर्य के दर्शन से बुद्धि मलिन हो, वहाँ समझें कि विकृत बुद्धि का लक्षण प्रकट हो रहा है ।

अतिपरिचय न हो

मैं तो मानता हूँ कि पुरुष-पुरुष के बीच भी अधिक शारीरिक परिचय होना ठीक नहीं है । परिचय तो मानसिक होना चाहिए । शारीरिक परिचय केवल सेवा के वास्ते जितना आवश्यक है, उतना ही होना चाहिए । हम देखते हैं कि कोई-कोई पुरुष नाहक दूसरे पुरुष मित्र के गले में हाथ डालकर चलते हैं । यह हमें पसन्द नहीं आता ।

वात्सल्य और प्रेम

एक दफा किसीने मेरे एक मित्र की कहानी सुनायी । मेरे मित्र ने गाय का एक सुन्दर बछड़ा देखा । उससे रहा नहीं गया; और प्रेम से उस बछड़े को उठा लिया। उसने तो मेरे मित्र के वात्सल्य का वर्णन करने के लिए यह कहानी सुनायी । लेकिन मैंने कहा कि इसमें क्या वात्सल्य है ? सुन्दर बछड़ा देखा और उठा लिया । वह गन्दा होता, तभी तो वात्सल्य की जरूरत थी । क्योंकि प्रेम से उसे साफ करने के लिए वात्सल्य आवश्यक था । अगर वह किसी गन्दे बछड़े को देखते ही उठा ले और प्रेम से साफ करे, तब तो हम उस प्रेम को समझेंगे । लेकिन अगर आप किसी सुन्दर वस्तु को देखते ही फौरन उठा लेते हैं, तो उसको आप भोग रहे हैं, उसमें सेवा नहीं है । मैं मानता हूँ कि अगर कोई बच्चा भयभीत हुआ हो, तो उसे उठा लेना चाहिए, उसे ढाढ़स दिलाना चाहिए | लेकिन उस गाय के सुन्दर बछड़े को तो नाहक उठा लिया । उसमें क्या भाव था ? यह ठीक है कि उसमें वात्सल्य था, प्रेम था, परन्तु उस प्रेम का दर्जा नीचा है । इसलिए सेवा के वास्ते ही शरीर के साथ सम्बन्ध होना चाहिए । शरीर-परिचय की जो एक सामान्य मर्यादा है, वह न सिर्फ स्त्री और पुरुष

के बीच होनी चाहिए, बल्कि पुरुष-पुरुष और स्त्री-स्त्री के बीच भी वही मर्यादा होनी चाहिए । यह शरीर-सम्पर्क की एक सर्वमान्य मर्यादा हो । योगशास्त्र में इसे 'शौच' कहा गया है ।

सटे हुए-कटे हुए

पतंजलि का एक सूत्र है—'**स्वांग-जुगुप्सा परैः असंसर्ग**:' । अपने गंदे शरीर के साथ हम दूसरों के पास कैसे जायँ - ऐसा अपने शरीर के वास्ते जो अमंगल भाव होता है वह एक रक्षण होता है, जिससे कि नाहक सम्पर्क नहीं होता । दूसरों के साथ सम्पर्क हो, संसर्ग न हो याने ऐसा सम्पर्क न हो, जो आक्रमणकारी हो, जिसके कारण शारीरिक तकलीफ हो । दूर हो, फिर भी पास हो । याने सटे हुए जरूर हों, फिर भी कटे हों ।

संसर्ग नहीं, सम्पर्क

हमारे यहाँ रिवाज है कि एक-दूसरे से मिलने पर नमस्कार करते हैं और पश्चिम में शेकहैण्ड करते हैं । हमारी योजना में संसर्ग नहीं, सम्पर्क है । साधारण उदाहरण है, इससे यूरोप के लोग निन्दित नहीं होते । हमारा नमस्कार का रिवाज जरा मर्यादाशील है । वे लोग लोग फूलों का गुलदस्ता बनाकर हाथ में देते हैं । उसमें किसी फूल को कोई आजादी नहीं, सब एक साथ बँधे होते हैं । हमारे यहाँ माला देने का रिवाज है, जिसमें हर फूल अलग-अलग पिरोया रहता है । हर फूल स्वतन्त्र होता है । एक साधारण-सी चीज है, लेकिन गुलदस्ते में संसर्ग है, सम्पर्क नहीं और माला में सम्पर्क है, संसर्ग नहीं। माला में सब फूलों को जोड़नेवाली कड़ी है, धागा । इसलिए सम्पर्क है । माला भारत की सभ्यता का प्रतीक है और गुलदस्ता पश्चिम की सभ्यता का।

बीमार की सेवा के लिए जो संसर्ग होता है, वह संसर्ग नहीं माना जायगा। लेकिन कोई छोटा, मासूम बच्चा है । माँ-बाप, भाई-बहन, पड़ोसी चार-पाँच बार आकर उनका चुम्बन लेते हैं । तरीका बहुत ही गन्दा और गलत है । माताएँ बच्चों का चुम्बन लेती हैं । मैं खूब सोचता हूँ कि इससे क्या होता होगा ? यह तो एक संसर्ग है । आम मुझे बहुत भाते हैं, प्यारा है, इसलिए मैं उसे खाता हूँ । आप भी मुझे भाते हैं, इसलिए आप मुझे खाने का अभिनय करते हैं । माँ बच्चे को खा

जाय, यह तो सम्भव नहीं है । इसलिए हम खाने का अभिनय करते हैं । यों दिखाने के लिए अगर हो, तो होगा; लेकिन है यह बिलकुल गन्दा रिवाज ।

देहमात्र के लिए समान मर्यादा

तो कहना यह था कि स्त्री की तरफ किस दृष्टि से देखा जाय । हमने तो देखा है कि जिन लोगों में स्त्री-पुरुषों के बीच अधिक मुक्तता है, वहीं पर अधिक पवित्रता है । कुछ भाषाओं में तो लिंग-भेद ही नहीं है, जैसे मलयालम, बांग्ला । तो मर्यादा माननी हो तो शरीर-शरीर के बीच ही मानी जाय । स्त्री-पुरुष के बीच की मर्यादा मानने की कोई जरूरत नहीं है । मर्यादा हो तो सबके लिए समान हो ।

दाक्षिण्य-भाव का विचार गलत

एक बात मैं और कहूँगा, जिसका समाजशास्त्र के साथ सम्बन्ध है । आजकल समाज में सुधरे हुए लोगों में अधिकाधिक कृत्रिमता आ गयी है । इसलिए स्त्री के लिए ज्यादा आदर दिखाना, जिसे 'दाक्षिण्य-भाव' (Chivalry) कहते हैं, चलता है । स्त्री को 'देवी' कहा जाता है । इस तरह, एक बाजू से तो स्त्री के लिए घृणा और तिरस्कार होता है, अपात्रता होती है और दूसरी तरफ से स्त्री के लिए अधिक भावना होती है । पुरुष अपने को स्त्री का सेवक मानता है । बीच के जमाने में यूरोप के सरदारों में जो (Chivalry) की बात चली, वह इसीमें से निकली है और इसीके परिणामस्वरूप आज के समाज के 'एटीकेट' (शिष्टाचार) के नियम बने हुए हैं । लेकिन हम मानते हैं कि इससे विषय-वासना बढ़ती ही है । जैसे स्त्री के लिए कोई अपात्रता समझना गलत है, वैसे ही स्त्री के लिए अधिक भाव या ऊँची भावना रखना भी गलत है । होना तो यह चाहिए कि आत्मा में तो स्त्री और पुरुष का भेद नहीं है, यह शरीर का भेद है, इसका भान हो जाय । यह भान होने पर वासना से निवृत्त होना आसान हो जायगा ।

निर्माण ऊँची चीजों का हो

सेवकों के लिए पाँच यमों की बात बतायी गयी है । जैसे—अहिंसा, अपरिग्रह आदि । उन व्रतों के पालन के लिए हम समाज में किस तरह का जीवन बितायें, इस पर सोचना होगा । मैंने

माना है कि जिनको इन व्रतों की शक्ति का भान है, वे ब्रह्मचर्य का यही खयाल करेंगे कि मनुष्य में जो वीर्य-शक्ति है, वह उत्पादन के लिए है । इसलिए मनुष्य की वासना जितनी ज्यादा बढ़ेगी, उतना ही वह नीचे गिरेगा । अक्सर कहा जाता है कि जो प्रतिभा का, निर्माण का काम करते हैं, उनमें स्थूल निर्माण की, संतानोत्पादन की इच्छा कम होती है। इसलिए निर्माण-कार्य एक पवित्र कार्य है । निर्माण ऊँची चीजों का करना चाहिए । जो ऐसा करेगा, वह नीची वस्तु को छोड़ देगा । बुद्धि की प्रतिभा ज्योति के समान होती है, लेकिन अन्दर का जो तेल है, जिसके आधार से ज्योति जलती है, वह है ब्रह्मचर्य । ब्रह्मचर्य से बुद्धि की प्रतिभा अधिक तेजस्वी होगी। सलिए जिन्हें बौद्धिक काम करना है, ऊँचा चिन्तन करना है, उनकी वीर्य- शक्ति का उपयोग सामान्य सन्तान-निर्माण के काम में करना उचित नहीं है।

क्रान्तिकारी स्थूल निर्माण से बचे

बुद्ध, शंकराचार्य, ईसा ये सब ब्रह्मचारी ही थे । उन्हें अपनी बुद्धि के लिए ऐसा कार्य मिला था, जो बहुत ऊँचा था । उन्हें ऊँचे दर्जे के निर्माण-कार्य से समाधान होता था, इसलिए निर्माण की जो सर्वसाधारण प्रक्रिया मानी जाती है, उससे वे सहज ही बच गये । अत: सेवकों के सामने कोई उत्तम निर्माण का कार्य होना चाहिए । जिन्हें समाज-रचना बदलनी है, क्रान्ति का काम करना है, उन्हें तो आसानी से ब्रह्मचर्य साधना चाहिए । हमारे सामने एक ऐसा ही क्रान्ति का काम है । हमें नया मानव बनाना है । सारा समाज बदलना है । उत्तम साहित्य का निर्माण करना है । व्यक्ति और समाज में भिन्न-भिन्न गुणों का प्रकाश करना है । इतना महान् कार्य करनेवालों को स्थूल निर्माण-कार्य में रस नहीं मालूम होगा ।

सन्तति के तीन प्रकार

मनुष्य की जो त्रिवासना गिनायी गयी है, उसमें एक पुत्र-वासना भी है। परन्तु सन्तान भी तीन प्रकार के होते हैं—मानस, औरस और दत्तक । मानस-पुत्र महापुरुषों की विचार-संपत्ति को आगे ले जाता है । औरस पुत्र शरीर-संपत्ति का मालिक होता है, जैसा कि या तो वह बाप का रोग

विरासत में लेता है या फिर बाप का मजबूत शरीर । और दत्तक पुत्र तो बाप की केवल सम्पत्ति ही लेता है । इसलिए स्थूल संतति-निर्माण के लोभ में नहीं पड़ना चाहिए ।

'मुक्ति' में कोई कर्तव्य-बाधा नहीं

हिन्दू-धर्म में चार पुरुषार्थ की बात कही गयी है - धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष । मेरे जैसे आलसी और डरपोक के लिए, जो संसार से डरते हैं, मोक्ष के लिए इन सबका त्याग करने की इजाजत सब धर्मों ने दी है, हिन्दू-धर्म ने भी दी है । बौद्ध-धर्म में भिक्षुओं के लिए इजाजत है । गौतम बुद्ध खुद पत्नी और बच्चे को छोड़कर चोरी-चोरी घर से निकल पड़े थे । इस पर ध्यान में आयेगा कि जो लोग मोक्ष के लिए निकले थे, उन्होंने धर्म, अर्थ, काम का परित्याग किया था । ईसामसीह खुद ब्रह्मचारी थे । पॉल उनका शिष्य था । उन्होंने कहा: "जिनको भगवान् की कामना है उन्हें दूसरा सब छोड़ना पड़ेगा ।" वी केननॉट सर्व, टू गॉड्स | (हम दो खुदाओं की इबादत नहीं कर सकते ।) धन-वासना मोक्ष के लिए छोड़नी पड़ेगी । बुद्ध ने सब छोड़ा, क्राइस्ट ने भी छोड़ा और मुहम्मद ने आखिरी दिनों में अपनी लड़की फातिमा को बुलाकर कहा : "अरे फातिमा ! भगवान् के सामने तेरा बचाव मैं नहीं कर सकता हूँ और मेरा बचाव तू नहीं कर सकती है । इसलिए अपना बचाव कर ले।" भगवान् के सामने सबको अपना-अपना जवाब देना पड़ेगा । यह नहीं पूछा जायगा कि तेरी कन्या ने क्या किया ? वहाँ तो यही पूछा जायगा कि तुमने क्या किया ? वहाँ बिलकुल फेस टू फेस (आमने-सामने) होगा । इसलिए मुहम्मद पैगम्बर ने भी अपने परिवार से कह दिया कि तुम अपना नसीब आजमा लो।

अन्तिम सीढ़ी मोक्ष

तात्पर्य यह है कि मोक्ष ऐसी वस्तु है, जो धर्म, अर्थ, काम से परे है। आखिरी उम्र में, धर्मार्थकाम की तृप्ति के बाद सबको मोक्ष वासना होनी चाहिए और मेरे जैसे भीरु और आलसी के लिए बचपन से ही संन्यास की इजाजत है । '**ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत् । गृहाद् वा वनाद् वा** ।' बहुत उत्तम, नम्बर एक की बात है, ब्रह्मचर्य से संन्यास लें । नंबर दो की है, गृहस्थाश्रम से संन्यास। और नंबर तीन की है वनाद् वा—वानप्रस्थाश्रम से संन्यास लेना । तीन सीढ़ियों के बाद चौथी

सीढ़ी चढ़ना । पहली सीढ़ी से चौथी सीढ़ी पर कूद सकते हो तो कूदो । नहीं तो धीरे-धीरे, एक-एक सीढ़ी चढ़ो । अगर आपको आपना जीवन सार्थक करना है तो आखिरी मोक्ष की सीढ़ी चढ़नी पड़ेगी । तात्पर्य यह है कि '**यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्** ।' जब आपको विरक्ति आये तब संन्यास ले सकते हैं । '**त्याग न टिके रे बैराग्य विना, करिये कोटि उपाय जी**' । कोटि उपाय करें, लेकिन बिना वैराग्य के त्याग टिकता नहीं । इस वास्ते कहा गया, तुम धीरे-धीरे जाओ । चार पुरुषार्थ साधने हैं । ऐसी प्राचीन योजना है। इससे अधिक उत्तम योजना मैंने किसी भी धर्मग्रंथ में देखी नहीं और न किसी आधुनिक विज्ञान के ग्रंथ में देखी । इसलिए समझना चाहिए कि इसमें काम-वासना के प्रति घृणा का सवाल ही नहीं है ।

अखण्ड प्रसन्नता ही ब्रह्मचर्य है

और भी एक बात समझ लेनी चाहिए । ब्रह्मचर्य या संन्यास यानी शुष्कता, नीरसता - ऐसा कभी नहीं होना चाहिए । बल्कि अखंड प्रसन्नता ही ब्रह्मचर्य है। बह्मचारी कभी नीरस नहीं होगा। सामूहिक साधना में तो '**स्नेहेन सहजीवनम्**' होता है । 'स्नेह' ही मुख्य चीज होती है ।

बहनों में एक-दूसरे के प्रति आकर्षण होना चाहिए । वैसा ही, जैसा आकर्षण गृहस्थाश्रम में एक-दूसरे के प्रति होता है । ब्रह्मचर्य में गृहस्थाश्रम से कम स्नेहमय जीवन नहीं हो सकता है । बल्कि वह अधिक उच्च प्रकार का आकर्षण होगा। वह सांस्कृतिक आकर्षण होगा, प्राकृतिक नहीं । क्योंकि उनमें एक विशिष्ट गुरु-भावना होती है, विशिष्ट ब्रह्म-भावना होती है, विशिष्ट धर्म-भावना होती है । कई लोग मानते हैं कि ब्रह्मचर्य में आकर्षण कम होना चाहिए, इसलिए वैराग्य को क्रोध-भावना के साथ जोड़ दिया । लेकिन होना उल्टा चाहिए । होना यह चाहिए कि ब्रह्मचारी को देखते ही गृहस्थ को सहज ध्यान में आना चाहिए कि हमारे गुण ब्रह्मचर्याश्रम में ज्यादा विकसित होते हैं। जो सन्मित्र होते हैं, उनका स्नेह अकारण होता है । इसलिए बहनें अनुराग से एक-दूसरे की तरफ खींची हुई होनी चाहिए ।

प्रश्न : सांसारिक कर्तव्य अदा करते हुए प्रतिकूल संयोग तथा वातावरण में रहनेवाला व्यक्ति आत्मोन्नति के लिए क्या कर सकता है ?

विनोबा : 'सांसारिक कर्तव्य नाम का कोई भी कर्तव्य नहीं' ऐसा अपने मन में पक्का निश्चय करना होगा । लड़की समझती है कि माँ की जिम्मेवारी मुझ पर है । उसकी जिम्मेवारी तुझ पर है कि परमेश्वर पर ? मान लो, आज परमेश्वर तुझे उठा लेगा तो तेरी माँ को कौन सँभालेगा ? लेकिन रोज परमेश्वर के लिए दर्शन करना यह फर्ज है, कर्तव्य है । उसके लिए शरीर को खिलाना पड़ता है और हम जो खाते हैं, वह समाज से मिलता है । इसलिए समाज की थोड़ी सेवा करें । यह सेवा कर्जा चुकानेवाली है । भगवान् कौ भक्ति कैसे हो, आत्मसाक्षात्कार कैसे हो, अहंकार कैसे मिटे—इसके लिए कोशिश करना हमारा कर्तव्य है । बाकी कोई सांसारिक फर्ज या जिम्मेवारी नहीं । हमारे समाज में लड़की शादी करके पति के घर जाती है, तो माता-पिता को इतना दुःख नहीं होता और लड़की के लिए कुछ अपेक्षा भी नहीं रहती । परन्तु लड़की यदि मोक्ष-प्राप्ति की साधना करना चाहती है तो माता-पिता दुःखी होते हैं और उससे सांसारिक कर्तव्य की अपेक्षा रखते हैं । यह गलत बात है । माँ-बाप में तो 'पालक-वृत्ति' होनी चाहिए । उसके तीन लक्षण हैं : (१) अपने पर जितना प्यार करते हैं, उससे अधिक अपने बच्चे पर करना । (२) बच्चे को अच्छी तालीम देकर तैयार करना । (३) आखिर में बच्चों को सारा कारोबार सौंप देना ।

.

५. गृहस्थाश्रम

हमारे देश में प्राचीन काल से तीन संस्थाओं का विचारपूर्वक विकास किया गया है । वे हैं - गृह, मठ और आश्रम । इनमें से गृह-संस्था उद्योगप्रधान थी । समाज को विविध प्रकार के उद्योगों की जरूरत रहती है । घर में जीवनोपयोगी अनेक प्रकार के उद्योग चलते थे और उनसे गृहस्थाश्रम का शिक्षण होता था । ऋग्वेद में एक वचन आता है : '**गृहे गृहे दमे दमे**'—हर घर में साधना चलती है । दम शब्द गृह का एक पर्यायवाची शब्द है । गृह थोड़ा व्यापक होता है, उसके अन्दर एक सुरक्षित स्थान होता है, जिसको 'दम' कहते थे । दम यानी अन्तरगृह । गृह में सबका ग्रहण होता था । बाहर जहाँ सब लोगों का स्वागत होता था - उस बाहर के भाग को गृह कहते थे और अन्तर्विभाग को दम कहते थे, अर्थात् जहाँ इन्द्रियों के दमन का अभ्यास होता था । लोगों को शिस्त न (अनुशासन) के पाठ वहाँ मिलते थे । माँ-बाप, पुत्र-पुत्री सब एक साथ रहते हैं तो थोड़ी शिस्त चाहिए । वह प्रेम के आधार पर ही हो । परन्तु जीवन नियमयुक्त बने, ऐसी साधना जहाँ होती थी, उसको 'दम' कहते थे । अंग्रेजी में 'मेडम' शब्द है, फ्रेंच में 'मादाम' शब्द है - वह है घर की गृहिणी। यह शब्द लेटिन में से उतर आया है ।

अंतर-बाहर एकै जानो

गृह उद्योग-प्रधान था, तो आश्रम प्रयोग-प्रधान था । आश्रम में साधक रहते और अन्तःशोधन तथा चित्त-शुद्धि के अनेक प्रयोग करते थे । तीसरी संस्था मठ थी, जो योग-प्रधान संस्था थी । आश्रमों में जो खोजें होती थीं, उनका प्रत्यक्षाचरण मठ और गृह-संस्था में होता था । इस तरह मठ और गृह-संस्था को जोड़नेवाली आश्रम-संस्था थी । आत्मचिन्तन और समाज दोनों परस्पर जुड़ा रहे—यह योजना इसमें थी ।

हिन्दू-धर्म में काम 'देव' है

जहाँ तक हिन्दू-धर्म को मैं जानता हूँ, उसमें काम-वासना को न घृणित माना है, न दबाया गया है । बल्कि इससे बिलकुल उलटी बात है। '**धर्मार्थकामा: सममेव सेव्या**:। '- धर्म, अर्थ, काम

इन तीन पुरुषार्थों का समान सेवन करना चाहिए । विवाह के समय पति-पत्नी को प्रतिज्ञा करनी पड़ती है : '**धर्मे च अर्थे च कामे च नातिचरामि** ।' पति कहता है कि धर्म, अर्थ और काम इन तीन विषयों में मैं तुम्हें छोड़कर बर्ताव नहीं करूँगा । इस तरह धार्मिक मनुष्य बनने के लिए पत्नी को छोड़ना नहीं, बल्कि पत्नी को साथ लेकर व्यवहार करना होता है । अर्थ-शोधन के लिए पति अमेरिका गया और पत्नी को यहाँ रखा, यह हिन्दू-धर्म के खिलाफ है । अर्थ-प्राप्ति में भी समान व्यवहार करना है यानी जिस उद्योग में तुम पड़े हो, उसकी तालीम पत्नी को भी देनी चाहिए। इस तरह काम में भी समान व्यवहार की बात कही ।

मूल प्रेरणा : काम

हिन्दू-धर्म में चार पुरुषार्थ की बात है—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष । काम यानी मूलतः प्रेरणा । कोई भी काम करने की प्रेरणा '**काम**' में से मिलती है। '**काम**' न होता तो मुझे माँगने की प्रेरणा ही न होती । इसलिए जैसा अग्नि का दुरुपयोग हो सकता है, वैसे काम का भी दुरूपयोग हो सकता है। फिर भी अग्नि देव हैं, वैसा ही यह काम-देव है । सामान्य अर्थ में देखें तो काम यानी आसक्ति । किसीके लिए विशेष प्रेम पैदा हो और किसीके लिए अरुचि हो तो उसीमें से काम पैदा होता है ।

प्रजनन-प्रक्रिया जुगुप्सा का विषय नहीं

हमारे यहाँ प्रजनन की प्रक्रिया को अत्यंत जुगुप्सा की दृष्टि से देखा जाता है, एक तरह से वह ठीक है, परंतु मेरे अपने दिल में प्रजनन की प्रक्रिया के सामने ऐसी कोई जुगुप्सा नहीं है । जिसमें से मैं और आप पैदा हुए, संत और महात्मा पैदा हुए, उसे मैं एक पवित्र क्रिया मानता हूँ । उस तरफ जुगुप्सा की दृष्टि से देखा जाय, इसे मैं उचित नहीं मानता ।

शक्ति-स्वरूपा काम

जगन्नाथपुरी, भुवनेश्वर के मंदिर तो मैंने नहीं देखे । परन्तु उड़ीसा के कोणार्क का सूर्य-मंदिर मैंने देखा है । उसकी रचना ऐसी है कि मंदिर के अंदर के भाग में कोई अश्लील शिल्प-काम

नहीं है । परंतु मंदिर के बाहर चारों तरफ ऐसे अश्लील शिल्प-काम जगह-जगह पर हैं । इसका अर्थ मैं यह करता हूँ कि सूर्य शक्तिस्वरूप है और प्रजनन-क्रिया भी शक्ति का ही एक रूप है । सूर्य के अनेक शक्तिस्वरूप दिखाने के साथ इस शक्ति का रूप भी दिखाना चाहिए, ऐसा उस वक्त के लोगों को लगा होगा ।

सर्वत्र काम-प्रेरणा

'ईश्वरे मोठे सूत्र केले, मनुष्यमात्र गुंतोनि राहिले' - काम-वासना में केवल मानव-समाज ही फँसा है, ऐसा नहीं, पशु-पक्षी सब उसमें फँसे हैं । सब वृक्ष भी उसमें फँसे हैं । वृक्ष पर फूल होते हैं, उनमें भी स्त्री-केसर, पुं-केसर होते हैं, जो हवा के कारण एक पौधे पर से दूसरे पौधे पर जाते हैं और उसीमें से फिर नया पौधा पैदा होता है । समस्त सृष्टि में इस प्रकार चला है ।

तुलसीदास ने लिखा है कि कामदेव ने शंकर पर आक्रमण किया तब सारी सृष्टि में कोम-प्रेरणा निर्माण हुई । उन्होंने '**तलाव**' और '**तलाई**' की बात की है । मतलब, पानी में भी वह प्रेरणा पैदा हुई और फिर शंकर ने कामदहन किया ।

यह जो विश्वभर में प्रेरणा दिखती है, वह क्या है, उसका स्वरूप क्या है ? लोग मानते हैं उतनी वह बुरी भी नहीं है और जितनी सरल मानते हैं, उतनी सरल भी नहीं है । बुरी इसलिए नहीं है कि उसमें ईश्वर का कोई अच्छा उद्देश्य है । और सीधी-सरल इसलिए नहीं है कि उसमें चैतन्य को कुछ न कुछ नवसर्जन की प्रेरणा है । कवियों को काव्य की प्रेरणा होती है, वैज्ञानिकों को खोज की प्रेरणा होती है । ये सब भिन्न-भिन्न सर्जन-प्रेरणाएँ हैं । उसमें संतानोत्पत्ति अत्यंत स्थूल प्रेरणा है । उच्च सर्जन की ओर ध्यान देंगे तो सर्जन-शक्ति दिव्यरूप धारण करेगी ।

इन सारी प्रेरणाओं का अंत है या नहीं ? जब भगवान् की इच्छा होती है, तब ये सारी प्रेरणाएँ मिट जाती हैं । विष्णुसहस्रनाम में 'वीरहा' शब्द है, उसकी व्युत्पत्ति है वि+ईर+हा यानी विविध इरणाओं, प्रेरणाओं को हरनेवाला । अनेकविध प्रेरणाओं को समाप्त करनेवाला भगवान् है ।

पाप तो हरगिज नहीं

माँ के पेट से जन्म होने को बाइबिल ने '**ओरिजिनल सिन**' माना है - हमारा मूल ही पाप में है; परन्तु मैं ऐसा नहीं मानता । हाँ, माता-पिता भोग-वासना से प्रेरित हों तो बात अलग है । परन्तु वे यदि कर्तव्य-भावना से प्रेरित हों तो वह एक पुण्य-कार्य है । पुण्य-कार्य से भी अलग हो - यह एक दूसरी चीज है, परन्तु उसे पाप-कार्य तो मैं हरगिज नहीं मानता । व्यभिचार पाप-कार्य है । आजकल बहुत सारे विवाहित लोग प्राय: पाप-कार्य ही करते हैं। परन्तु ईसाइयों का मानना है कि मनुष्य की उत्पत्ति पाप में से होती है, इसलिए वे मानते हैं कि ईसा का जन्म योनि से नहीं हुआ । किसी पुरुष के संयोग से नहीं, परन्तु माँ की गोद में सीधा ही वह आया । इसलिए वह पापमुक्त है । उनके यहाँ इसीलिए ब्रह्मचारी का स्थान ऊँचा है, परन्तु हमारे यहाँ तो दोनों को मान्यता मिली है । हमारे यहाँ ब्रह्मचारी हनुमान् को सीताराम का सेवक माना गया है ।

काम-वासना का नियन्त्रण

आखिर प्रेम का ही रूपांतर काम-वासना है । काम-वासना का नियमन करने के लिए ही गृहस्थाश्रम खोला गया है । गृहस्थाश्रम के बाहर भोग करोगे तो वह काम-वासना मानी जायगी, गृहस्थाश्रम के अन्दर होगा तो वह प्रेम माना जायगा । काम-वासना को एक व्यक्ति तक मर्यादित करने के लिए गृहस्थाश्रम का आयोजन है ।

गृहस्थाश्रम भी ब्रह्मचर्य का साधक

अगर ठीक ढंग से सोचें, तो गृहस्थाश्रम भी ब्रह्मचर्य के लिए ही है। शास्त्रकारों के बताने के अनुसार ही अगर वर्तन किया जाय, तो गृहस्थाश्रम भी ब्रह्मचर्य की साधना का एक प्रकार हो जाता है । जीवन बड़ा विचित्र है। जो पहुँच गये हैं, उनके लिए तो वह एक सीधी लकीर है और जो पहुँचे नहीं हैं, उनके लिए तो वह एक टेढ़ी लकीर है । उनको टेढ़े रास्ते से जाना पड़ता है ।

एक ओर मैं यह कहता हूँ कि बहनें ब्रह्मविद्या की साधना करें और दूसरी ओर मैं विवाह को आशीर्वाद दे रहा हूँ । यह विचित्र-सा दीखता है, लेकिन सचमुच वह विचित्र है नहीं । हम

अनेक जन्मों के प्रवासी हैं । हमारा विकास चल रहा है, हम सब एक ही मार्ग से जा रहे हैं । उसमें कोई एकाध कदम आगे है, तो कोई एकाध कदम पीछे । रास्ते में चलते हुए ऐसा होता ही है । सब साथ-साथ चलते हैं, फिर भी कहीं-न-कहीं एकाध कदम तो आगे-पीछे रहते ही हैं । आगे-पीछे रहने पर भी सभी साथ ही रहते हैं ।

सर्व-आश्रमों का समन्वय गृहस्थाश्रम

एक तरफ ब्रह्मचर्य, दूसरी तरफ गृहस्थाश्रम, दोनों हों । गृहस्थाश्रम अगर शास्त्रीय हो यानी हमारे शास्त्रकारों की आज्ञा के मुताबिक हो, तो वह ब्रह्मचर्य से बहुत ज्यादा पवित्र है । इसलिए शास्त्रकारों ने गृहस्थाश्रम को सर्व-आश्रमों का समन्वय कहा है । ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम, संन्यासाश्रम, इन चारों आश्रमों के जो गुण हैं, वे सब गुण गृहस्थाश्रम में मौजूद हैं अगर वह शास्त्रीय है । छान्दोग्य-उपनिषद् के अंत में '**गृहिणा उपसंहार**:' आया है । छांदोग्य का उपसंहार गृहस्थाश्रम से किया है । '**कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाध्यायं अधीया**: ।' गृहस्थ कैसा होना चाहिए ? कुटुम्ब में, पवित्र स्थान में बैठकर रोज स्वाध्याय करे, यह ब्रह्मचर्याश्रम का लक्षण है और '**धार्मिकान् विदधत्**' - अपनी संतति को धार्मिक बनाये, यह गृहस्थाश्रम का लक्षण हुआ । '**आत्मानि सर्वेन्द्रियाणि संप्रतिष्ठाप्य**:। - यह वानप्रस्थाश्रम का लक्षण है। '**अहिंसन् सर्वभूतानि, अन्यत्र तीर्थेभ्य**:' - किसी भूत की हिंसा न करे - यह संन्यासाश्रम का लक्षण है । इस तरह चारों आश्रमों का सार गृहस्थाश्रम में आता है ।

गृहस्थाश्रम सबसे कठिन

गृहस्थाश्रम ब्रह्मचर्य से कठिन है । गीता में कहा है, '**मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये**' - लाखों में कोई एकाध ही सिद्धि के लिए प्रयत्न करता है । मान लीजिये, हिन्दुस्तान में ५५ करोड़ लोग हैं । लाख में एक ब्रह्मचारी हो तो ५५ करोड़ में कितने हुए ? ५५०० । जिसने विवाह नहीं किया और अविवाहित रह गया, वह ब्रह्मचारी नहीं । ब्रह्मचारी का जो पूर्ण अर्थ है, उस अर्थ में जो ब्रह्मचारी रहेगा, वह ब्रह्मचारी है । ऐसे ५००० ब्रह्मचारी हिन्दुस्तान में हैं, ऐसा कोई कहेगा तो बाबा विश्वास करेगा । लेकिन कोई कहेगा कि शास्त्र की आज्ञा के अनुसार गृहस्थाश्रम

करनेवाले गृहस्थ भारत में ५० हैं, तो बाबा मुश्किल से विश्वास रखेगा । ५० भी होंगे, ऐसी बाबा की श्रद्धा नहीं । कठिन काम है । दो पुत्र चाहिए इसका अर्थ दो दफा संगम । जिन्दगीभर संगम न करना कठिन नहीं । एक दफा संकल्प कर लिया, भक्ति का आश्रय ले लिया, परमेश्वर का नाम ले लिया, हो गया । परन्तु संगम भी करना, दो पुत्रों के लिए दो ही दफा - एक पुत्र के लिए एक दफा, एक के लिए एक दफा - यह अत्यन्त कठिन कार्य है । उस रस में न पड़ना आसान है । उस रस में पड़कर अपने को काबू में रखना अत्यन्त कठिन है । इस वास्ते शास्त्रकारों ने गर्भाधान-विधि का विधान किया है । आज फलाने पति का फलानी पत्नी से संगम होगा, जैसे आज जाहिर है कि रामनवमी का उत्सव हे, वैसे शास्त्रकार जाहिर करते हैं, विधिपूर्वक गर्भाधान होता है और उस रात पति-पत्नी संगम करते हैं । यानी उस संगम को विधिपूर्वक सब लोगों के लिए जाहिरा तौर पर, एक पवित्र कार्य समझकर किया जाता है । उसका नाम है गृहस्थाश्रम । जैसे ईश्वर-स्मरणपूर्वक भोजन किया जाय तो वह भोजन भी भगवत्-कार्य माना जायगा, वैसे ईश्वर-स्मरणपूर्वक संतान-प्राप्ति के हेतु से ही किया गया समागम भी भगवत्-कार्य ही माना जायगा । इसीलिए हमारे यहाँ प्रथम संतान को धर्मजन्य माना है और बाद की संतानों को कामजन्य माना है ।

मैंने सरल रास्ता अपनाया

जो संन्यासीं होता है, वह छोड़ देता है, मुक्त हो जाता है । गृहस्थ का मामला कठिन है । मैंने बहुत दफा कहा है कि संन्यास कल्पना करने के लिए कठिन है, लेकिन एक दफा उसको अमल में लायें तो निभाना आसान है । यही बात ब्रह्मचर्य पर लागू होती है । कर्मयोग या गृहस्थाश्रम कल्पना के लिए आसान है, लेकिन पार होने के लिए कठिन है । मैंने तो ब्रह्मचर्य आसान मानकर अंगीकार किया है । आलसी मनुष्य के लिए वह सरल है।

कोई ऊँचा नहीं, कोई नीचा नहीं

बर्नार्ड शा ने कहा है कि शादी करना और न करना—दोनों में खतरा है । सन्तानोत्पत्ति की वासना के अलावा पति-पत्नी एक-दूसरे को भाई-बहन मानें यह बात ब्रह्मचर्य से कम कठिन नहीं

है । उसमें ऊँच-नीच का सवाल नहीं। किसीको यह सधता है, किसीको वह । गृहस्थाश्रम की कल्पना आसान मालूम होती है, परन्तु शादी करना यानी गृहस्थ बनकर उसे निभाना आसान नहीं । उसमें कर्मयोग की जिम्मेवारी निभानी होती हैं । वह वस्तुत: कठिन है । संन्यासी तो छोड़ देता है, मुक्त हो जाता है । गृहस्थ को तो सब सम्बन्ध कायम रखते हुए अनासक्त रहना होता है । मैंने एक बार पुलिस के सामने कहा था कि आप लोगों को गीता के अलावा आधार नहीं । मुझ जैसे अहिंसावादी के लिए गीता की जरूरत नहीं । ईसामसीह की सिखावन से मेरा काम हो जायगा, क्योंकि मारना है नहीं । दूसरी ओर, सेना का काम भी आसान है। उनका काम ही मारना है । मारेंगे, तो उनकी तलाश होगी नहीं । पुलिस का काम है मारना, लेकिन ज्यादा नहीं मारना, कम भी नहीं मारना । बिलकुल नाप करके ठीक तरह से मारना । उसके लिए चित्त शांत रखना होगा । इस वास्ते गीता के बिना तुम्हारी गति नहीं । इसी तरह संन्यास के लिए गीता की जरूरत नहीं । गृहस्थ को गीता ही मदद करेगी ।

गृहस्थ की अनेक जिम्मेवारियाँ होती हैं । उसकी जिम्मेवारियों का मुख्य अंश कुटुम्ब है । तो कुटुम्ब के लोगों को जल्द-से-जल्द अपने लिए जिम्मेवार बना दें - अपने पाँव पर खड़ा करा दें। कुछ लोग मरने के क्षण तक कुटुम्ब को सलाह देते रहते हैं । कौटुम्बिक प्रश्न के विषय में हम सदा उलझे हुए रहें, तो इसका मतलब है कि हमने गृहस्थाश्रम ठीक किया नहीं । पत्नी-बच्चों को स्वतन्त्र कर देना चाहिए, तैयार कर देना चाहिए और बाकी स्वयं को आत्मनिर्भर रहना चाहिए ।

वैवाहिक जीवन के अंतर्गत व्यभिचार

हिन्दुस्तान में ऐसे कितने गृहस्थ हुए, गृहस्थों का क्या अनुभव है, पूछा जाय । इस विषय में लोग बात करते नहीं । किसीसे पूछें, बच्चे कितने हुए, तो कहेगा, पाँच । और कितने संगम हुए? तो कहेगा पाँच हजार । चालीस साल का गृहस्थाश्रम । और संगम ? पाँच हजार, सात हजार—उत्तर हजार में ही मिलेगा । इसका मतलब है लायसेन्स । लोगों ने गृहस्थाश्रम को लायसेन्स

माना । व्यभिचार ही है है वह । खैर, यह एक बात । यह एक व्यभिचार हुआ, जो अपनी पत्नी के

साथ चलता है । इसका प्रतिकार करने की हिम्मत तो किसी पत्नी में है नहीं । क्योंकि उसको डर है पति पीटेगा, मारेगा । तो यह हुआ एक व्यभिचार ।

परस्त्री के साथ व्यभिचार

दूसरी बात । एक दफा किशोरलालभाई से मेरी बात हो रही थी । मैंने कहा, क्या नरसी मेहता, क्या तुकाराम, क्या कहते हैं ये लोग ? '**पराविया नारि माउली समान**', '**परस्त्री जेने मात रे** ।' ब्रह्मचर्य की बात तो करते ही नहीं ये लोग । तब किशोरलालभाई ने कहा, आपको इसका अनुभव नहीं है। जानता हूँ कि परस्त्री को जिसने माता माना, ऐसा गृहस्थ लाख में एकाध होगा। अपनी पत्नी के साथ उनका व्यभिचार चलता ही है अखंड । परन्तु दूसरी किसी स्त्री के साथ व्यभिचार नहीं किया होगा जिन गृहस्थों ने, ऐसे गृहस्थों की गिनती की जाय तो लाख में एकाध मिलेगा । इसलिए उन संतों ने कहा कि परस्त्री को माता मानो । यह हालत है इस विषय की आज ।

स्त्रियों के सामने चुनौती

और फिर पश्चिम से बातें यहाँ आ चुकी हैं, जिसने वातावरण बहुत ही खराब किया है । किसने खराब किया वातावरण ? भगवान् ने ? अगर बहुत बारिश हुई, अकाल पड़ा; बिलकुल बारिश नहीं हुई, अकाल पड़ा; तो वह तो भगवान् ने किया । वह भगवान् की जिम्मेवारी है । लेकिन यह किसने किया ? हम ही ने किया । तो हम ही उसे दुरुस्त करें । उसके लिए भगवान् को जिम्मेवार नहीं मान सकते । अगर लोगों के ध्यान में इतना आ जाय कि आज समाज को संतान की जरूरत नहीं और ब्रह्मचर्य से आध्यात्मिक शक्ति बढ़ती है, तो लोगों के लिए ब्रह्मचर्य-पालन अत्यन्त आसान होगा । जहाँ तक स्त्रियों की बात है, जब तक स्त्रियों में ब्रह्मचर्य का तत्त्व दाखिल नहीं होगा, तब तक स्त्रियों का उद्धार नहीं होगा, यह पक्की बात है । गन्दे सिनेमा को सरकार रोक सकती

है । गन्दे साहित्य को रोका जा सकता है । यह सब अपने हाथ की बात है । अगर हम इस तरह की खराब चीजें रोकेंगे, तो इस विज्ञान के जमाने में ब्रह्मचर्य-पालन अत्यन्त सरल होगा ।

निष्फल कर्म क्यों ?

विज्ञान क्या कहता है ? बीज बोना और ऐसा इंतजाम करना कि उगे ही नहीं ? मान लीजिये, कोई किसान गरमी के दिनों में बीच बो रहा है । उसको पूछा, गरमी के दिनों में क्यों बो रहे हो ? तो बोला, मैं चाहता हूँ कि न उगे । अरे मूरख, तो बोता क्यों है ? तो बोला, मजा आता है इसलिए बोता हूँ, लेकिन न उगे इसलिए गरमी में बो रहा हूँ । जो एक भी बीज व्यर्थ खोता है, वह किसान महामूर्ख है । तो यह मानववीर्यरूपी अत्यन्त पवित्र बीज, जिससे प्रज्ञा पैदा होती है, उसे जो व्यर्थ खोता है, उस प्रज्ञा का ही जो नाश करता है, वह कितना महापापी होना चाहिए ? पैदा करने की इच्छा के बिना वीर्य का उपयोग करना गलत है ।

दीया नहीं, तेल जलता है

आज के जमाने में विज्ञान ने लोगों को समझाया कि मानव के वीर्य में से प्रज्ञा पैदा होती है । स्त्री-पुरुष दोनों में वीर्य होता है, दोनों के नाम भिन्न हैं, परन्तु दोनों में शक्ति होती है । जैसे तेल होता है । दीपक में तेल है तो ज्योति होती है । ज्योति का आधार तेल है । तेल कुंठित हुआ तो ज्योति रहेगी ही नहीं । वैसे ही वीर्यरूपी तेल से प्रज्ञारूपी ज्योति प्रज्वलित होती है । उस तेल को खर्च करना ठीक नहीं । उससे प्रज्ञा क्षीण होगी। यह समझन कठिन नहीं । कोई भी वैज्ञानिक कहेगा, प्रज्ञा के लिए वीर्य की उपयोगिता है। सलिए जिनको प्रज्ञा चाहिए, वे वीर्य-हानि नहीं होने देंगे। परंतु जिनको प्रज्ञा की आवश्यकता है, लेकिन अधिक प्रज्ञा की जरूरत नहीं है ऐसे जो मानव हैं वे वीर्य का सुव्यवस्थित उपयोग करें यानी एक संगम में एक संतान ।

गृहस्थाश्रम में विविध प्रयोग

मैंने कहीं पढ़ा था, कहाँ पढ़ा था ठीक याद नहीं, शायद ग्रीक इतिहासकारों की किसी किताब में पढ़ा था । वे प्राचीन काल में भारत आये थे । उन्होंने लिखा था, गंगा के किनारे एक बाजू स्त्रियों की कालनी है और दूसरी बाजू पुरुषों की । संस्कृत में किनारे को कूल कहते हैं । अनुकूल यानी इस बाजू और प्रतिकूल यानी उस बाजू । इस तरह दो कालनी थीं । और जब संतति की इच्छा हो जाय, तब पुरुष उस बाजू जायगा और संगम करके वापस आ जायगा । ऐसे प्रयोग

भारत में हो रहे हैं, ऐसा उल्लेख ग्रीक इतिहासकारों ने किया है, ऐसा बाबा को अस्पष्ट याद है । उस वक्त ऐसे प्रयोग होते थे - गृहस्थाश्रम के सच्चे प्रयोग । लेकिन यह सारा पुराना वैभव है । ब्रह्मचर्य का पुराना जो अनुभव था, उससे बहुत ज्यादा वैभव विज्ञान के जमाने में होगा।

गृहस्थाश्रम में ब्रह्मचर्य

हमारे यहाँ गृहस्थाश्रम में ब्रह्मचर्य के प्रयोग भी हुए हैं । आज के जमाने में वह प्रयोग हुआ है । जयप्रकाश नारायण विवाहित हैं | लेकिन पति-पत्नी ब्रह्मचर्य से रहते हैं । उसकी खूबी शायद सबको मालूम नहीं होगी । गांधीजी के साथ रहने के कारण प्रभावती का ब्रह्मचर्य का निश्चय हुआ। जयप्रकाशजी ने कहा : "मैं तुम्हारे अनुकूल रहूँगा ।" यह बिलकुल सहज । जयप्रकाशजी के जीवन में अहंकार नहीं है । कोई बड़ी बात की हैं, ऐसा अहम् उनमें नहीं। (unassuming) सहज निरहंकारी । हम समझते हैं कि इस जमाने की बहुत ही बड़ी मिसाल है । ऐसी दूसरी भी मिसालें हैं, जो जीवनभर ब्रह्मचारी रहे और उन्हें ब्रह्मचारी-जीवन का अहंकार नहीं, जैसे अण्णासाहब सहस्त्रबुद्धे । विवाह के बाद ब्रह्मचर्य से रहने की मिसालें हैं—श्री अरविंद, रामकृष्ण, गांधीजी, किशोरलालभाई ।

गांधी—गार्हस्थ्य में ब्रह्मचर्य

हमारे यहाँ किसीको शायद ही ऐसा कोई विचार सूझता हो, जिसके लिए आधारभूत चिंतन ग्रंथों में न मिले । हमारे यहाँ ब्रह्म-चिंतन बहुत हुआ है। इसलिए नये विचार के लिए आधार न मिले, ऐसी बात नहीं है, किन्तु एक व्यावहारिक विचार के तौर पर, यद्यपि शास्त्र में आधार था, वह बात बनती नहीं थी । गांधीजी ने उसे शुरू किया और वह यह कि गहस्थाश्रम में भी लोग वानप्रस्थाश्रम के तौर पर रह सकते हैं । कोशिश उनकी वानप्रस्थाश्रम की ही रहेगी । जब गृहस्थाश्रम में रहते हैं, तब ऐसी प्रतिज्ञा में बँधे नहीं रहते, प्रजोत्पादन करते हैं । अगर वासना हुई, तो एक-दूसरे के प्रति वफादार रहने की प्रतिज्ञा करते हैं । संतानोत्पादन की जिम्मेवारी उठा लेते हैं । लेकिन धीरे-धीरे उस वासना को छोड़कर गृहस्थाश्रम में वानप्रस्थ की वृत्ति से रह सकते हैं । जितना जल्दी गृहस्थाश्रम से छूटा जा सके उतना अच्छा । शायद शादी के बाद एक भी संतान न

हो और छूट जायें, तो भी अच्छा । इसमें यह एक स्वतंत्र क्षेत्र गृहस्थों के लिए मिल जाता है । गृहस्थाश्रम में होते हुए भी पहले ही दिन से कोशिश करनेवाले निकलेंगे और उस कोशिश के बावजूद संतान हो जाय, तो वे पराक्रमी होंगे । इस तरह गांधीजी ने बताया कि गृहस्थाश्रम में वानप्रस्थ-वृत्ति चले ।

हमने गृहस्थ-अवस्था को भी आश्रम ही माना है । गृहस्थाश्रम विकारों के उपभोग का लायसेन्स नहीं है । वह तो साधना है । एक कार्य के लिए वे थोड़ा नीचे उतरे हैं, इतना ही है । गिरना और नीचे उतरना, इन दोनों में फर्क है । एक प्रयोजन के लिए नीचे उतरे, वह भी फिर से ऊपर चढ़ने के लिए ही । पहाड़ों में भी सीधा रास्ता कठिन लगता है तो थोड़ा गोल घूमकर ऊपर चढ़ना पड़ता है । ब्रह्मचर्योपासना कठिन भी है, सरल भी है । गृहस्थाश्रम कठिन भी है, सरल भी है । दोनों कठिन और दोनों सरल हैं । चित्त अनुकूल रहा तो दोनों सरल हो जाते हैं, अन्यथा दोनों कठिन ।

अनासक्त बनकर रहें

हमें आसक्ति किसी भी चीज में नहीं रखनी चाहिए । आसक्ति के साथ सुख-दुःख आते हैं । भागवत में कहा है : '**गृहेषु अतिथिवत् वसन्**' यानी घर में मेहमान के समान रहो । मेहमान घर में तो रहता है, लेकिन आसक्ति नहीं रखता है और न यह मानता है कि यह मेरी मालिकी है । हमें भी अपने घर में, जिसे हम 'अपना मानते हैं, इसी तरह रहना चाहिए । उसकी आसक्ति नहीं रखनी चाहिए, क्योंकि हम वहाँ अतिथि हैं ।

संस्कृत में घर को 'दम' कहते हैं । वास्तव में घर यानी वह स्थान, जहाँ इन्द्रियों का दमन होता है । 'दंपति' शब्द का अर्थ भी वही है । यह हो सकता है कि घर में एक माता ऐसी हो, जो बच्चों की सेवा करे और घर के बाहर ज्यादा न दीखे । लेकिन उसे घर की आसक्ति नहीं । "भगवान् के दिये बच्चे हैं, उनकी सेवा कर रही हूँ, अपना कुछ नहीं है" ऐसा वह मानती हो और जब भगवान् बुलाये तब खुशी से जाने को राजी रहे, तो घर-गृहस्थी चलानेवाली वह औरत भी मुक्ति पा सकती है । इसके विपरीत कोई संन्यासी घूमता है, परोपकार का, निःस्वार्थ काम करता है, लेकिन उसमें

उसकी आसक्ति बंध जाती है, इसलिए जाने का मौका आने पर झिझकता है तो समझना चाहिए कि उसे मुक्ति मिलनेवाली नहीं है ।

सार यह कि घर का संसार देखते हैं कि दुनिया का संसार, यह महत्त्व का नहीं । चित्त में आसक्ति रखी या नहीं, यह महत्त्व का विषय है ।

चारों आश्रमों में गुणविकास की दृष्टि

सामान्यतः गृहस्थ की व्याख्या की जाती है : '**गृहे तिष्ठति इति गृहस्थः** । लेकिन यहाँ कहा गया है : '**गुणानां मध्ये तिष्ठति इति गृहस्थः** ।'

तीनों गुणों में तटस्थ बुद्धि से रहता है, वह गृहस्थ है । '**शरीरं गृहमुच्यते**'—शरीररूपी घर में भी तटस्थ रहता है । गुण कर्म करते हैं, मैं नहीं करता हूँ, ऐसा जाननेवाला बुद्धिमान् है ।

वानप्रस्थ : संन्यास-वृत्ति

फिर वानप्रस्थाश्रम । जो सब जाननेवाला है, सर्ववेत्ता है, जिसका तप ज्ञानमय है और जो हर्षामर्ष से मुक्त हे, वह वानप्रस्थ कहा जायगा ।

संन्यास काषायवस्त्र यानी रंगीन वस्त्र पहनने से नहीं होता है । मैं आत्मा हूँ, यह निश्चय करना ही संन्यास है । इस तरह का देहाभ्यास कि मैं देह नहीं हूँ, आत्मा हूँ—यह संन्यास है ।

संन्यास के लिए मेरे मन में अतीव आदर है । परन्तु गेरुआ वस्त्र पहनना आदि जो संन्यासी का बाह्यवेश है, उसको मैं बिलकुल महत्त्व नहीं देता । संन्यास का अर्थ है, जीवन के मालिक हम नहीं, परमेश्वर है । उसकी सेवा में हमारा सारा अहंकार समर्पित हो । मैंने देखा है कि गेरुआ कपड़े से तो अहंकार समर्पित होने के बजाय और दृढ़ होता है । एक तरह से तो यह विज्ञापन ही है । समाज के सेवक बनने के बजाय आजकल संन्यासी समाज की सेवा लेने के अधिकारी हो जाते हैं । इसलिए मेरी सलाह है कि बाह्यवेश सादा हो और अन्तर में संन्यास की भावना उत्तरोत्तर मजबूत होती चली जाय।

वैराग्य यानी ऊबना नहीं, वैराग्य ही निश्चल और निर्भय अवस्था है । विरक्त पुरुषों को कुछ लेने की जरूरत नहीं और वैराग्य यानी मन की समता, यह अर्थ ध्यान में न आने के कारण वैराग्य के नाम पर अनेक प्रकार की खटाटोप (धडपड) होती देखने में आती है । रस्सी ही पड़ी थी, लेकिन उसको साँप समझकर एक मनुष्य भाग गया और दूसरा लाठी लेकर पीटने लगा । एक भागता हे, दूसरा पीटता है । एक पकड़ने की खटाटोप करता है, दूसरा छोड़ने की । वैराग्य दोनों में से एक भी नहीं करता । "दुनिया में सब वस्तुओं को भय है, लेकिन वैराग्य को नहीं"- भर्तृहरि का यह श्लोक सुन्दर और मननीय है।

विवाह का उद्देश्य

विवाह का एक उद्देश्य यह भी होता है कि कुल के जो धर्म होते हैं, उनकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो, आगे की पीढ़ियों को प्रेरणा मिले तथा गुण-विकास हो, यह अध्यात्मशास्त्रकारों ने माना है । कुल-धर्म सबसे बलवान् धर्म है ।

कुल-परम्परा बढ़ाने के लिए गृहस्थाश्रम

गृहस्थाश्रम में—परिवार में, कुल में जो गुण हैं उनको आगे बढ़ाना है । यदि उन गुणों को आगे चलानेवाली संतति पैदा न हुई, तो संतान होते हुए भी वे गृहस्थ नि:संतान हैं । कुल-प्रेरणा से मनुष्य का विकास होता है और कुल के गुणों का उत्तरोत्तर विकास होता है । वह जो कुल-विद्या है, वह या तो ज्येष्ठ पुत्र, जिसे शास्त्रकार धर्म-संतान कहते हैं, उसे देनी चाहिए अथवा सर्वश्रेष्ठ शिष्य को देनी चाहिए ।

परंतु इन दिनों गृहस्थाश्रम की कोई प्रतिष्ठा नहीं रही है । गृहस्थों का एक आश्रम है । उसके कुछ उद्देश्य हैं, मकसद हैं, कानून हैं । गृहस्थाश्रम सबके लिए मातृस्थान है । जैसे बालक माता की उपासना करता है, उसी तरह अन्य आश्रम गृहस्थाश्रम की उपासना करते हैं । गृहस्थाश्रम दूसरे आश्रमों को आश्रय देता है, परन्तु आज इस गृहस्थाश्रम की प्रतिष्ठा ही नहीं रही है ।

विवाह यानी क्या ? सत्य+संयम+सेवाभाव । गृहस्थाश्रम के लिए हमारा यह छोटा-सा सूत्र है । गृहस्थाश्रम ब्रह्मचर्य का अभ्यास करने के लिए एक पाठशाला है । गृहस्थाश्रम में किसी एक 'हृदय के साथ एकरूप होने का अभ्यास हो जायगा, तो फिर विश्व-हृदय जीतने की कुञ्जी हाथ आ जायगी।

गृहस्थ 'सन्त' भी बने हैं

बहुत सारे संत, मध्ययुग में हो गये, गृहस्थ ही थे । इधर महाराष्ट्र में ज्ञानदेव ओर रामदास, उधर कबीर और नानक ब्रह्मचारी थे; बाकी सब गृहस्थ थे । परन्तु गृहस्थ का जो धर्म है वह शास्त्र के अनुसार पालन करना चाहिए। अर्थ इसका यह है कि जितनी संतान उतनी बार संगम । इस वास्ते गृहस्थाश्रम ब्रह्मचर्य से भी कठिन है । शास्त्र के अनुसार गृहस्थाश्रम होता है तो उसमें ईश्वर की प्राप्ति की शक्यता है, अन्यथा नहीं ।

शुभ कार्यों में स्त्री का सहयोग जरूरी

प्राचीन काल से हिन्दुस्तान में यह प्रथा चली आयी है कि प्रत्येक शुभ कार्य में स्त्री का सहयोग आवश्यक है, तभी वह कार्य पूर्ण माना जाता है। हिन्दू-धर्म में कहा है कि पत्नी के बिना यज्ञ नहीं कर सकते । श्री रामचन्द्र को यज्ञ करना था, उस समय सीतादेवी वन में थी । विश्वामित्र ने कहा कि पत्नी के बिना यज्ञ नहीं हो सकता । आखिर सीता की मृण्मयी प्रतिमा बनायी गयी। इसका मतलब यह है कि गृहस्थाश्रमी मनुष्य पत्नी को छोड़कर सार्वजनिक काम नहीं कर सकते। वह सहधर्मचारिणी कही गयी हैं । यह सहधर्म याने पुरुष जो धर्म करे, उसमें स्त्री को भी सहयोग देने को कहा गया है ।

मुस्लिम-शासन के साथ पर्दा आया

लेकिन बीच में यहाँ मुसलमानों का सैकड़ों वर्ष राज्य चला । अंग्रेजों के जमाने में जैसे शहरी लोग, जिनको नौकरी करने की इच्छा थी, पैसा कमाना था, वे बूट-पैंट पहनकर अंग्रेजों का अनुकरण करने लगे । यहाँ तक कि गर्मी के दिनों में भी पहनने लगे । उसी तरह 'जी-हाँ' करके

मुसलमानों के पास जाने के लिए, उनकी कृपा हासिल करने के लिए शहरी लोगों ने उनके रिवाज अपना लिये । परदे का रिवाज हमने मुसलमानों से ही अपनाया है । तब से यह गुलामी हमारे समाज में आयी है । औरतों को पर्दे में रखना कुलीनता समझा जाने लगा । उसे हमने अपना धर्म समझ लिया । धर्म का नाम देकर लोगों ने बहनों को घर में बन्द कर रखा है ।

पत्नी-व्रत का प्रतीक क्यों नहीं ?

कुछ लोग चूड़ी आदि गहनों को पातिव्रत्य का प्रतीक मानते हैं । मैं पूछता हूँ कि क्या पातिव्रत्य एकांगी वस्तु है ? क्या पुरुषों को भी पत्नीव्रती नहीं होना चाहिए ? कहाँ है पुरुषों के पत्नीव्रत के प्रतीक ? पत्नीव्रत के लिए यदि किसी प्रतीक की जरूरत नहीं है, तो पातिव्रत्य के लिए जरूरत क्यों होनी चाहिए ? इसमें सवाल पातिव्रत्य का नही है । सवाल यह है कि स्त्री पुरुष की दासी है या नहीं ? उसे दासी मानना बिलकुल गलत खयाल है । इसका हम विरोध करना चाहते हैं । स्त्री एक स्वतंत्र हस्ती है, एक जीव है । पुरुष में जीवात्मा जितना बलवान् है, उतना ही बलवान् स्त्री में है । समझना चाहिए कि पत्नी का परमेश्वर के साथ सीधा सम्बन्ध है, पति की एजेन्सी के मार्फत वह सम्बन्ध नहीं है । अगर पत्नी को एजेन्सी की जरूरत है, तो पति को भी परमेश्वर के साथ सम्बन्ध जोड़ने के लिए पत्नी की एजेन्सी की जरूरत रहेगी ।

गहने सुवर्ण की बेड़ी हैं

आज स्त्रियों के नाक, कान में छेद करके उनमें गहने पहनाये जाते हैं, यह सारा ईश्वर के खिलाफ अविश्वास का प्रस्ताव है । जन्म के साथ कोई बच्चा गहने पहनकर पैदा नहीं होता । ईश्वर चाहता, तो क्या इस तरह छेद नहीं बना सकता था ? ईश्वर ने मोती में भी छेद नहीं रखा । परन्तु हम समुद्र में से मोती निकालकर उसमें छेद कर देते हैं और स्त्रियों के कान-नाक में छेद करके उसमें वे मोती डालते हैं । उनके नाक, कान, गला, हाथ, पाँव आदि सबमें सुवर्ण-मोती के गहने पहनाते हैं, तो क्या वहाँ पूरी कोलार की सोने की खान इकट्ठी करनी है ? पुरुषों ने ही उनके हाथ-पाँव मे बेड़ी डाल दी है । वह बेड़ी सुवर्ण की है, इसलिए 'बेड़ी' नहीं कहलाती है । लोहे की होती

तो उसे 'बेड़ी' कहते । परिणाम यह होता है कि स्त्री अकेली बाहर नहीं जा सकती है और हिम्मत से काम भी नहीं कर पाती है । पुरुषों ने स्त्रियों को ऐसा बना दिया है।

मदालसा मेरे पास पढ़ती थी । उन दिनों आश्रम और उसके घर के बीच वीरान जंगल था । सुबह पाँच बजे उठकर स्नान करके वह आती थी। उसकी माँ को डर लगता था कि अकेली लड़की जाती है, तो खतरा और मार्ग में सन्नाटा रहता था । तो स्त्रियाँ निर्भय होकर कहीं जा सकती हैं, ऐसी कल्पना भी नहीं कर सकते हैं । रात में या बड़े तड़के अकेले उन्हें कहीं भेजने में खतरा मानते हैं, क्योंकि उनके शरीर पर गहने होते हैं । वे गहने मूल्यवान् होते हैं, इसलिए स्त्रियाँ भी डरती हैं । पुरुषों ने उन्हें अपना बैंक ही बना लिया है | कवि भी 'भीरु' विशेषणपूर्वक उसका गौरव करते हैं । परन्तु यह विशेषण गौरवास्पद नहीं है । इसमें तो स्त्रियों को अपमान महसूस होना चाहिए । स्त्रियों के सिर पर इतना सारा बोझ डालकर हम ही उन्हें 'भीरु' कहते हैं और 'भीरु' कहने में स्त्रियों का हम गौरव समझते हैं।

तो इन गहनों का कोई प्रयोजन नहीं है । असम के माधवदेव ने गाया है कि **'कणपथे भक्तेर हियात प्रवेशि हरि**'—भगवान् कानों के द्वारा भक्त के हृदय में दाखिल होता है । कर्ण का भूषण गहना नहीं है, हरि-नाम है । आज मैं गाँव-गाँव जाता हूँ । गाँवों के सामने कर्जे का बड़ा सवाल आता है । मैं कहता हूँ कि बहनें निकाल दें ये गहने, और मिटा दें गाँव का कर्ज ! स्त्री को 'भीरु' कहकर वे पुरुषों के हाथ में सुरक्षित रहनी चाहिए, ऐसा हम मानते हैं । यह धर्म-विचार नहीं है । धर्म कहता है कि हरएक में आत्मा है । परमेश्वर का वर्णन करते हुए उपनिषदों में कहा गया है कि तू ही स्त्री है, तू ही पुरुष है ।'

कपड़े सादे हों

ऐसा कपड़ा भी नहीं पहनना चाहिए, जिससे लोगों का ध्यान हमारी तरफ खिंचे । स्त्रियों की तरफ लोगों का ध्यान जाय, यह अच्छी बात नहीं। इसलिए बाहर जाते वक्त पोशाक सादी होनी चाहिए । कपड़े की उपयोगिता शरीर के रक्षण के लिए और लज्जा ढाँकने के लिए है, ऐसा मैं मानता हूँ । परन्तु आजकल की पोशाकें ऐसी हैं कि शरीर को तो चोंबीसों घंटे खतरे में रहना

ही पड़ता है, बल्कि सारी लज्जा ही बाहर निकल पड़ती है । ऐसे चुस्त कपड़े नहीं पहनने चाहिए । अपना देह कोई प्रदर्शन की चीज नहीं है ।

पतिव्रता या सत्यव्रता

कहा जाता है कि स्त्रियों को पति-देवता के पीछे जाना चाहिए । ज्ञानेश्वरी में एक वाक्य आया है : '**पतिचियां मता अनुसरोनी पतिव्रता**'—जब मैंने यह पढ़ा तो मैं सोचता ही रहा कि ज्ञानेश्वर को यह क्या सूझा ? लेकिन बाद में राजवाड़े की ज्ञानेश्वरी की संशोधित आवृत्ति मेरे पास आयी, जिसमें पुराने पाठ- भेद बताये गये थे । उसमें मैंने पढ़ा : '**पतिचियां व्रता अनुसरोनी पतिव्रता**'— पति के व्रत को बढ़ावा देनेवाली पतिव्रता होती है । ज्ञानदेव ने यह नहीं लिखा होगा कि पति के मत का अनुसरण करनेवाली पतिव्रता होती है। लेकिन समाज को ज्ञानदेव का यह विवरण अच्छा नहीं लगा होगा । इसलिए 'व्रता' के बदले 'मता' कर दिया गया । इससे पता चलता है कि साहित्य में कितने अत्याचार हुए हैं । वह सारी कहानी बहुत ही हृदय-विदारक और मनोरंजक होगी ।

आज पातिव्रत्य का यह अर्थ माना गया है कि पति भला-बुरा जैसा भी हो, उसमें पत्नी को लीन हो जाना है । स्त्री का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है । लेकिन पतिव्रता का अर्थ पति के व्रत में योग देना है । पति शराब पीनेवाला हो, तो उसके शराब पीने में मदद नहीं देना है, बल्कि उसका हाथ पकड़ना है और शराब का प्याला फेंक देना है । उससे कहना चाहिए कि "तुम शराब नहीं छोड़ोगे, तो मैं तुम्हें नहीं खिलाऊँगी ।" तिस पर वह यदि कहे कि "मैं तुझे पीटूँगा" तो कहना चाहिए कि "पीटो । उससे तुम्हारे हाथ दुखेंगे, लेकिन मैं तुम्हारे लिए रसोई नहीं बनाऊँगी ।" यह पातिव्रत्य-धर्म है। मैं समझता हूँ कि स्त्री का यह धर्म है कि वह पुरुष को अंकुश में रखे, स्त्रियाँ पुरुषों की बराबरी न करें, बल्कि उन्हें अंकुश में रखें । आज स्त्री का स्थान बहुत ही गौण है । कुछ लोग कहते हैं कि उन्हें पति का हक देना चाहिए । वह तो जरूर देना चाहिए । परन्तु वह काफी नहीं है । स्त्री को परिपूर्ण आध्यात्मिक अधिकार होने चाहिए ।

स्वर्ण से मिट्टी की योग्यता अधिक

स्त्रियों को जो आभूषण आदि पहनाये जाते हैं, वे सब कोलार की सोने की खान में डालो । स्वर्ण ने दुनिया का कल्याण नहीं किया है । कहा जाता है कि सोने की और मिट्टी की योग्यता समान है । रंका और बंका की कहानी मशहूर है । वे दोनों रास्ते से गुजर रहे थे । रास्ते में रंका ने सोने का कोई गहना नीचे पड़ा देखा तो उसको लगा कि अपनी पत्नी बंका को उसे देखकर मोह हो जायगा तो उसने उस गहने पर मिट्टी ढँक दी । उसके पूछने पर रंका ने यह बताया तब जानते हैं बंका ने क्या कहा ? कहा : "आखिर मिट्टी पर मिट्टी डालने से क्या हुआ ?" तो बंका के मन सोना मिट्टी के समान था । परन्तु विचार करने पर प्रतीत होगा कि सोना और मिट्टी की योग्यता समान नहीं है । मिट्टी की योग्यता सोने से बहुत ज्यादा है ।

अमृत प्राप्त करें, क्षणायुषी चीजें नहीं

उपनिषद् में मैत्रेयी की कहानी आती है । याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थीं। आखिरी उम्र में सारा छोड़कर वे जंगल में जाने लगे जौर अपनी सम्पत्ति के दो हिस्से करके अपनी दोनों पत्नियों को सौंपा । तब उनकी एक पत्नी मैत्रेयी उनसे पूछती है कि 'आप जिस चीज के लिए, अमृतत्व के लिए जंगल में जा रहे हैं, उसकी प्राप्ति क्या इस संपत्ति-संग्रह के द्वारा हो सकेगी ?" तब उसको जवाब मिला : '**अमृतत्वस्य तु न आशां अस्ति वित्तेन**'—'सम्पत्ति से अमृतत्व मिलने की कोई आशा नहीं ।' यह जवाब सुनकर मैत्रेयी ने सम्पत्ति का अपना हिस्सा दूसरी पत्नी कात्यायनी को दे दिया और वह भी अपने पति के साथ जंगल चली गयी ।

तो, जीवन में देहपरायणता कम हो, आत्मपरायणता बढ़े, यह देखना चाहिए। यह जो देह हमें प्राप्त हुआ है, उसका एकमात्र ध्येय आत्मसाक्षात्कार है । वह जिस चीज से मिलता हो, उसीमें ध्यान रहे । गृहस्थाश्रम में भी हमें इसीकी साधना करनी है ।

प्रश्न : आपने ब्रह्मचारी बहनों पर जोर दिया है, वह ठीक ही है । लेकिन मेरे नम्र विचार से ज्ञानी और योगी दम्पत्तियों का होना भी जरूरी है। एक अज्ञानी दम्पत्ति अज्ञनी बच्चों व प्रजा का लश्कर बढ़ायेगा, और वही हो रहा है । तो एक ज्ञानी और योगी दम्पत्ति ज्ञानियों का लश्कर बढ़ा

सकता है । योग्य, ज्ञानी बच्चों को पैदा करने का अधिकार तो ज्ञानियों का ही है। जैसे प्राचीन काल में मदालसा ने किया । वह ज्ञानी थी, अपने पति ऋतध्वज को भी उसने ज्ञानी बनाया और ऐसी प्रजा को जन्म दिया कि पीढ़ियों तक ज्ञानियों की वंश-बेल चलती रही । इसलिए योग्य संतानोत्पत्ति करनेवाले भी इस आश्रम में गिने जायँ और इस बात को थोड़ा महत्त्व भी देना चाहिए, ताकि ज्ञानियों का विस्तार बढ़े।

उत्तर : यह तो बाबा को अपने अनुभव से मालूम है । उसका वह इनकार नहीं कर सकता । बाबा की माँ परम भक्त थी । पूजा करते समय उसकी आँखों से जो आँसू बहते थे, बाबा वह रोज देखता था । पिताजी भी हमारे योगी थे। दोनों का परिणाम यह हुआ कि उनके तीनों बच्चों को ब्रह्मचर्य की प्रेरणा मिली । अगर माता की भक्ति और पिता का योग न होता, तो यह बनता नहीं । इसलिए बाबा अपने अनुभव से ही कह सकता है कि समाज को ऊँचा बढ़ाने की शक्ति मातृत्व में पड़ी है । इसलिए उसका विकास जरूरी है ।

प्रश्न में है, 'इसलिए योग्य संतानोत्पत्ति करनेवाले भी इस आश्रम में गिने जायें ।' यह तो मैंने कहा ही है कि गृहस्थाश्रम सर्व आश्रमों का समन्वय है। इस प्रश्न में मदालसा का उदाहरण दिया है । मदालसा पुत्र को आत्मज्ञान सिखाती है । ज्ञानदेव महाराज ने भी इस पर काव्य लिखा है । तो मदालसा से पूछना चाहिए कि तुमने पति के साथ कितनी दफा संगम किया ? क्या उत्तर मिलेगा ? सैकड़ों दफा ? ऐसा उत्तर मिलेगा ? ब्रह्मचर्य की जितनी योग्यता है, उससे जरा भी कम योग्यता गृहस्थाश्रम की नहीं । परन्तु गृहस्थाश्रम की साधना कठिन है । यह अगर साधना है तो स्त्री-शक्ति खड़ी करनी होगी ।

प्रश्न : ब्रह्मचर्य को ही उत्तेजन दिया गया तो संत पुरुषों की वंश-बेल रुक जायगी ।

उत्तर : मुख्य दुःख यही हे कि कुल नष्ट होगा । आप शायद जानती होंगी कि जिस वृक्ष को सर्वोत्तम फल आ गये, उस वृक्ष का क्षय होता है। उस वृक्ष को तोड़ डालते हैं । अगर न तोड़ें तो रद्दी फल पैदा होते हैं । वैसे ही जिस वंश में महापुरुष जनमते हैं, वह वंश खत्म हो जाता है । उसके बाद उससे बढ़कर संतति नहीं होती, उसकी अवनति होती है । यह जिन्होंने पहचाना वे

बुद्धिमान् महात्मा साबित हुए, जिन्होंने नहीं पहचाना वे बेवकूफ महात्मा साबित हुए । एक अक्लवाले, जिनको बचपन में ही अक्ल थी, दूसरे बेवकूफ, जो बचपन में बेवकूफ, बाद में उन्हें अकल आयी । ऐसे एक भी महात्मा की योग्यता का अंश उसके एक भी पुत्र में नहीं आया । सब डिटीरिओरेट (क्षीण) हुए, क्योंकि वंश का सर्वोत्तम फल आ गया, सर्वोत्तम फल आने के बाद डिटीरिओरेशन होता ही है । शंकराचार्य ने यह समझ लिया, इसलिए उनकी परम्परा शिष्यरूप में चली । संतान तीन प्रकार की होती है - औरस, दत्तक और मानस । औरस संतान माता-पिता की बीमारियाँ लेते हैं | पिता या माता क्षयरोगी हो तो बच्चे में भी क्षयरोग आ सकता है । दत्तक पुत्र को इस्टेट मिलती है। मानसपुत्र को गुण मिलते हैं । रामकृष्ण परमहंस के मानसपुत्र विवेकानंद हुए । उनकी शिष्य-परम्परा चली । अगर वे बच्चे पैदा करते तो वह डिटीरिओरेट होते, क्योंकि सवोत्तम फल आ गया था ।

रामचन्द्र के जन्म के बाद रघुवंश क्षीण होता गया । रघुवंश का जिक्र कालिदास ने किया है । रघुवंश में दिलीप, रघु, दशरथ इत्यादि राजाओं का वर्णन कर आखिर रामचरित गाया । आखिरी राजा क्षय से मरा और वहाँ वंश खत्म हुआ । रामचन्द्र के बाद वंश की क्षति हुई और चंद पीढ़ियों के बाद वंश क्षीण हो गया । नंबर दो, भगवान् कृष्ण के बाद जो कुछ संतान हुई थी, उसमें प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, इत्यादि दो-तीन नाम सुनने में आते हैं । उसके बाद वंश समाप्त । गौतम बुद्ध के बाद उनके पुत्र हुए, उत्तकी कीर्ति तो फैली दुनिया में बुद्ध के पुत्र के नाम के तौर पर, पर वंश की उन्नति नहीं हुई । तुकाराम । इन सबके वंश उत्तरोत्तर क्षीण होते गये, क्योंकि सर्वोत्तम फल आ चुका था। वंश क्षीण होने का मतलब नष्ट होना नहीं, क्षय होना है ।

लेकिन इतना सब कहने के बाद - यह तो वैज्ञानिक प्रक्रिया है - भगवान् के हाथ में अपवाद है, इस वास्ते भगवान् अपवाद पैदा कर सकता है । उसको शक्ति का हमें अंदाज नहीं । जितना हमें विश्व का दर्शन हुआ है, उसके आधार से हम यह कहते हैं ।

प्रश्न : आप कहते हैं कि तुकाराम जैसे संतों को बचपन में अक्ल नहीं थी, बाद में वे महात्मा बने। उन्होंने संतान तो तब पैदा की, जब उन्हें अक्ल नहीं थी । ज्ञानी मनुष्य संतान पैदा करेगा, तो ज्ञानी प्रजा निकलेगी ।

उत्तर : इनका कहना है, ज्ञानी बनने के बाद संतान पैदा करें, तो संतान महाज्ञानी निकलेगी । लेकिन महात्मा बनने के बाद भी प्रजा उत्पन्न करे, ऐसा महात्मा अभी तक पैदा हुआ नहीं, मैं मिसाल दूँ आपको ? आपकी दृष्टि में व्यासमुनि बहुत ही बड़े महात्मा थे, उनके पुत्र शुक हुए । शुक ब्रह्मचारी थे। तो व्यास का वंश कुण्ठित हुआ । शुक सवोत्तम फल । व्यास उस हिसाब से दर्जे में कम । इसकी कहानी है । एक बार व्यास मुनि धोती वगैरह पहनकर एक सरोवर के किनारे से जा रहे थे । तालाब में स्त्रियाँ नग्न होकर स्नान कर रही थीं । व्यास को देखते ही वे लज्जित हुईं और पानी के अन्दर चली गयीं । थोड़ी ही देर के बाद, वहाँ से शुक नग्न जाने लगे । लेकिन बहनों को कुछ भी हुआ नहीं, वे वैसी ही नि:संकोच स्नान करती रहीं । इतने निर्विकार थे शुकदेव । अगर शुकदेव को अक्ल न होती और वे संतति पैदा करते, तो क्या वह 'सवाई शुक' होती ? मराठी में कहते हैं 'दीड शहाणा' (डेढ़ सयाना, मतलब बे-अक्ल) ।

रामकृष्ण परमहंस बचपन में बिलकुल पागल जैसे रहते थे । भगवान् के नाम के सिवा उनको कुछ सूझता नहीं था । उनके माता-पिता ने सोचा कि इसकी शादी करेंगे, तो अक्ल आयेगी, बिलकुल बेवकूफ बन गया है । इसलिए शादी कर दी । रामकृष्ण रोज शक्तिमाता की पूजा करते थे । शादी के बाद एक दिन शारदादेवी को—अपनी पत्नी को बुलाया, एक पीढ़ा बिछाया और कहा, बैठो । वह बैठ गयी । कहा, आँखें बन्द करो । उसने आँखें बन्द कर लीं। फिर उसके सिर पर फूल चढ़ाये, उसकी आरती की, उसको प्रणाम किया और कहा, आज से तुम हमारी माता हो गयी । तब से वह शारदामाता हो गयी । अब उनको यह सूझता, जैसे व्यास भगवान् को सूझा कि ठीक है, एक दफा गृहस्थाश्रम किया जाय और उनको संतान होती तो सम्भव है, वह उनसे बढ़कर होती । परन्तु उनसे बढ़कर उनकी जो सन्तान होती, उसको अगर अक्ल होती तो वह अपना वंश वहीं खत्म करती ।

हम जो देखते हैं वह यही है कि महापुरुषों का वंश जहाँ आगे चला वहाँ वह क्षीण हुआ । लेकिन भगवान् की जैसी इच्छा होगी वैसा ही निर्णय होगा । वह बाबा के हाथ में नहीं । बाबा ने तो कहा कि एक सम्पूर्ण नैष्ठिक ब्रह्मचारी के प्रति बाबा को जितना आदर है, उससे अधिक आदर शास्त्रीय विधि के अनुसार गृहस्थाश्रम करनेवाले गृहस्थ के लिए है। पूर्ण ब्रह्मचारी रहना सापेक्षतया आसान है ।

दूसरी बात, इस प्रश्न में मोह पड़ा है । मोह यह है कि सृष्टि का वंश चलना चाहिए, परम्परा रहनी चाहिए । मान लीजिये, बाबा की ब्रह्मचर्य की बात पृथ्वी पर के सभी मानवों ने मान ली और दुनिया के सबके सब मानव सर्वोत्तम ब्रह्मचारी हो गये, सबको बाबा की कल्पना पसन्द आयी तो क्या होगा ? डर है कि उसके परिणामस्वरूप मानव-वंश खत्म हो जायगा । मैं कहता हूँ, मानव-वंश नष्ट नहीं होगा, वह अत्यन्त उन्नत होगा और वह देवत्व प्राप्त करेगा । भगवान् पृथ्वी पर का मानव-वंश खतम कर मंगल-गुरु पर खड़ा कर देंगे । उन्होंने अनादि-काल से मानव-वंश को पैदा किया है, उनको जरूरी लगेगा तो वे सबको मंगल-गुरु पर भेज देंगे । इसलिए मानव-वंश की चिंता करने का कारण नहीं।

प्रश्न : राम ने सीता का त्याग करके उस पर अन्याय किया है, ऐसा आपको नहीं लगता ?

उत्तर : यह विवाद का विषय है । आदमी के सामने कभी-कभी धर्म-संकट उपस्थित हो जाता है । याने दो धर्म सामने आते हैं । ऐसे वक्त किस धर्म को प्रधानता दी जाय और किस धर्म को गौणता, यह प्रश्न उसके सामने खड़ा रहता है ।

राम के सामने भी दो धर्म थे । एक था राज-धर्म और दूसरा था पति—धर्म । इनमें से किसी एक को स्वीकार कर दूसरे को छोड़ना पड़ता । या तो राज्य छोड़कर पत्नी को स्वीकार करना पड़ता, जिसमें एक आपत्ति थी । अथवा पत्नी को छोड़कर राज्य स्वीकार करना पड़ता और उसमें भी एक आपत्ति थी। अर्थात् दोनों तरफ से आपत्तियाँ थीं और राम कुछ भी करते, तो भी उन्हें पाप लगनेवाला ही था । तब उन्होंने ऐसा विचार किया कि सीता का उन पर इतना विश्वास है कि उसको गलतफहमी नहीं हो सकती। सीता विश्वास का विषय है । प्रजा के सम्बन्ध में राम का ऐसा

विश्वास नहीं था । इसलिए राम ने लक्ष्मण से कहा कि सीता को जंगल में छोड़ देना, पर आश्रम के निकट छोड़ना । राम को विश्वास था कि सारा विश्व भी यदि मुझ पर निष्ठुरता का आरोप करे, तब भी सीता मुझ पर वैसा आक्षेप नहीं करेगी । अब चाहें तो आप राम पर आरोप करें, पर सीता कभी नहीं करेगी ।

(एक लड़की ने पत्र द्वारा पुछा था कि वह किसीसे विवाह करना चाहती थी, किन्तु माता-पिता अनुमति नहीं दे रहे थे, तो उसे क्या करना चाहिए ? - इसके उत्तर में विनोबाजी ने लिखा:)

विवाह के बारे में माँ-बाप सलाह दे सकते हैं, मदद कर सकते हैं । परन्तु निर्णय तो लड़की का ही मानना चाहिए । माँ-बाप की सलाह सहज रूप में ही लड़की को जँच गयी, तब तो कोई बात ही नहीं । पर यदि नहीं जँची, तो माँ-बाप को दुखी नहीं होना चाहिए । इस पर भी यदि उन्हें दुःख हो ही, तो उसमें लड़की का कोई दोष है, यह मानने को मैं तैयार नहीं । केवल माँ-बाप के संतोष के लिए ऐसी बात, जिसे हृदय स्वीकार न करे, कभी मान्य नहीं करनी चाहिए । कारण कि जो बात हृदय को जँचे नहीं, उसे करना अपने हृदय को धोका देना है । और, हृदय को धोका देना अधर्म है । उससे आखिर माता-पिता को धोका देने जैसा ही फल होगा ।

जिसके प्रति तुम्हारे मन में विशेष अनुराग है, परन्तु तुम्हें पक्का मालूम है कि वह तुम्हें चाहता नहीं, उसके साथ विवाह करने की कल्पना तुम्हें छोड़ ही देनी चाहिए । जिस प्रकार सबके प्रति सद्भावना होनी चाहिए, वैसे ही उसके प्रति भी रखनी चाहिए । परन्तु ऐसा तटस्थ भाव रखना अशक्य हो और तीव्र प्रेम का अनुभव आता हो और इतने पर भी उसकी ओर से कोई अनुकूल उत्तर न मिलता हो, तो शारीरिक विवाह का विचार छोड़कर उस व्यक्ति को परमात्मा का प्रतीक मानकर उसका मानसिक रूप से वरण कर लेना चाहिए और ब्रह्मचर्य-व्रत से रहते हुए जीवन व्यतीत करना चाहिए । यह आत्मपरीक्षण करके स्वयं निश्चित कर लेना चाहिए । मेरा उत्तर स्वयं में पूर्ण है । हरएक अपनी स्थिति देखकर उसका विनियोग अपने ऊपर कर सकता है ।

और भी अनेक सूचनाएँ देना चाहता हूँ । अपनी मनःस्थिति का वास्तविक ज्ञान बहुत बार मनुष्य को होता ही नहीं । वस्तु का यथार्थ दर्शन बहुत पास से भी नहीं और न बहुत दूर से ही

होता है । थोड़े अन्तर से उसका ठीक दर्शन होता है । पास रहकर बहुत चिन्ता और चिन्तन करने से भी जो बात ध्यान में नहीं आती, वही थोड़े समय बाद अपने-आप ध्यान में आ जाती है। इसलिए मानसिक व्याकुलता तो छोड़ ही देनी चाहिए ।

माता सहज प्राप्त होती है, उसे चुनना नहीं पड़ता । उसी प्रकार ईश्वर की योजना में पति भी सहज प्राप्त होता है, ऐसी श्रद्धा रखी जाय, तो व्याकुलता कम होगी । कारण परमेश्वर कोई शारीरिक वस्तु तो नहीं, मानसिक है । सारे विश्व की ओर परिपूर्ण प्रेम से देखना सीखने के लिए लग्न (विवाह) आदि के प्रयोग हैं ।

हृदय के विरुद्ध कोई काम न करना । धीरज से काम लो और ईश्वर पर श्रद्धा रखो । जब-जब कुछ पूछना हो, खुशी से पूछना ।

तुम्हारा व्यक्तिगत परिचय मुझे नहीं है । इसकी आवश्यकता भी नहीं है, क्योंकि इस शरीर को तो भुलाना ही है ।

प्रश्न : मेरी भाँजी को हमेशा समझाने पर काम नहीं बनता है, कभी-कभी उसे डाँट-डपट दिखाकर या पीटकर चुप करना पड़ता है । तो करें क्या, यह समझ में नहीं आता ।

विनोबा : यह प्रश्न मनोरंजक है । निर्भयता सब गुणों का आधार है। उसे गँवाकर दूसरा कुछ भी कमाने की बात करना अभागेपन का लक्षण है। यह निश्चय हो जाने के बाद तो उस प्रश्न में केवल मनोरंजन ही रह जाता है । उसका सामाजिक उत्तर देना हो तो पूर्व बुनियादी शिक्षण की योजना अर्थात् बालवाड़ी है । और कौटुम्बिक उत्तर यह है कि बच्चों को आनुषंगिक अर्थात् नंबर दो की वस्तु नहीं, बल्कि मुख्य वस्तु समझकर उसके अनुसार गृहस्थ-जीवन की योजना की जाय, यह है । सही उपाय तो यह है कि वह लड़की जिस प्रकार पूरे दिल से रोती है, उसी प्रकार उसकी मामी को दिल से हँसने आना चाहिए । इस उपाय को जरूर आजमाकर देखें । हँसी के सामने रोना टिक ही नहीं सकता। शर्त केवल यही है कि रोना यदि दिल के साथ हो रहा हो तो हँसी भी दिल के साथ हो । मेरा अपना अनुभव तो यह है कि छोटे बच्चों में जितनी समझ होती है, उतनी बड़ों में नहीं होती । इसलिए ज्ञानी पुरुषों ने एक आचार-सूत्र ही बना दिया है कि बच्चों के समान

रहो ।' एक उड़नेवाला कौआ भी बच्चे को हँसा सकता है । एक अबोध बालक अपनी माँ पर पूरा विश्वास करके उसके उदर में जन्म ग्रहण करता है, निर्भयतापूर्वक उसकी गोद में सोता है, और वह जिसे चन्द्र कहती है उसे चन्द्र और जिसे सूर्य कहती है उसे सूर्य समझ लेता है । ऐसे बच्चों के बारे में माँ-बाप किस मुँह से शिकायत कर सकते हैं ? फिर भी मामी के दिल में बच्ची को पीटने की ही प्रेरणा हो तो इस क्रिया का कर्मत्व वह अपने-आपको ही बना लें।

६. सन्तति-नियमन की भारतीय दृष्टि

यद्यपि गांधीजी ने सादगी का आग्रह रखा, तथापि आजकल भोगों के साधन जोरों से चल और बढ़ रहे हैं । भोग की प्रवृत्ति में गलती हो रही है, ऐसा महसूस भी नहीं होता । महसूस होता तब तो कुछ निस्तार था । लेकिन आजकल तो संतति-नियमन की बात का निर्लज्जता से प्रचार हो रहा है । जो पुरुष उसका प्रचार करते हैं, उनमें बहुत बड़े दयालु करुणावान् पुरुष भी हैं, यह मैं जानता हूँ। उनको ऐसा प्रचार करने में व्यावहारिकता लगती है । लेकिन उनकी करुणा ऊपर-ऊपर की है, गहरी नहीं । वह नुकसानदेह है । वह देश की आत्मशक्ति को क्षीण करनेवाली साबित हो सकती है । फ्रांस में ऐसा ही हुआ है । पुरुष की हीनता वहाँ दीख पड़ती है और पुरुषार्थ-शक्ति क्षीण हो रही है । क्योंकि सारा वातावरण ही प्रतिकूल दीखता है । इसलिए गृहस्थाश्रम में ब्रह्मचर्य का गांधी-विचार फैला हुआ नहीं दिखाई पड़ता । फिर भी वह विचार मिटेगा नहीं, क्योंकि एक नयी राह मिल गयी है ।

कृत्रिम साधनों से परिवार-नियोजन करने में मैं अपने देश का कल्याण नहीं देखता । मैं मानता हूँ कि इसमें आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों की हार है । इसके कई पहलू हैं—आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षणिक । यह चीज ही ऐसी है कि बिलकुल जीवन के केन्द्र में खड़ी है। इसलिए यों ही सहजभाव से कह देना कि 'हाँ भाई, जनसंख्या बढ़ रही है तो करो नियमन', यह मुझे जँचता नहीं ।

भार पाप का, संख्या का नहीं

मैंने एक सूत्र बनाया है: पृथ्वी को पाप का भार होता है, संख्या का नहीं । संतान पाप से बढ़ सकती है, पुण्य से भी बढ़ सकती है । संतान पाप से घट सकती है, पुण्य से भी घट सकती है । पुण्य-मार्ग से सन्तान बढ़ेगी, तो पृथ्वी पर भार नहीं होगा । पुण्य-मार्ग से संतान घटेगी, तो नुकसान नहीं होगा। पाप-मार्ग से संतान बढ़ेगी, तो पृथ्वी पर भार होगा और पाप-मार्म से सन्तान घटेगी, तो नुकसान होगा । यह मेरा अपना एक विचार है । इसलिए संतति-निरोध के जो कृत्रिम उपाय चलते हैं, उनको मैं मातृत्व की विडम्बना कहता हूँ ।

काम-विस्फोट—युद्ध से भी भयानक

आज मानव-समाज में सेक्स का ऊधम मचाया जा रहा है । मुझे इसमें युद्ध से भी ज्यादा भय मालूम होता है । अहिंसा को हिंसा का जितना भय है, उससे ज्यादा काम-वासना का है । हर जगह विज्ञान की मदद ली जा रही है, लेकिन सेक्स में नही ली जा रही है । आज समाज की स्थिति ऐसी है कि सेक्स में भी साइंटिफिक एटिट्यूड (वैज्ञानिक वृत्ति) की आवश्यकता पैदा हुई है ।

वैज्ञानिक दृष्टि और संयम

परिवार-नियोजन का मतलब है - आत्म-संयम, अपने पर काबू रखना । यह चीज नामुमकिन नहीं है । विज्ञान के जमाने में पहले से ज्यादा आसान होनी चाहिए । उस विषय का स्वरूप क्या है, परिवार का उद्देश्य क्या है, ब्रह्मचर्य की साधना क्या होती है, उसमें कौन-सी शक्ति भरी है, इन सब बातों का विज्ञान के जमाने में प्रजा को अधिक स्वच्छ ज्ञान होगा । जितना पहले कभी नहीं था, उतना होगा ।

वीर्य तेल, प्रज्ञा ज्योति

हममें एक ऐसी शक्ति है कि उसे ऊपर उठाया जा सकता है । जैसे दीपक या लालटेन की प्रभा होती है । उसके लिए नीचे से तेल सप्लाई होता है, तभी उसकी प्रभा, बत्ती, ज्योति अच्छी तरह चमकती है । मनुष्य के लिए ब्रह्मचर्य तेल है और प्रज्ञा की प्रभा, उसकी बुद्धिमत्ता उसका प्रकाश है । ब्रह्मचर्य के तेल की सप्लाई उसे सतत मिलती रहे तो बुद्धिमत्ता तेजस्वी होती है । वह न रही तो बुद्धि ही कमजोर पड़ जाती है, बुद्धि की प्रतिभा कम होती है ।

देश तेजोहीन बनेगा

कृत्रिम उपायों के अवलंबन से सिर्फ संतान ही नहीं रुकेगी, बुद्धिमत्ता भी रुकेगी । यह जो क्रिएटिव एनर्जी (सर्जक शक्ति) है, जिसे हम वीर्य कहते हैं, उसीमें से वाल्मीकि जैसे महाकवि पैदा हुए; महावीर हनुमान् उसीमें से निकले । प्रतिभावान् पुरुष और तत्त्वज्ञानी उसीमें से निकले

। उस निर्माण-शक्ति का मनुष्य दुरुपयोग करता है । अर्थात् संख्या-नियमन करके संतान को रोक लिया और उस शक्ति का दूसरी तरफ जो उपयोग हो सकता था, उसे विषय-उपभोग में लगा दिया । विषय-वासना का जो अंकुश रहता था, वह नहीं रहा । संतान उत्पन्न न हो, ऐसी व्यवस्था करके पति-पत्नी विषय-वासना में व्यस्त रहेंगे, तो उनके दिमाग का कोई संतुलन नहीं रहेगा । ऐसी हालत में देश तेजोहीन बनेगा । सन्तान कम होगी तो लाभ होगा, यह मानकर ये लोग उसे उत्तेजन देंगे । लेकिन सिर्फ सन्तान ही कम नहीं होगी, ज्ञान-तंतु क्षीण होंगे, प्रभा कम होगी, प्रज्ञा कम पड़ेगी, तेजस्विता कम होगी । कोई भी वैज्ञानिक कहेगा कि कोई भी क्रिया निष्फल नहीं होनी चाहिए । लेकिन आज के वैज्ञानिक इतने दीन हो गये हैं कि वे सोचते ही नहीं । जब मनुष्य के जीवन में वैज्ञानिक दृष्टि आयेगी, तो वह कहेगा कि कोई भी क्रिया निष्फल नहीं होनी चाहिए । तब वह जिस क्रिया में पौरुष का सम्बन्ध आता है, उसे तो बिलकुल निष्फल होने नहीं देगा ।

गम्भीर विषय के साथ खिलवाड़ न हो

दुनिया का यह अनुभव है कि जब जीवन में पुरुषार्थ बढ़ता है, तब विषय-वासना कम होती है । सबको अच्छी तरह पुरुषार्थ करने का मौका मिलेगा, तो स्वभावत: विषय-वासना पर नियंत्रण हो जायगा। साथ ही हिन्दुस्तान का पुरुषार्थ जितना बढ़ेगा, उतना ही पोषण का इन्तजाम भी बढ़ेगा । जहाँ पोषण अच्छा नहीं मिलता, वहाँ भोग-वासना बढ़ती है । जानवरों में भी यह देखा गया है । शेर के बच्चे कम होते हैं, बकरी के ज्यादा । मजबूत जानवरों में विषय-वासना कम होती है और कमजोर जानवरों में ज्यादा । फिर कमजोरों की जो संतान पैदा होती है, वह भी निर्वीर्य या निकम्मी होती है । इसलिए मैं कहता हूँ कि यह विषय की जो संतान पैदा होती. है, वह भी निर्वीर्य या निकम्मी होती है । इसीलिए मैं कहता हूँ कि यह विषय सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक है । यह जीवन का एक गंभीर विषय है । उससे खिलवाड़ न किया जाय । ऐसा वातावरण निर्माण किया जाय, जो संयम के अनुकूल हो । समाज में पुरुषार्थ बढ़ायें, साहित्य सुधारें और गन्दा साहित्य, गन्दे सिनेमा रोकें ।

पुत्र-निर्माण का कार्य समाज-सेवा का कप है । आपने समाज को अच्छा पुत्र दिया, तो वह समाज की सेवा होगी । इस बात की ओर ध्यान न देकर माँ-बाप यदि भोग-वासना में लिप्त रहेंगे तो उनके बच्चे इतने नालायक निकलेंगे कि वे किसी प्रकार का पराक्रम या पुरुषार्थ कर नहीं पायेंगे । उनके जीवन में तेजस्विता भी नहीं रहेगी । इसलिए यह कृत्रिम उपायोंवाली योजना भयंकर है। केवल अपने देश ही के लिए नहीं, मानव-मात्र के लिए उसमें खतरा है ।

मनु कहता है : '**पुत्रं अनुशिष्टं लोक्यमाहु:**' उत्तम पुत्र परलोक में पिता के काम आता है। संतान पैदा करना, उनको शिक्षण देना, उनके साथ बैठना, उठना, सोना, बोलना इत्यादि करने से मनुष्य पर अंकुश रह सकता है । बच्चा यदि माँ-बाप के साथ रहता होगा तो उसका लालन-पालन करने में उनका संतोष बढ़ेगा और संयम रखने में भी मदद मिलेगी । पति-पत्नी एक कमरे में हैं, साथ में बच्चा है, तो माँ-बाप उसे गोद में लेंगे, उसे दुलार करेंगे, उससे उनके चित्त पर अंकुश रहेगा, कृत्रिम उपायों की अपेक्षा इससे ज्यादा मदद मिल सकेगी । बच्चों को दूर भेज़कर माँ-बाप अकेले रहते हैं, तो उसमें बड़ी जोखिम रहती है ।

एक बार गांधीजी ने 'सेफ पीरियड'-रिदम-पद्धति, संगीत-पद्धति को अनुमति दी है, ऐसा मैंने अखबारों में पढ़ा तो मैं सांगली अधिवेशन में उनसे मिला और इस पर चर्चा की कि संगम केवल संतानोत्पत्ति के हेतु ही होना चाहिए और एक दफा के संगम में एक संतान होनी चाहिए । यह शास्त्रीय विषय है । डेढ़ घंटा उनसे चर्चा हुई और चर्चा के बाद उन्होंने कहा कि तुमने जो कहा है, वह सही है, शास्त्रीय है । मैंने जो अनुमति दी थी, वह गलत थी । और फिर सम्मेलन में भी उन्होंने यह बात दोहरायी । एक तुच्छ मनुष्य के मुँह से निकले विचार को भी ग्रहण करने के लिए वे तत्पर रहते थे । वे सत्यग्राही जो थे। कहना मैं यह चाहता हूँ कि ऐसे विषय पर सर्वांगी चिन्तन नहीं होगा तो बड़ा भारी खतरा है ।

फिर ऐसी स्थिति में पति-पत्नी का भी समागम होना चाहिए, इसकी कोई जरूरत नहीं । मैं तो अत्यन्त स्पष्ट बात करता हूँ । संतानोत्पत्ति न हो ऐसी व्यवस्था जब आप करने जायेंगे तो

फिर पति-पत्नी का ही संगम होना चाहिए ऐसी कोई जरूरत कहाँ रही ? आरोग्य को हानि पहुँचती है, इसके सिवा और कोई कारण बचता नहीं, जिसके लिए दूसरे किसीसे समागम न हो ।

संतति-नियमन के विविध उपाय

कृत्रिम साधनों के अलावा संतति-नियमन की दो-तीन पद्धतियाँ हैं: १. पुरुषों को नपुंसक बनाना, २. स्त्रियों का ही गर्भाधान न हो, ३. गर्भाधान हो जाने के बाद दवाइयाँ देकर गर्भपात कराना ।

नपुंसक में से प्रतिभा निर्माण कैसे होगी ?

पहली पद्धति के मुताबिक पुरुषों को नपुंसक करने में एक बात समझ लेनी चाहिए कि प्रजनन-शक्ति रोकने के साथ विचारों की, चिन्तन की प्रजनन-शक्ति भी कुण्ठित होती है । आज तक कोई नपुंसक वाल्मीकि या शेक्सपीयर हुआ हो, ऐसा मेरे ध्यान में नहीं । प्रजनन-शक्ति के साथ प्रतिभा भी दीन और क्षीण होती है । डाक्टरों का इस बारे में कोई अलग अभिप्राय हो, संशोधन हो तो मैं नहीं जानता । इसलिए यह उपाय अपनाने के पहले यह समझ लेना चाहिए कि इससे मनुष्य केवल जननेन्द्रिय तक ही निरुपयोगी नहीं होता, लेकिन सब प्रकार से निकम्मा हो जाता है ।।

स्त्री पर अत्याचार बढ़ेगा

दूसरा उपाय हे स्त्रियों को भी गर्भाधान न हो । इसके बाद भी स्त्री-पुरुष- सम्बन्ध रहे, उसको मैं स्त्री पर किया जानेवाला एक बलात्कार ही मानता हूँ। वह तो निरा व्यभिचार ही है । विवाह के सम्बन्ध को मैं पवित्र मानता हूँ, परन्तु यह सिलसिला शुरू होगा तो उसमें पवित्रता नहीं रहेगी । परपुरुष सम्बन्ध ही अत्याचार होता है, ऐसा नहीं । पति होने पर भी ऐसी स्थिति में सम्बन्ध रहे तो वह अत्याचार ही है । उसको क्षम्य कैसे माना जाय, यह मेरी समझ में तो आता नहीं । फिर स्त्री का स्त्री के नाते क्या गौरव और महिमा रह जायगी ? स्त्रियाँ केवल पुरुषों की वासना का साधन रह जाये तो असह्य है और स्त्रियाँ भी अगर इस तरह पुरुषवश (Passive) हो जायँ तो

फिर पुरुषों की बराबरी तो दरकिनार रही, परन्तु आज की समाज-रचना में परिवर्तन लाने के काम में उसे जो अभिक्रम लेना चाहिए, उसकी उसमें सामर्थ्य ही नहीं रह जायगी । इस प्रकार से स्त्रियों की शक्ति का ऱ्हास हो, यह बहुत बड़ी दु:खदायक घटना है ।

भ्रूण-हत्या—महापातक

दवाइयों द्वारा जो गर्भपात किया जाता है, उससे शरीर पर बड़ा खराब असर होता है । स्त्री पर एक तो विषय का हमला, फिर गर्भधारण का हमला, और उस पर फिर दवाइयों का हमला। इसमें तो स्त्री-शक्ति पर अत्याचार की पराकाष्ठा हो जाती है ।

विज्ञान ने इसे नाम दिया है—स्लोटरिंग डिफेन्सलेस लाइफ । 'स्मृति' में लिखा है कि वृद्ध की हत्या करना गलत है, लेकिन उससे भी ज्यादा गलत है भ्रूण-हत्या । वृद्ध अपने संरक्षण के लिए कुछ नहीं कर सकेगा, फिर भी मारनेवाले पर कम-से-कम पत्थर तो फेंक ही सकता है ।

मानव का अवमूल्यन

कृत्रिम साधनों के लिए आध्यात्मिक दृष्टि से मेरा जो आक्षेप है वह यह है कि—मैं एक चिन्तनशील लेखक की भाषा में बोल रहा हूँ—उससे (destruction of defenceless life) (नि:सहाय जीव की हत्या) होगा । उपनिषद् में कहा गया है कि जब पति-पत्नी का संयोग होता है, तब उस वीर्य के द्वारा एक जीवात्मा अपने जन्म का मार्ग ढूँढ़ता है । आप यदि ब्रह्मचर्य का पालन करते हों, और केवल संतानोत्पत्ति के हेतु से ही संभोग करने की गृहस्थनिष्ठा रखते हों, तब तो पति-पत्नी के संयोग के साथ एक मानवात्मा को मूर्तिमान् होने का मौका मिलना ही चाहिए । परन्तु आज मानव ही मानव का मूल्य घटा रहा है। एक ओर युद्ध में असंख्य लोग मारे जाते हैं, दूसरी ओर गर्भपात को कानून की मान्यता दिलाने का प्रयत्न हो रहा है, यह कया दिखा रहा है? मानव का मूल्य कम हो रहा है । दुनिया में सब कुछ महँगा है, शाकभाजी भी महँगी है, सिर्फ मनुष्य सस्ता होता जा रहा है । मनुष्य का अवमूल्यन हो रहा है।

गांधी को रोकेंगे ?

आज परिवार-नियोजन के नाम से मानव को बंध्य करने की प्रक्रिया चल रही है । भावी के गर्भ में कैसी-कैसी ताकत पड़ी है, आप जानते नहीं। अगर यह प्रक्रिया जारी रही तो आप 'गांधी' को रोकेंगे । उसी गर्भ से गांधी हुए, ज्ञानदेव, नामदेव और शुकदेव हुए । कौन कह सकता है, ऐसा कोई महान् पुरुष पैदा होता भी, पर आपने बीच में ही रोका । गर्भ-हत्या भ्रूर्ण-हत्या है । भ्रूर्ण-हत्या से बढ़कर पाप नहीं । बच्चे की गर्भ में ही हत्या—यह महापातक है । क्योंकि भावी जो महान् आनेवाला था, उसको आपने रोका । ऐसे अनेक महापुरुषों को आप रोकेंगे और तगड़े ५०० पौंडवाले मजबूत को रखेंगे, जो कृत्रिम गर्भधारण से पैदा होंगे । यह आज के जीवन की शोकांतिका है ।

बिना संयोग का ट्यूब-बेबी

नर और मादा का जो संयोग होता है, उसमें प्रेम होता है । इसलिए उससे जो संतति उत्पन्न होती है, उसको बचपन से प्रेम मिलता है । क्योंकि संगम में प्रेम होता है । अब ट्यूब-बेबी के प्रयोग हो रहे हैं । आपको जानकारी नहीं है, ऐसे बच्चे जन्म लेंगे । अभी तक यह नहीं हुआ है कि बच्चा पैदा होने के लिए माँ की भी जरुरत नहीं है । बाप के शरीर से भी आवश्यक चीज ले लो और दोनों को कांच की शीशी में रख दिया । माँ-बाप के बिना, ट्यूब में ही बच्चा जन्मा, ऐसा अभी नहीं हुआ है । ऐसा जो भला मनुष्य पैदा होगा उसको 'मातृदेवी भव' नहीं, 'पितृदेवी भव' नहीं, वह स्वयं ही 'देव' है । 'स्टेट प्रोड्यूस्ड' (स्टेट का बनाया) है । यह विधिहीन संस्कृति है ।

आज बाहर से किसी उत्तम बैल का वीर्य लाकर गाय की योनि में इंजेक्ट करने का प्रयोग हो रहा है । मान लीजिये कि किसी बलवान् मनुष्य का वीर्य लाकर किसी स्त्री की योनि में इंजेक्ट किया जाय, तो जो संतान होगी वह मजबूत होगी । लेकिन माता-पिता के अन्योन्य संगम का यानी प्रेम का अनुभव तो वहाँ नहीं होगा, ऐसी हालत में जो संतान होगी, वह प्रेमशून्य होगी । उसमें न सत्य रहेगा, न प्रेम रहेगा, न रहेगी करुणा।

संयम ही एक उपाय

संतति-नियमन करना चाहते हैं, तो उसका उपाय क्या ? उपाय वही है, जो महावीर ने बताया था, रोमन कैथोलिक लोगों ने बताया था । महावीर के शिष्यों में जितने पुरुष थे, उनसे बहनें कम नहीं थीं । उन्होंने बहनों को ब्रह्मचर्य और संन्यास की दीक्षा दी । जो अधिकार स्त्रियों को नहीं थे, वे दोनों अधिकार उन्होंने दे दिये । और वे स्त्रियाँ निरंतर घूमती-फिरती रहीं । आज भी आप देखेंगे, भारत की शक्ति बनाने में जैन स्त्रियां बहुत काम करती हैं, जगह-जगह निरन्तर घूमती रहती हैं । दो-दो, तीन-तीन इकट्ठा घूमती हैं। धार्मिक वातावरण पैदा करना, लोगों को सब तरह से समझाना यह काम वे करती रहती हैं । आज जैनों की जो ताकत है—उन्होंने भारत में जो अद्भुत शक्ति प्रकट की है, उस शक्ति का जो उपकार है वह महान् है । इसलिए इस साल महावीर के निर्वाण को २५०० वर्ष पूरे हो रहे हैं । उनके निर्वाण का जो महोत्सव मनाया जा रहा है, उसमें भारत के कुल के कुल लोग शामिल हैं । उन्होने स्त्रियों की बड़ी भारी शक्ति खड़ी की ।

प्रयत्न ब्रह्मचर्य का हो । वह आदर्श होगा । उतना पूरा न हो सका, तो एक सीढ़ी नीचे—संयमयुक्त गृहस्थाश्रम | चार लड़के हों, तो दो गृहस्थ बनें और दो ब्रह्मचारी रहें । शादी १८ साल के पहले न हो । ४२ साल के बाद वानप्रस्थ बनें । इस तरह २४ साल का गृहस्थाश्रम होगा । हर घर में इस तरह हो, तो प्रत्येक कुल में पूर्णता आयेगी । यह मेरा 'परिवार-नियोजन' के लिए विधायक सुझाव है ।

रामजी को कितने बच्चे थे ?

बिहार की पदयात्रा में मैं तुलसी-रामायण सुना रहा था । वहाँ मैंने देखा, देहात के लोग रामायण के अलावा कुछ भी पढ़ते नहीं । दूसरा ग्रंथ बहनें जानती नहीं ! तो, इस जमाने में ज्यादा संतान पैदा करना अच्छा नहीं, यह मुझे बहनों को समझाना था । मैंने उनसे पूछा : "आपने रामायण पढ़ी है ?" तो, सामने जो स्त्रियाँ और पुरुष बैठे थे, वे बोले : "यही तो एकमात्र किताब है, जो हम पढ़ते हैं ।" मैंने कहा : "मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र थे, उनके दो ही लड़के थे, यह मालूम है कि नहीं ?" बोले : "हाँ ।" मैंने कहा : "मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र ने अगर दो ही लड़के पैदा किये,

तो आपको-हमको क्या अधिकार है कि हम दो से ज्यादा लड़के पैदा करें ? (सभा में बहनें हँस पड़ीं ।) आप विद्वान् हैं इसलिए आप हँस रही हैं ।" लेकिन यह सुनकर वे बहनें रोने लगीं, उनकी आँखों से अश्रु बहने लगे । क्योंकि उनकी तुलसी-रामायण पर निष्ठा थी | वे बोलीं : "हमें आज तक किसीने ऐसा समझाया नहीं ।" तो बाबा का बड़ा उपकार उन्होंने माना । तुलसीदास की रामायण के रामचन्द्र का चरित्र बाबा ने उनको समझाया । मुझे इसमें कोई शंका नहीं कि यह सुनकर जिनकी आँखों से आँसू निकले, उन्होंने दो से ज्यादा अपत्यों की कल्पना नहीं की होगी ।

प्राचीन काल में जमीन बहुत ज्यादा थी और लोग बहुत कम थे । इस वास्ते 'अष्टपुत्रा सौभाग्यवती भव'—आठ पुत्रोंवाली सौभाग्यवती बन, ऐसी भाषा बोलते थे । फिर भी ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा थी । प्राचीन काल में ब्रह्मचर्य को आध्यात्मिक मूल्य था, इसलिए जिनको कोई आध्यात्मिक खोजें करनी थीं, जिनको आत्मसाक्षात्कार करना था, वे ही लोग ब्रह्मचर्य-पालन करते थे । वेद में आता है—'**दशास्यां पुत्रान् आद्दे हि** ।' **पति एकादशं कुरू**। इसका अर्थ है कि दस पुत्रों को जन्म दें और बाद में ग्यारहवाँ पुत्र अपने पति को समझ । यानी दसपुत्र तक छूट थी । आज दस पुत्र कौन माँगेगा ? इसलिए मैं कहता हूँ कि आज के सामाजिक संदर्भ में ब्रह्मचर्य को सामाजिक मूल्य भी प्राप्त हो गया । आध्यात्मिक मूल्य तो उसका था ही । इस तरह उसे दुगुना मूल्य प्राप्त हो गया ।

माँ-बाप दो, तो बच्चे भी दो

जो जवान हैं उनको दो संतानों में तृप्ति माननी चाहिए | फिर उन संतानों को परमेश्वर की मूर्ति समझकर, उनका पालन, पोषण, शिक्षण की ओर ध्यान देना अपना कर्तव्य समझेंगे, तो वासना पर अंकुश आयेगा । वासना पर अंकुश लाना होगा । यह जरूरी नहीं कि पति-पत्नी इकट्ठा सोयें । बंबई जैसे शहरों में जगह कम रहती है, इसलिए नजदीक सोना पड़ता होगा । लेकिन एक ही बिछौने पर सोयें, यह जरूरी नहीं । बच्चों को साथ लेकर सोयें, तो संयम में मदद मिलेगी । बच्चों की उपस्थिति को भगवान् की उपस्थिति समझकर उन्हें दोनों के बीच सुलाना चाहिए । इससे प्रेम और संयम बढ़ेगा ।

किसीने कहा था कि बच्चे तो तीन चाहिए । परन्तु माता-पिता मिलकर दो हैं, तो दो ही बच्चे पैदा करें | तीन होंगे तो डेढ़ गुना संख्या बढ़ेगी । सादा गणित है । तो या तो आपको वासना करनी होगी कि तीन में से एक बच्चा मर जाय या दो बच्चों में संतोष मानें ।

कुछ लोगों को लगता है कि पत्नी की सम्मति न मिली, तो पति बाहर जायगा, दूसरी स्त्रियों के साथ संबंध रखेगा । डर महसूस होता है कि दो बच्चों की मर्यादा मानी जाय, पत्नी संयम की प्रेरणा दे, तो शायद पति व्यभिचार करेगा । ऐसा डर बहनों के मन में रहता है, इसलिए वे सम्मति दे देती हैं। वास्तव में बाहर की दुनिया हमारे लिए तारक होनी चाहिए, मारक नहीं । संयम की बुनियाद को छोड़ना नहीं चाहिए ।

वानप्रस्थाश्रम की पुनर्स्थापना हो

भारतीय संस्कृति में गृहस्थाश्रम का अनुभव ले लेने के बाद उसमें से मुक्त होने की बात आती है । जैसे गृहस्थाश्रम स्वीकार करने की एक विधि होती है, वैसे ही वानप्रस्थ की एक विधि होनी चाहिए । पचपन साल के बाद जो वानप्रस्थ होना चाहें, वे अपनी पत्नी के साथ अग्निनारायण के समक्ष प्रतिज्ञा करें कि “आज से हम भाई-बहन के समान रहेंगे, पति-पत्नी के समान नहीं ।” इस प्रकार वानप्रस्थाश्रम की स्थापना करनी चाहिए ।

आज मनुष्य एक बार गृहस्थाश्रम में दाखिल हुआ तो उसका मृत्युपर्यन्त गृहस्थाश्रम ही चलता है । यमराज आकर ही उसे उसमें से छुड़ायेगा | यह शास्त्र के विपरीत है । शास्त्र ने किसीको आमरण गृहस्थाश्रम की आज्ञा नहीं दी । वानप्रस्थाश्रम को अनिवार्य माना ।

तुलसी-रामायण में प्रसंग है । रामजी को वनवास की आज्ञा मिली । उसे शिरोधार्य करके वे माँ की आज्ञा लेने गये तो कौशल्या माँ कहती है कि “थोड़ा दुःख होता है, क्योंकि तू जवान है । अंत में हम राघवों को तो जंगल में जाना होता ही है । परन्तु तुम्हें जल्दी जाना पड़ रहा है ।”

हमारी आरण्यक संस्कृति

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भारतीय संस्कृति को न नागरी संस्कृति कहा, न ग्रामीण, बल्कि कहा कि हमारी तो आरण्यक संस्कृति है । हमारा उत्तम-से-उत्तम ग्रंथ, उपनिषद् अरण्य में लिखा गया—**बृहदारण्यक** । तो, हमारी संस्कृति आरण्यक है । मतलब, सबको अन्त में अरण्य मे जाना ही है । यह वनवास जनवास भी हो सकता है । लोगों की सेवा में, जन-सेवा में जीवन बीते, ऐसा होना चाहिए।

यह कहना तो ठीक ही है कि वानप्रस्थाश्रम के लिए दोनों की सम्मति हो । मेरा खयाल है कि अगर पति तैयार हो जाय, तो ना कहनेवाली पत्नी कम मिलेगी । वानप्रस्थ-वृत्ति में पत्नी को छोड़ने की बात नहीं है । वह भी साथ जा सकती है । छोड़ने की बात तो संन्यास में आती है । तो हमारी यह भव्य-दिव्य संस्कृति है । उसे पुनरुज्जीवित (रिवाइव) करना चाहिए । यह भारतवर्ष की आकांक्षा है । गृहस्थ तो दुनियाभर में होते हैं, लेकिन भारत में गृहस्थों की आकांक्षा है कि कभी-न-कभी पुत्र और पत्नी को छोड़कर संसार से अलग हों । वास्तव में, न पुत्र तकलीफ देता है, न पत्नी । तकलीफ देती है संगति की आसक्ति । तो वह तो पति और पत्नी दोनों को छोड़नी है ।

इस तरह संन्यस्ताश्रम यानी हिमालय की चोटी पर रहना है, वानप्रस्थाश्रम यानी पर्वत पर चढ़ने का आरम्भ करना है, और गृहस्थाश्रम यानी पर्वत के मैदानों में खेती करना है ।

चार आश्रमों की योजना

यह सब सोचते हुए ध्यान में आयेगा कि हमारे पूर्वजों ने चार आश्रमों की जो योजना बनायी थी, वह ठीक थी—ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम । अगर ऐसी मर्यादा हम बनाते हैं, तो उससे हमें लाभ होगा। गृहस्थाश्रम का पैमाना २६ साल की उम्र से ४५ तक २० साल का हो, तो संतान का भी थोड़ा-बहुत नियमन होना चाहिए । और वह होगा, तो लाभ ही लाभ मिलेगा और आध्यात्मिक शक्तियाँ भी मिलेंगी ।

हमारे सामने एक आदर्श होना चाहिए कि इतने वर्षों के बाद हम गृहस्थाश्रम से निवृत होंगे। जैसे विधिपूर्वक गृहस्थाश्रम स्वीकार करते हैं, वैसे ही विधिपूर्वक गृहस्थाश्रम का विसर्जन होना चाहिए । इससे विषय-वासना से मुक्त होते हैं।

ययाति का अनुभव

विषय-वासना से मुक्ति सहज ही मिलेगी, ऐसे भ्रम में जो रहता है, वह स्वयं अपनी कब्र खोदता है, ऐसा महाराज ययाति ने कहा है । वे बूढ़े हो गये थे, लेकिन वासना-तृप्ति नहीं हुई थी । इसलिए उन्होंने अपने बेटों से जवानी माँगी। बच्चों ने दे दी । जवान होकर दुबारा भोग भोगा, लेकिन फिर भी उनकी तृप्ति नहीं हुई । फिर महाराज ययाति ने अपना अनुभव एक श्लोक में बता दिया :

'न जातु काम: कामानाम् उपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते । ।

- काम के उपभोग से काम-शक्ति कम नहीं होती । घी से जैसे अग्नि बढ़ती है, वैसे वह बढ़ती चली जाती है । चाहे शक्ति घट जाय, इच्छा बढ़ती ही रहती है । इसलिए उसको तोड़ना ही होता है । वैवस्वत स्वायंभुव मनु की कहानी तुलसीदासजी ने रामायण में दी है कि '**होइ न विषय विराग, भवन बसत भा चौथपन**'—बुढ़ापा आया, लेकिन विषय-वासना नहीं मिटी । मनु को बड़ा दु:ख हुआ कि '**जनम गयउ हरि भगति बिनु** ।' तब उसने क्या किया ? '**बरबस राज सुतहि तब दीन्हा** ।'—राज्य अपने पुत्र को सौंप दिया और '**नारि समेत गवन बन कीन्हा** ।'—पत्नी के साथ वन में प्रवेश किया । ये तुलसी रामायण के शब्द हैं । इस तरह अपने ऊपर, अपनी इन्द्रियों पर, मन पर जबरदस्ती करने का अधिकार पुरुष को होता है । उसका उपयोग किया और वन में चले गये । सारांश यह कि विषय-वासना ऐसे ही टूटेगी और उसमें से हम छूटेंगे, ऐसा मानना बिलकुल गलत है ।

वानप्रस्थाश्रम की पुनर्स्थापना हो

विषय-वासना की एक मर्यादा होनी चाहिए । जब लोकमत होता है, तभी यह संभव होता है । जिन्होंने वानप्रस्थाश्रम की कल्पना को जन्म दिया, उन्होंने इस विषय में लोकमत बनाया था। लेकिन वह लोकमत आज टूट गया, वानप्रस्थाश्रम खतम हो गया । गृहस्थाश्रम की प्रतिष्ठा गयी । ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा गयी ऐसी हालत में जो समाज रहता है, वह कैसे आगे बढ़ेगा ? यह शोचनीय बात है। इसलिए वानप्रस्थ की बात करनी चाहिए ।

हिन्दुत्व का दावा छोड़ दूँगा

जिस दिन चार आश्रम की स्थापना की आशा मैं छोड़ूँगा, उस दिन हिन्दू होने का दावा भी छोड़ दूँगा । और कहना चाहिए कि यह सिर्फ हिन्दुओं की वस्तु नहीं है । मुहम्मद ने भी लिखा है कि ४० साल के बाद मनुष्य का ध्यान भगवान् की ओर जाना चाहिए और जाता है । उसने ४० की मर्यादा मानी, जिसमें मनुष्य को विषय-वासना से अलग होना चाहिए ।

स्त्रियाँ जरा सोचें

आजकल अक्सर कहा जाता है कि समाज में संतान की आवश्यकता कम है, इसलिए संतति-नियमन करो । यह बात सही है । बहनों को इस बारे में सोचना चाहिए । वे एक बहुत बड़ा काम करती थीं—संतति-निर्मिति का, जिसमें पुरुषों को जो क्लेश होता है, उससे सौगुना क्लेश स्त्रियों को होता है । इसमें कुछ भी आनन्द नहीं, ऐसी बात नहीं है, फिर भी काफी क्लेश भोगना पड़ता है । गर्भाधारण से लेकर समाप्ति तक की चिंता बहनें ही करती हैं ।

अब बहनों को सोचना है कि इतना कठिन कार्य का जिम्मा वे उठाती हैं, फिर भी समाज को अगर संतान की जरुरत नहीं है, तो वे ऐसा कार्य क्यों उठायें? वे अपने त्याग को दूसरी दिशा में ले जायँ । बहनों का जीवन त्यागमय होता है । भले ही वे संसारग्रस्त हों, लेकिंग गांधीजी ने तो बहनों के लिए 'त्यागमूर्ति' शब्द का इस्तेमाल किया था, जो मुझे जँज गया है । समाज को संतान नहीं चाहिए, तो स्त्रियाँ त्यागमय, संयमी जीवन बितायेंगी । भोग में क्यों पड़ेंगी ? भोग में पड़कर दूसरे तरीके से संतान-निरोध करने की बात बिलकुल बेमतलब की है ।

समाज को जब संतान की जरूरत नहीं है, तब बहनों को सूझना चाहिए कि वे सीधा ब्रह्म-विद्या के आधार पर समाज-सेवा करेंगी, ताकि उनके त्याग का बेहतर फल मिले। जो बहनें गृहस्थाश्रमी बन चुकी हैं, उन्हें संयम की प्रेरणा हो । ऐसी दोहरी प्रेरणा होगी, तब स्त्री-शक्ति प्रकट होगी ।

गांधीजी की मिसाल

दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी के मन में ब्रह्मचर्य की कल्पना कैसे आयी, इसकी तरफ ध्यान देना होगा । सन् १८९७ में उनका ब्रह्मचर्य की ओर जोरदार झुकाव था । लेकिन उन्होंने सन् १९०७ में जाहिरा तौर पर ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ली । जुलू-युद्ध के समय उन्होंने लड़ाई में जख्मी सिपाहियों की सेवा का काम उठाया था । उस समय उन्होंने सोचा कि इधर मैं अपना परिवार बढ़ाता रहूँ और उधर सेवा का जिम्मा लूँ ये दो बातें एक साथ नहीं चल सकतीं । इसलिए ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा लेनी होगी । इस वृत्ति का परिपोष बहनों में होना चाहिए ।

बहनें लाचार न बनें

ऐसी कम ही बहनें हो सकती हैं, जो भोग-विलास-प्रिय होती हैं । बहनों के जीवन में त्याग ही त्याग है । वे बहनें गृहस्थ बनती हैं, तो भी संयम की दृष्टि प्रधान रखकर शरीर का दुरुपयोग नहीं करने देना चाहिए । इन दिनों संतति-नियमन के कृत्रिम उपायों की बात बहनों पर दया करने की दृष्टि से की जाती है । इसके माने हैं कि उन पर आक्रमण तो जारी ही रहता है । इस तरह के आक्रमण से बहनें लाचारी के वश हों, यह ठीक नहीं है । गृहस्थ-धर्म की भी एक प्रतिष्ठा होती है। उस प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए बहनों को आगे आना चाहिए । अपने पर जो नाहक का आक्रमण होता हो तो उसे रोकने की ताकत बहनों में आनी चाहिए । यह ख्याल गलत है कि पत्नी को हमेशा पति के वश होना ही चाहिए । यह तो शास्त्रीय विषय है । इस विषय का लोगों को ठीक ढंग से ज्ञान देना चाहिए । जिस क्रिया का पौरुष के साथ संबंध है, उसका निष्फल प्रयोग नहीं होना चाहिए ।

मैं एक एग्जिमेटिक प्रिन्सिपुल (स्वतःसिद्ध सिद्धांत) बताता हूँ कि "पृथ्वी में से जो पैदा होता है, उसका भरण-पोषण करने के लिए पृथ्वी समर्थ होनी ही चाहिए ।" अमेरिकावालों ने इसका समर्थन किया और वहाँ की कांग्रेस में मेरा उद्धरण भी दिया गया । जमीन में से हम जो कुछ प्राप्त करते हैं उसको यदि उसे वापस कर दें तो आज जो भय लगता हैं, वह नहीं रहेगा। मल-मूत्र, हड्डियाँ आदि में बहुत शक्ति है । हड्डियाँ मिट्टी में से पैदा हुई हैं, उन्हें गंगा में हम नाहक डालते हैं । जानवर भी मिट्टी में से ही पैदा हुए । उनकी हड्डियाँ और खाद भी जमीन को वापस मिलनी चाहिए । ये सारी चीजें यदि पृथ्वी को वापस मिल जायँगी, तो फिर पृथ्वी पर पैदा हुए सभी प्राणियों को पोषण देने में वह पूरी समर्थ है । मेरे लिए तो यह बात एक्जिमेटिक है यानी स्वयंसिद्ध है ।

ईश्वर बड़ा कृपावान् है । उसने हमें एक हाथ के साथ दो मुँह की सजा नहीं दी, एक मुख के साथ दो-दो हाथ देने की उदारता दिखायी है । इसलिए जो उत्पादन के लिए दोनों हाथों का उपयोग करता है, उसका भार होने का कोई कारण नहीं है । जो दोनों हाथों का उपयोग मुँह से अन्न ठूँसने के लिए ही करेगा, वह पापात्मा है, वह पाप ही खाता है, वह चोर है, उसका भूमि को भार होता है ।

यह सारा प्रयत्न करुणावश हो रहा है, यह मैं जानता हूँ । परन्तु भगवद्गीता के आरम्भ में ही करुणा का निषेध किया है, '**कृपयाविष्टम**'—मैंने उसका अनुवाद किया—करुणाग्रस्त । इस करुणा से स्त्री-पुरुष में वैज्ञानिक दृष्टि आयेगी नहीं । ये लोग ऐसा मानकर चलते हैं कि स्त्री-पुरुष का परस्पर सम्बन्ध केवल मैत्री का रहे और संतान-प्राप्ति के हेतु से ही दोनों का संगम हो, ऐसा अभिगम मानवों के लिए शक्य ही नहीं है । परन्तु ऐसा गृहीत मानने में मुझे कोई कारण नहीं दीखता । मैं ऐसी हार मान लेने के लिए तैयार नहीं हूँ । यह बात समझना शक्य है, समझाना भी शक्य है, क्योंकि मनुष्य मननशील प्राणी है ।

यह इविल (अनिष्ट) विज्ञान के साथ, औद्योगिक संस्कृति के साथ आया है । बाल-मरण की दर कम हो गयी है । आज जन-संख्या बढ़ रही है, इसका मानी यह नहीं है कि लोगों में काम-

वासना बढ़ी है, बल्कि यह है कि मरण-प्रभाव कम हुआ है । विज्ञान तो बढ़ता ही रहेगा । अल्पज्ञान खतरनाक चीज है, वैसे अल्पविज्ञान भी खतरनाक चीज है । विज्ञान खूब बढ़ेगा और वैज्ञानिक दृष्टि पनपेगी, तब यह सारा पाप मिटेगा, ऐसी मुझे आशा है ।

•

७. जागो हे शंकराचार्या

अपने देश में स्त्रियों का गौरव कितना गाया गया है, यह तो जाहिर है। हमारी संस्कृति में महिलाओं के लिए अत्यन्त आदर का स्थान है । महिला शब्द स्वयं महानतासूचक है, परन्तु बीच में एक ऐसा जमाना आ गया, जब स्त्री को अबला कहा गया । महिला गयी और अबला आयी । कभी-कभी तो मुझे कुछ ऐसा हो जाता है कि मैं स्त्री होता तो अच्छा था । केवल भारत में नहीं, सारे विश्व में स्त्रियों की जो हालत है, वह असह्य है । जब तक उसको आध्यात्मिक पुरुषार्थ का स्वातन्त्र्य नहीं मिलेगा, तब तक उसकी यही हालत रहेगी ।

वास्तव में आज स्त्री का स्थान क्या है ?

कुल दुनिया में बहनों के बारे में भाइयों ने कुछ पाबन्दियाँ रखी हैं । इंग्लैण्ड एक प्रगतिशील देश माना जाता है । वहाँ भी ५२ साल पहले बहनों को वोट के अधिकार के लिए भाइयों के साथ लड़ना पड़ा । स्विट्जरलैंड भी बहुत प्रगतिशील देश है । वहाँ भी एक-दो साल पहले ही बहनों को वोट का अधिकार मिला । पाकिस्तान में बहनों को वोट का अधिकार तो है, लेकिन जब एक बार चुनाव के लिए एक बहन खड़ी हुई तब कहा गया कि इस्लाम में वैसा अधिकार नहीं । दुनियाभर की कमोबेश यही हालत है ।

ख्रिस्तियों में ब्रह्मचारिणी ज्यादा

सामान्यत: सब धर्मों में पुरुषों की अपेक्षा बहनें कम ब्रह्मचारी रहती हैं । ख्रिस्तियों में, रोमन कैथोलिकों में काफी संख्या में बहनें ब्रह्मचारिणी रहती हैं । सिलोन में आठ लाख रोमन कैथोलिक हैं और २५०० बहनें ब्रह्मचारिणी हैं, जो 'होली सिस्टर्स' (भिक्षुणी) कहलाती हैं । इसका मतलब आठ लाख में से आधी यानी चार लाख बहनें मानें तो १६० बहनों के पीछे वहाँ एक ब्रह्मचारिणी है ।

हिन्दू-धर्म की आज की हालत

अब हमारी क्या हालत है ? इस पवनार गाँव की जनसंख्या है, ५००० । मान लें कि उनमें आधी यानी २५०० बहनें होंगी । तो १६० के पीछे १ बहन के हिसाब से पवनार में २५०० के पीछे १६ बहनें ब्रह्मचारिणी होनी चाहिए—जो प्रार्थना, ध्यान, अध्ययन करती हैं, दुखितों की, बीमारों की, आदि भिन्न-भिन्न प्रकार की सेवा करती हैं, ऐसी बहनें । इसके लिए ब्रह्मचारी संन्यासी बहनें चाहिए। लेकिन आज वहाँ एक भी ऐसी बहन नहीं । यह हो गयी बहनों की हालत। भाई भी तो कम-से-कम १६ चाहिए, २५०० लोगों के पीछे । आज एक भी ऐसा भाई वहाँ नहीं । यह है हिन्दू-धर्म की आज की हालत ।

ब्रह्मचर्य-संन्यास का अधिकार वर्ज्य

जैनों में और बौद्धों में ब्रह्मचारिणी बहनें होती हैं । मुसलमानों में बहनें ब्रह्मचारी नहीं होतीं । उनमें भाई भी अक्सर शादीशुदा होते हैं । ब्रह्मचारी अपवादस्वरूप ही मानते हैं । ब्रह्मचारी महान् हुआ तो भी उसको एकांगी मानते हैं । हिन्दू-धर्म में भी ब्रह्मचारी बहनें ज्यादा नहीं । लल्ला, मोरा, मुक्ता, अक्का, आंडाल ऐसी कुछ हो गयीं । अपने-अपने प्रांत में वे बहुत बड़ी भक्त हो गयीं। उनका इतना गहरा असर पड़ा है कि वह कायम ही रहनेवाला है । ऐसी कुछ ब्रह्मचारी बहनें हिन्दू-धर्म में हुईं, लेकिन अक्सर नहीं हुईं । तो बहनों को न ब्रह्मचर्य का अधिकार है, न संन्यास का है, न राज्य चलाने का है । फिर, उनके लिए कौन-सा अधिकार बचा ? परम कृपालु होकर उनके लिए सेवा का अधिकार रख दिया है ।

लक्षाधीश बाप के भिक्षाधीश बेटे

एक हिन्दी कवि ने कविता लिखी है—हमारे बाप के बाप के बाप के बाप के बाप कैसे थे? लक्षाधीश ! और हम उनके बेटे के बेटे के बेटे के बेटे के बेटे ···कैसे हैं ? भिक्षाधीश ! प्राचीन काल में हमारे यहाँ ब्रह्मविद्या थी । लेकिन आज क्या है ? ज्ञानदेव-तुकाराम महाराष्ट्र में हो गये । उनका उपयोग ? "बंगाल में चैतन्य महाप्रभु हो गये, तो क्या हुआ, हमारे यहाँ ज्ञानदेव-तुकाराम हो गये" यह कहने के लिए? चैतन्य, रामकृष्ण इत्यादि को हटाने के लिए उनका उपयोग है । ज्ञानदेव-

तुकाराम हमारे अभिमान के विषय हैं । उनके ग्रंथ पढ़ें, उनका अनुसरण करें, जीवन का स्तर बढ़ायें, इसके लिए नहीं । यह हमारी दशा है । अगर यह हो जाय कि पवनार जैसे गाँव में १६ बहनें और १६ भाई ब्रह्मचारी रहते हैं और समाज की सेवा करते हैं, तो बाबा के ग्रामदान-आन्दोलन की जरूरत क्या रहेगी ? ५००० में ३२ सेवक यानी ६ प्रति हजार हुआ । भारत की जनसंख्या ५५ (अब ९५) करोड़ है । उसका ६ प्रति हजार यानी ३३ लाख (अब ५७ लाख) ब्रह्मचारी भारत में चाहिए ।

अर्वाचीन हिन्दू-धर्म में स्त्रियों के लिए ब्रह्मचर्य माना नहीं गया । कोई एकाध निकली मीरा, मुक्ता, जो 'बंड' करके ब्रह्मचारी रही । लेकिन धर्म ने स्त्रियों के लिए ब्रह्मचर्य माना नहीं । (प्राचीन काल में तो वेद की ऋषि थी स्त्री । लेकिन आज माना गया है कि स्त्रियों को गुरुगृह जाने की जरूरत नहीं, ससुराल ही उनका गुरुगृह है । पति के घर जाना यानी गुरुगृह जाना)।

पुरुषोक्त शास्त्र में स्त्री की गौड़ भूमिका

इसका एक सामाजिक कारण है । अक्सर देखा गया है कि हिन्दुस्तान में १००० पुरुषों के पीछे कोई ९२० या ९२५ स्त्रियाँ हैं । यह आँकड़ा पिछली जन-संख्या का है । उसका मतलब क्या हुआ ? एक पुरुष एक स्त्री से शादी करेगा तो भी ७५ पुरुषों को अविवाहित रहना पड़ेगा । इस वास्ते नियम बना दिया कि स्त्रियों को शादी करना चाहिए । मान लीजिये, हजार में से ५०० स्त्रियाँ भी ब्रह्मचारी रहने लगीं, तो और भी कठिन परिस्थिति खड़ी होगी । अतः समाज-शास्त्र की दृष्टि से स्त्री का गुरु माना गया पतिदेव । अर्थात् यह शास्त्र पुरुषों ने ही बनाया ।

आध्यात्मिक अनधिकार मिटाया जाय

गृह-संगोपन का कार्य स्त्रियों के पास ही रहनेवाला है, यह तो दैव ही बोल चुका है । फिर वह प्रगतिशील अमेरिका हो या पिछड़ा हुआ भारत । लेकिन अब तक इस बात का ठीक-ठीक विचार नहीं हो पाया है, कि मुख्य प्रश्न कहाँ अटका है । हिन्दू-धर्म में स्त्रियों को कुछ अपात्रता है । उन्हें जायदाद में हक मिलता नहीं और वह उन्हें पुरुषों के बराबर मिलना चाहिए, ऐसा कहा जाता

है । इस विचार के प्रति मेरी सहानुभूति है । पहले चुनाव के समय सनातनी लोगों ने पंडित नेहरू को हिन्दू-कोड बिल को लेकर उत्तेजित कर दिया था। तब उन्होंने कहा था कि इस बारे में आप लोग विनोबा से ही पूछे, क्योंकि वे शास्त्रों के उत्तम जानकार हैं । विनोबा तो इसके अनुकूल हैं। किन्तु वस्तुत: जिस समान अधिकार की आवश्यकता है, वह तो कोई माँगता ही नहीं ।

स्त्रियों को हिन्दू-धर्म ने संन्यास और ब्रह्मचर्य का अधिकार नहीं दिया है । यह जो आध्यात्मिक अपात्रता है, उससे स्त्रियों में स्थायी हीनभावना आ गयी है । हिन्दू-समाज में उसीको मिटाने के लिए गृहस्थाश्रम को महत्त्व देकर '**सहस्त्रं तु पितृन् माता गौरवेणातिरिच्यते**' अर्थात् हजार पिता की अपेक्षा एक माता श्रेष्ठ है—ऐसे उद्‌गार प्रकट किये गये हैं । जिस मनुस्मृति का यह वचन है, उसीमें दूसरा श्लोक इस प्रकार है :

'पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने ।
पुत्रो रक्षति वार्धक्ये, न स्त्री स्वातन्त्र्य मर्हति ॥'

- कौमार्यावस्था में स्त्री का रक्षण पिता पर है, यौवन में पति पर और वृद्धावस्था में पुत्र पर है, स्त्री को स्वातंत्र्य का अधिकार नहीं ।

ऐतिहासिक दृष्टि से यह श्लोक क्षेपक या बाद का भी हो सकता है। कदाचित् यह सब एक लेखक का न भी हो, तो भी यह सब एक ही पुस्तक में है और यह पुस्तक हिन्दू-धर्म ने अपने सिर चढ़ायी है ।

शंकराचार्य का अन्यायी अर्थघटन

लड़की का बाप की जायदाद में हक नहीं रहना चाहिए, ऐसा कहनेवाले दलील देते हैं कि लड़की को दोनों ओर का हक क्यों मिलना चाहिए ? विवाह होने पर उसे पति की ओर से कुछ-न-कुछ मिलेगा ही । अर्थात् ऐसी 'पोजीशन' कोई लेने को ही तैयार नहीं कि एकाध लड़की बिना ब्याही रह सकेगी । उनको लगता है कि लड़की को तो यहाँ से वहाँ जाना ही है । इसका अर्थ यह है कि स्त्रियों को केवल गृहस्थाश्रम का ही अधिकार था, अन्य आश्रमों का नहीं । प्राचीन ब्राह्मण-

ग्रन्थ में कहा गया है कि '**दुहिता पंडिता जायेत**' अर्थात् जो यह चाहते हों कि उनकी कन्या पण्डिता बने, उन्हें अमुक-अमुक करना चाहिए। अब इसका अर्थ शंकराचार्य ने शांकरभाष्य में क्या किया है, उसे देखिये । जिन शंकराचार्य के प्रति आदर से मेरा आपादमस्तक भरा है, उन्होंने उसका अर्थ यह किया है कि '**पंडिता गृहकार्यकुशला इत्यर्थ**:'—पण्डिता यानी गृहकार्य में कुशल। वे इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि लड़की स्वतंत्र से पंडिता हो सकती है । लड़की के संन्यासिनी होने की कल्पना भी वे नहीं कर सकते थे । इसलिए उन्होंने वैसा अर्थ किया । स्त्रियाँ गृहकार्यकुशला हों, इसमें मेरा कोई विरोध नहीं है । वे वैसा नहीं होंगी, तो देश को कोई लाभ नहीं होगा। किन्तु गृहकार्य-कुशला में ही उनके पांडित्य की परिसमाप्ति हो, यह ठीक नहीं है । यह जो आध्यात्मिक अनधिकार एक समय स्त्रियों और शूद्रों पर लादा गया था, वह दूर होना चाहिए ।

अनधिकार सहन न किये जायँ

मेरी माँ बचपन में एक मजेदार कहानी सुनाती थी कि "विन्या, बच्चे होना कितना कठिन है यह तू नहीं जान सकता । पहले यह काम शंकर के पास था । पर वे ऊब गये और पार्वती से कहा कि वह चार दिन के लिए यह कार्य सँभाले । तब से यह कार्य उसके सिपुर्द हुआ और उसीके गले पड़ गया है । अब शंकर यह काम सँभालते ही न थे ।" इस तरह वह कार्य स्त्रियों के गले पड़ने के कारण उन्हें गृह-कार्य में प्रवीण होना ही चाहिए, इसमें शक नहीं । परन्तु, उन पर जो आध्यात्मिक अनधिकार लाद दिया गया है, वह हटना ही चाहिए । यह विधानसभा के कानून से नहीं होगा, इसीलिए मैं हमेशा कहता हूँ कि जब तक एकाध शंकराचार्य जैसी तेजस्वी, ज्ञानी, वैराग्यसम्पन्न स्त्री पैदा नहीं होंगी, तब तक स्त्री-जाति का उद्धार नहीं होगा ।

स्त्रियों की अक्षमताएँ

इस तरह हिन्दुस्तान में मध्य युग में और अर्वाचीन काल में हिन्दू-धर्म ने स्त्रियों के लिए बहुत-सी अक्षमताएँ लादी हैं । अब ये सारी अक्षमताएँ स्त्रियों को चुभती नहीं, सहज ही मानी गयी हैं । लेकिन वे चुभने लायक हैं, चुभनी चाहिए । स्त्री को वैराग्य का अधिकार नहीं, वेदपठन का

अधिकार नहीं । हमारी लड़की निर्मला[१] काशी के संस्कृत विद्यालय में गयी और कहा कि वेद (ऋग्वेद) की ध्वनि जरा सीखना चाहती हूँ । तो वहाँ के लोगों ने इनकार कर दिया । यह हाल की सन् १९६० की आखिरी खबर देता हूँ । उन्होंने इस खयाल से इनकार कर दिया कि बहनों को वेद के उच्चारण का अधिकार नहीं है । अब काशी तो है वह, इसलिए उसमें कोई आश्चर्य नहीं है । लेकिन वेद के उत्तमोत्तम ग्रंथ अच्छी तरह से जर्मन भाषा में छपे हुए मेरे पास पड़े हैं और पढ़ने के लिए मैंने जर्मन भाषा सीखी है । रशियन, फ्रेंच और इंग्लिश भाषा में वेद छपे हैं । हरएक उच्चारण का भी विश्लेषण हुआ है और कुल के कुल वेद अच्छी नागरी में, जर्मनी में, प्रथम छप चुके हैं, बाद में अपने देश में छपे । इतना सब हो चुका है । फिर भी आज भारतीय महिला को वेद-ध्वनि सीखने के लिए इनकार किया जाता है । जिन्होंने इनकार किया उन्हें दोष नहीं दे रहा हूँ, क्योंकि वह परम्परा चली आयी है । यह तो एक अक्षमता का नमूना है।

मोक्ष का अधिकार वर्ज्य

फिर, ब्रह्मचर्य और संन्यास का अधिकार भी नहीं है । कुछ लोगों ने तो यहाँ तक कह दिया है कि मोक्ष तो परम पुरुषार्थ है, स्त्रियों जय वह मोक्ष, जब वह दूसरा जन्म पुरुष का लेगी, तभी मिलेगा । इस जन्म में वे भक्ति कर सकती हैं, पतिदेवता की भक्ति कर सकती हैं, प्रभु-उपासना कर सकती हैं । उसके आधार पर उनकी बहुत चित्त-शुद्धि हो सकती है और चित्त-शुद्धि के द्वारा उनको अगला जन्म पुरुष का प्राप्त हो सकता है और पुरुष के जन्म में उनको मुक्ति मिल सकती है । ऐसा भी माननेवाले लोग हिन्दुस्तान के विचारकों में हैं । सब नहीं मानते, कृपा है, लेकिन कुछ माननेवाले हैं । ऐसे भी महान् पुरुष इस देश में हुए हैं, जिन्होंने संन्यास लेने पर स्त्री का मुख-दर्शन पसन्द नहीं किया । तो, यहाँ तक नौबत थी । ये अक्षमताएँ प्राचीन ग्रन्थों में देखने को नहीं मिलती, बीच के ग्रंथों में मिलती हैं । यहाँ तक कि दूसरे धर्मग्रंथों में भी मिलती हैं । 'न्यू टेस्टामेन्ट' के एक विभाग में पढ़ने में आया कि पुरुष अपने सिर पर बाल न रखे तो कोई बात नहीं, क्योंकि पुरुष के सिर पर तो भगवान् सीधा है, परन्तु स्त्री को बाल जरूर रखने चाहिए, क्योंकि स्त्री के सिर पर पुरुष है ।

स्त्रियों की तरह-तरह की निन्दा भी अनेक पुरुषों ने की है । महापुरुषों ने भी की है । यहाँ तक कि गौतम बुद्ध के पास उनका शिष्य एक बहन को संन्यास की दीक्षा देने ले आया तो ग्रंथों में लिखा है कि गौतम बुद्ध ने कहा कि "हे आनन्द ! तेरे कहने से मैं यह खतरा उठा रहा हूँ, लेकिन मुझे लगता है कि धर्म की बुनियाद हम कमजोर कर रहे हैं ।" मालूम नहीं, यह सारा रेकार्ड कहाँ तक हम सही मानें । सार यह है कि कई कारणों से दो-तीन हजार साल का जो विस्तार देखता हूँ, उसमें स्त्रियों के लिए अपने देश में बहुत ही ज्यादा और दूसरे देशों में कुछ हद तक अक्षमताएँ रहीं। उन सब अक्षमताओं को हटानेवाली स्त्रियाँ निकलेंगी, तब यह देश आगे बढ़ेगा । ये धार्मिक अक्षमताएँ बिलकुल गलत हैं, ऐसा अपने आचरण से और विचारों से स्त्रियाँ सिद्ध करेंगी और सारे भारत पर उसका असर डालेंगी, तब स्त्रियाँ ऊपर चढ़ेंगी और हिन्दुस्तान की प्रगति होगी । ये सारी अक्षमताएँ कानून से निकलनेवाली नहीं हैं, वह तो पराक्रम से ही स्वयं स्त्रियों को निकालनी पड़ेंगी।

---

१. निर्मला देशपांडे

मुक्ति अनुभव की चीज

जैसे रोमन कैथोलिकों में स्त्रियों को संन्यास का अधिकार दिया गया है, वैसे जैनों में भी दिया गया है, लेकिन उनको मुक्ति का अधिकार नहीं दिया । मुझे यह मनोरंजक मालूम हुआ । अगर कोई कहेगा कि स्त्रियों को वैकुण्ठ में प्रवेश नहीं है या इन्द्र की सभा में प्रवेश नहीं है, तो मैं समझ सकता हूँ । इन्द्र का नियम होगा वैसा, तो वहाँ प्रवेश नहीं दिया जा संकता है । लेकिन मुक्ति तो अनुभव की वस्तु है । मरने के बाद प्राप्ति की वस्तु नहीं । अगर मुझे स्त्री होने के नाते जैन-दर्शन गाढ़-निद्रा का अधिकार नहीं देगा, तो वह बात निरर्थक होगी । गाढ़ निद्रा आना-न-आना मेरे अपने हाथ की बात है । वैसे मुक्ति भी अपने अनुभव की बात है । मान लीजिये, मैं स्त्री हूँ । मेरे मन में राग, द्वेष, मोह किसी प्रकार का अनुभव नहीं आता, चौबीसों घंटे प्रसन्नता का अनुभव रहता है, रात-दिन प्रसन्न रहता हूँ, हँसता रहता हूँ, विनोद करता रहता हूँ । ऐसी स्थिति

है, तो मुक्ति मुझे प्राप्त हो चुकी । मुझे अनुभव आयेगा या न आयेगा। वह मुझे देने या न देने का आपको अधिकार क्या ? कोई कहेगा कि आपको आरोग्य का अधिकार नहीं । वह देने का दूसरे को क्या अधिकार ? वह मेरे अपने हाथ की बात है । तो जैसे आरोग्य या गाढ़ निद्रा मेरे अपने अनुभव की बात है, लोगों के देने का सवाल नहीं, किसीको लेने या देने का अधिकार नहीं, वैसे ही मुक्ति अपने हाथ में है । वह मरने के बाद प्राप्त करने की वस्तु नहीं है, जीवन में अनुभव करने की बात है ।

पुरुष इंजन : स्त्री डिब्बा

आज प्राचीन स्त्रियाँ स्वप्नवत् हो गयी हैं । आज किसी स्त्री का प्रभाव समाज पर पड़ता हो, ऐसा नहीं दीखता । आज उनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व ही नहीं रह गया है । आज वे स्वतन्त्र रूप से जीती ही नही हैं । इसीलिए किसीकी पत्नी, किसीकी बहन के नाते ही उनका परिचय दिया जाता है । आज स्त्रियों को कुछ सुविधाएँ दी जाती हैं । स्कूल में वे अध्यापिका बनती हैं, दफ्तरों में काम करती हैं, कानून से पुत्र की बराबरी का हक उन्हें मिलता है । स्कूल में भी वे पढ़ सकती हैं । पुरुषों के साथ बराबरी से काम कर सकती हैं। आज तो वे सिगरेट भी पी सकती हैं । वे हाथ में बन्दूक भी पकड़ सकती हैं । इतने सब अधिकार उन्हें भले ही मिल गये हों, परन्तु इनसे उनका उद्धार नहीं होनेवाला है। उनका उद्धार तभी होगा, जब वे आध्यात्मिक अधिकार प्राप्त कर सकें । यह अधिकार हिन्दू-धर्म में ही नहीं, दूसरे धर्मों में भी नहीं है। बाइबिल में भी आता है कि स्त्रियों के माथे पर पुरुष और पुरुषों के माथे पर परमेश्वर है। याने स्त्री का सीधा सम्बन्ध परमेश्वर के साथ नहीं है। परम्परा से ही, बीच में एक एजेन्सी के द्वारा ही स्त्री परमेश्वर के निकट पहुँच सकती है । यह बात हिन्दू-धर्म में भी है । पत्नी पति के हाथ से हाथ मिलाती है, तो उसके हाथ से भी धार्मिक कार्य हो गया, ऐसा माना जाता है । याने इञ्जन के साथ डिब्बे जोड़ दिया । हक इञ्जन जहाँ ले जायगा, वहाँ डिब्बा जायगा । डिब्बे में चाहे अमरूद, केले, अंगूर भरे हों और इञ्जन में चाहे कोयला हो, तो भी इञ्जन तो इञ्जन ही है । वह डिब्बे को अपनी गति के साथ खींचता है और इञ्जन की गति के आधार पर ही डिब्बे की गति निश्चित होती है । इसी तरह कोई स्त्री गांधी के

साथ, कोई कृष्ण के साथ जोड़ी जाती है और उसे सहगति मिलती है । सवतन्त्र गति उसे नहीं है। उसकी गति दुसरे पर ही अवलम्बित है ।

अधिकार प्राप्त करना होता है

अभी तो स्त्रियों को मतदान का अधिकार मिला है, पर उसमें भी स्त्रियाँ अपने पति से पूछकर वोट देती हैं । यह अधिकार उन्होंने खुद नहीं लिया है, उन्हें मिला है । दूसरे देशों में स्त्रियों को ऐसा अधिकार नहीं है । इसलिए यह दिया हुआ नहीं, मिला हुआ अधिकार है । लेकिन अधिकार तो प्राप्त करना होता है, इसलिए स्त्रियों को भले ही मतदान का अधिकार मिला हो, पर उससे अधिकार नहीं मिलता । यह मेरा अधिकार है और इससे मैं कुछ कर सकती हूँ, ऐसा भास भी उन्हें नहीं होता । स्त्रियाँ जब निष्ठावान् बनेंगी और आध्यात्मिकता से सम्पन्न होंगी, शास्त्र में परिवर्तन करनेवाली होंगी, तभी उनका उद्धार होगा। उस शास्त्र में स्त्री-पुरुष का कोई भेद न होगा । वे जब ऐसा नया मानवता का शास्त्र बनायेंगी, तब स्त्री का और मानव-धर्म का भी उद्धार होगा ।

शंकराचार्य ने वह अधिकार सिद्ध किया

संन्यास, ब्रह्मचर्य, परिव्रज्या लेने की इजाजत हो, तो हजारों स्त्रियाँ संन्यासिनी बनेंगी, ऐसी बात नहीं । आज पुरुषों को इजाजत है, तो भी हजारों पुरुष संन्यासी थोड़े ही बनते हैं ? किन्तु इजाजत न होना, एक 'डिसएबिलिटी' (अपात्रता) होना प्रगति के लिए रुकावट पैदा करता है । हिन्दू-धर्म में पहले ऐसा नहीं था । पर बीच में माना गया कि कलियुग में संन्यास सबके लिए वर्जित है। इस पर प्रहार शंकर-सम्प्रदाय से हुआ । शंकराचार्य के गुरु संन्यासी थे । वे पहले गृहस्थाश्रमी थे और बाद में उन्होंने संन्यास लिया । परन्तु शंकराचर्य ने ब्रह्मचर्य में से ही संन्यासी होने की इच्छा प्रकट की । उन्होंने अपनी माँ से संन्यास लेने की इजाजत माँगी । माँ इजाजत नहीं देती थी, पर आखिर उसे देनी पड़ी । आज हम शंकराचार्य का अत्यन्त गौरव गाते हैं । हिन्दू-धर्म पर श्रीकृष्ण भगवान् के बाद सबसे ज्यादा असर यदि किसी व्यक्ति का हुआ, तो वह शंकराचार्य

का हुआ है । उनके भाष्य, स्तोत्र आदि देशभर में सर्वत्र पढ़े जाते हैं । किन्तु उनके रहते जो हालत थी, उसकी हम कल्पना नहीं कर सकते ।

अन्त तक माफी नहीं माँगी

शंकराचार्य संन्यास लेकर निकले और उत्तर में घूम रहे थे, तो उन्हें माता का स्मरण होने लगा । उन्होंने सोचा कि स्मरण हुआ है, इसका मतलब यह है कि माँ मुझे बुला रही है । इसलिए वे दक्षिण की ओर वापस चल पड़े । घर पहुँचे तो उनकी माता की मरने की तैयारी थी । माँ को भगवान् का दर्शन होना चाहिए, इसलिए उन्होंने कृष्णाष्टक बनाया और माँ के मुँह से उसका उच्चारण कराया । उसकी अन्तिम पंक्ति का उच्चारण होते ही माँ को भगवान् का दर्शन हुआ, ऐसी कहानी है । माँ ने अपने पुत्र को संन्यास लेने की इजाजत दी थी और कलियुग में तो संन्यास वर्जित माना गया था, इसलिए उनके समाज की तरफ से यानी नंबूद्री ब्राह्मणों की तरफ से बहिष्कार था, जैसे टॉल्स्टॉय का पोप की तरफ से बहिष्कार था या जैसे गांधीजी हिन्दू-धर्म के शत्रु समझकर मारे गये । बहिष्कार के कारण माँ की श्मशान-यात्रा के लिए ब्राह्मणों में से एक भी मनुष्य नहीं आया । जातिभेद था, इसलिए दूसरी जातिवाले तो आ ही नहीं सकते थे । शव उठाने के लिए कोई नहीं आया, तो फिर शंकराचार्य ने तलवार से लाश के तीन टुकड़े किये और एक-एक टुकड़े ले जाकर जलाया। वे अत्यन्त प्रखर ज्ञानी थे । ऐसे मौके पर भी वे पिघले नहीं । अगर वे माफी माँगते, तो ब्राह्मण श्मशान-यात्रा के लिए आते, परन्तु उन्होंने माफी नहीं माँगी।

आज शंकराचार्य के लिए इतना आदर है कि नंबूद्री ब्राह्मणों में उनकी स्मृति में जलाने के पहले लाश पर तीन लकीरें खींची जाती हैं । परन्तु उस जमाने में समाज इतना कठोर था कि माँ की लाश उठाने तक के लिए कोई नहीं आया । फिर भी शंकराचार्य ने समाज पर कोई आक्षेप नहीं किया । उनके ग्रन्थों में कहीं भी कटुता नहीं है । उत्तम सुधारक का यही लक्षण है । शंकराचार्य को संन्यास का हक प्राप्त करने के लिए इतना करना पड़ा । इसी तरह एक-एक हक प्राप्त करना होता है ।

शंकराचार्य जैसी स्त्री निकले

स्त्री-पुरुषों की समानता का हक भी ऐसे ही प्राप्त करना होगा । स्त्रियाँ अगर पुरुषों की बराबरी में बीड़ी पीना चाहें, तो वह हक उन्हें आसानी से मिल सकता है । किन्तु वे संन्यास, ब्रह्मचर्य, परिव्रज्या या मोक्ष का हक चाहती हैं, तो कोई ज्ञानवान, प्रखर, वैराग्यसम्पन्न स्त्री निकलेगी, तभी वह हासिल होगा । किसीके भी देने से उन्हें वह हक हासिल न होगा । उसको खुद होकर वह हक प्राप्त करना होगा ।

स्त्रियाँ नया शास्त्र रचें

आज के अध्यात्म में संसार यानी स्त्री के लिए आसक्ति और परमार्थ यानी स्त्री के लिए घृणा । यानी परमार्थ और संसार दोनों का केन्द्रबिन्दु स्त्री। मीराबाई कहती है : '**ब्रजमा रही तमे पुरुष रह्या, भलो तमारो विवेक** !' स्त्री का मुख भी देखना नहीं, इतनी घृणा ! इसलिए स्त्रियाँ ब्रह्मचारिणी होंगी, शास्त्रकार होंगी, समूहरूपेण काम करेंगी, तब चित्र बदलेगा ।

अपना उद्धार खुद ही कर पायेंगे

स्त्रियों का उद्धार तो तभी होगा, जब स्त्रियाँ जागेंगी और स्त्रियों में शंकराचार्य जैसी प्रखर ज्ञान-वैराग्य-सम्पन्न, भक्तिमान् और निष्ठावान् शास्त्रकर्ता पैदा होगी। दुनिया में अभी तक समाज पर और धर्म पर जिन लोगों का प्रभाव हुआ है, वे पुरुष हैं । इसी तरह जब स्त्रियों का समाज और धर्म पर प्रभाव होगा, तभी उनका उद्धार होगा ।

स्त्रियों के उद्धारक के रूप में कृष्ण भगवान् हो गये हैं । महावीरस्वामी ने भी स्त्रियों के लिए काम किया । गांधीजी ने भी स्त्रियों के लिए काम किया । अणासाहब कर्वे जैसे पुरुष ने भी अपना सारा जीवन इसी काम में लगाया है। स्वामी दयानन्द ने स्त्रियों के लिए बहुत कहा है और किया है । फिर भी स्त्रियों की आज क्या दशा है ? समाज में पुरुषों की ही सत्ता अधिक है। कारण, जिन्होंने स्त्रियों के लिए कार्य किया, वे सबके सब पुरुष हैं, इसलिए वे ज्यादा कुछ नहीं कर सके। यह काम स्त्रियों को स्वयं करना होगा, तभी भलीभाँति हो सकेगा । अनुभव का एक सिद्धान्त है

कि प्राणी का उद्धार प्राणी के आत्मबल से ही होगा । परमेश्वर की मदद उसीको मिलती है, जो स्वयं कोशिश करता है । उसके मन में जब अत्यन्त तीव्रता दीखती है, तभी परमेश्वर भी मदद करता है । तीव्रता न हो, प्रयत्न में तड़पन न हो, तो भक्ति नहीं होती । जब तीव्रता होती है, इच्छा-शक्ति होती है, तब भक्ति होती है और परमेश्वर मदद करता है । यों तो परमेश्वर सबका उद्धारक है ही, किन्तु जो अपने उद्धार के लिए तीव्र इच्छा-शक्ति रखता है, उसीकी वह मदद करता है।

वैराग्य-मूर्ति स्त्री ही बगावत करेगी

अगर मैं स्त्री होता, तो न जाने कितनी बगावत करता । मैं तो चाहता हूँ कि स्त्रियों की तरफ से बगावत हो । लेकिन बगावत तो वह स्त्री करेगी, जो वैराग्य की मूर्ति होगी । वैराग्य-वृत्ति प्रकट होगी, तभी तो मातृत्व सिद्ध होगी। स्त्रियाँ स्वतन्त्रता चाहती हैं, तो उन्हें वासना के बहाव में नहीं बहना चाहिए।

मैं देहात की स्त्रियों को शहरी स्त्रियों की तुलना में ज्यादा स्वतन्त्र समझता हूँ । वे अपने दुष्प्रवृत्त पति के गाल पर तमाचा मार देती हैं, ऐसा भी उदाहरण मैंने देखा है—पढ़ी-लिखी स्त्री का नहीं, निरक्षर का । पढ़ी-लिखी स्त्रियों को तो मैं अधिक दबी पाता हूँ । इसलिए नहीं कि वे पढ़ी-लिखी होती हैं, बल्कि वे आरामतलब होती हैं । जंगल का शेर आरामतलब नहीं होता, इसलिए स्वतन्त्र रहता है ।

बगावत करने की वृत्ति और विनयशीलता में कोई विरोध नहीं है । विनयशीलता से तो बगावत बलवान होती है । समझ-बूझकर और उचित समझकर किसी उचित आज्ञा को मानना विनयशीलता है, अनुचित आज्ञा को न मानना बगावत है और विनयपूर्वक वह हो सकती है । उसीमें स्वतन्त्रता है ।

•

८. मेरो कोई नहीं रोकनहार

वासनाएँ तीन प्रकार की होती हैं । पुत्र-वासना, वित्त-वासना और लोक-वासना । तीनों वासनाओं का परित्याग करने पर जीवन में भक्ति का समग्र रूप व्यक्त होता है । यों तो भक्ति के मार्ग पर अनेकों ने पुत्र और वित्त-वासना छोड़ी, पर लोक-वासना छोड़ने में वे कृतकार्य न हो सकें । लोग हमें भला कहें, सर्वत्र हमारी कीर्ति हो, सभी हमें इज्जत दें, यह एक बहुत बड़ी वासना है । सामान्य मनुष्य को इससे कर्तव्य की प्रेरणा मिलती है, और वह उसके लिए पृष्ठबल भी सिद्ध होती है । किन्तु परमेश्वर की भक्ति में वह बल नहीं, दुर्बलता बनती है । इस दुर्बलता पर जिसने विजय पा ली, वे ही भक्ति की कसौटी पर खरे उतरे । उनकी भक्ति-साधना सफल हो गयी ।

लोक-लाज छोड़नेवाली बागी भक्त मीरा

मीराबाई का नाम सारे भारत में मशहूर होने के साथ-साथ विश्व-इतिहास में भी अपना विशिष्ट स्थान रखता है । हिन्दुस्तान के मध्ययुगीन संतों में कबीर और तुलसीदास को जो लोक-कीर्ति मिली, वह संभवत: अन्य किसीको नहीं । पर जिस कोटि में वे दोनों हुए, उसी कोटि में आज मीराबाई का नाम आ गया है । फिर भी इन तीनों को उनके अपने जमाने में ठीक-ठीक पहचाना नहीं गया । जगह-जगह उन्हें अपमान सहना पड़ा । सब कुछ सहकर भी उन्होंने अपनी स्वतंत्र भावनाएँ अक्षुण्ण रखीं । वे बराबर अपने युग की विपरीत परिस्थितियों में स्वयं अपना पथ बनाते रहे और अपने धैर्य से विचलित नहीं हुए ।

मीराबाई की भी वही स्थिति थी । वह अपने-आपको भगवान् की 'जनम- जनम की दासी' समझती थी । दूसरे लोगों ने उसे अन्य किसीकी दासी बनाना चाहा, तो उसने कह दिया : '**मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई ।**' '**मुखड़ानी माया लागी रे, मोहन प्यारा** ।' इस पर वह दोनों कुलों से तिरस्कृत कर दी गयी । सभी लोग उसका उपहास करने लगे ।

आज मीराबाई नहीं है, पर उसके द्वारा रचित पद अभी भी गाये जाते हैं। बड़े-बड़े दरबारों, मजलिसों एवं जलसों में मीरा के पद गाये जाते हैं ।अच्छे-अच्छे संगीतज्ञ को विविध राग-रागिनियों

में उसके पद गाने में धन्यता महसूस होती है । वे इन्हीं पदों के बल पर दुनिया को रिझाते हैं । लेकिन मीराबाई ने लोकरंजन के लिए पद नहीं रचे । मीराबाई एक बगावत करनेवाली भक्त थी । भक्ति दो प्रकार की होती है : एक मर्यादा-भक्ति और दूसरी पुष्ट-भक्ति । मर्यादा-भक्ति में लोक-व्यवहार को प्रमुखता मिलती है, तो पुष्ट-भक्ति में अंत:-प्रेरणा को । अंत:प्रेरणा पर आधृत पुष्ट-भक्ति में मर्यादाएँ टूट जाती हैं :

'अब तो बात फैल पड़ी, जानत सब कोई ।
मीरा राम लगन लगी, होनी हो सो होई ॥'

मीराबाई की भक्ति मर्यादा को भंग करनेवाली थी । उसके दोनों कुल पराक्रमी थे, धर्मरक्षक और भगवान् की भक्ति करनेवाले । लेकिन उनकी भक्ति में मर्यादा का प्राधान्य था ।

रुक्मिणी की पंक्ति में बैठ गयी

पुष्ट-भक्ति करनेवाली स्त्रियों में दो-तीन नाम प्रसिद्ध हैं : तमिलनाडु में 'आंडाल', महाराष्ट्र में 'जनाबाई' और 'मुक्ताबाई' और राजस्थान में 'मीराबाई' । और भी कोई नाम हों तो अभी मुझे याद नहीं । मीरा ने कहा है कि "मैं तो जन्म-जन्म की हरि की दासी हूँ, मुझे और कोई दासी नहीं बना सकता ।" आजादी की यह मस्ती परमेश्वर के अनन्यशरण भक्त को ही प्राप्त होती है। अपनी भक्ति से मीरा उस श्रेणी में पहुँच गयी, जिस श्रेणी में माता रुक्मिणी थीं। रुक्मिणी की शादी किसी दूसरे से करने की सोची जाने लगी, तो उन्होंने भगवान् को पत्र लिखा । वह पत्र भागवत में है । दुनिया के पत्र-साहित्य में शायद वह प्रथम पत्र है । उसमें रुक्मिणीजी ने लिखा है : "मैं और किसीकी दासी नहीं बन सकती । मुझे भगवान् की ही दासी बनना है, उसके लिए चाहे सौ जनम ही क्यों न बिताने पड़ें ? सौ-सौ जनमों तक व्रतों से प्राणों की आहुति दूँगी, लेकिन तुम्हारे ही पास आऊँगी । तुम्हारे ही चरणों में आश्रय लूँगी । दूसरे के साथ हरगिज शादी नहीं कर सकती ।" **'जह्यामसून् व्रतकृशान् शतजन्मभि: स्यात्'** | यह वही चीज है : 'जनम-जनम की दासी ।' कह नहीं सकता कि मुझे कितनी ताकत उसके इस कथन से मिलती है । सारांश, रुक्मिणीजी की ही

हैसियत मीराबाई को प्राप्त हुई थी, इसीसे समझ सकते हैं कि मीरा की भक्ति कितनी महान् है । उसने विद्रोह के साथ भक्ति का झंडा उठाये रखा, इसलिए भी वह महत्तर है ।

आजादी की बगावत

आजादीपूर्वक मीरा भगवान् की भक्ति करती रही । उसकी आत्मा को कोई गुलाम नहीं बना सका । वही आत्मा आज मेरे जैसे नाचीज भक्त को आजादी की प्रेरणा दे रही है । मीरा के पद मुझे रह-रहकर प्रेरणा देते हैं। मीरा 'जनम-जनम की दासी' होकर भी साधना करती है, इससे मुझे शक्ति मिलती है । मैं उससे सतत सेवा में लीन रहने की प्रेरणा पाता हूँ ।

कश्मीर की लल्ला

राजस्थान में जैसे मीरा हो गयी वैसे ही चार-पाँच सौ वर्ष पहले कश्मीर वैली में मीरा की कोटि की लल्लेश्वरी नाम की एक योगिनी हुई । उसके कुछ वचन हैं, जिन्हें 'आक्सफर्ड' प्रेस ने छापा है । मैंने उन वचनों को पढ़ा है। आज भी वे कश्मीर वैली में चलते हैं । वहाँ के सारे मुसलमान इसमें गर्व महसूस करते हैं कि हमारे यहाँ लल्ला योगिनी हुई | एक दफा मैंने यह भी कहा था कि यहाँ दो ही नाम चलते हैं—एक 'अल्ला' और दूसरा 'लल्ला' ।

परमभक्त आंडाल

जैसे कश्मीर में लल्ला, राजस्थान में मीरा, महाराष्ट्र में मुक्ता है, वैसे ही दक्षिण की आंडाल है, जो ईश्वर की परमभक्त थी । दक्षिण के एक मंदिर में आंडाल को भगवान् की मूर्ति के साथ खड़ा कर दिया है ।

आंडाल एक साधारण स्त्री थी, जैसी कि सारी बहनें हैं । परन्तु वह भगवान् के नजदीक उनकी बराबरी में खड़ी है । उसने दिखा दिया कि मनुष्य अगर कोशिश करता है तो वह भगवान् के साथ हो सकता है, वहाँ पहुँच सकता है । किन्तु यदि हम यह समझें कि यह मूर्ति तो सिर्फ लोगों के दर्शन के लिए है, इसका अनुकरण हम नहीं कर सकते तो हम हार खायेंगे । आप और हम सबमें ऐसी निष्ठा होनी चाहिए कि आंडाल ने जो राह हमें दिखायी, उस पर हम जा सकते हैं

और मुकाम पर पहुँच सकते हैं । यदि हम समझें कि वह तो एक अद्वितीय स्त्री हो गयी, उसकी बात अलग है और हमारी अलग है, तो हम आत्मनाश कर लेंगे । उस दर्शन का हमें कोई लाभ नहीं होगा । आंडाल यह नहीं मानती कि उसकी कोई अलग राह है और उस पर हम सब नहीं जा सकते । वह तो इससे उल्टा मानती है ।

'तिरुप्पावै' में कहा गया है कि वह सुबह बड़े तड़के उठती और लोगों से घर-घर जाकर कहती है : "चलो री बहनो, स्नान के लिए, भगवान् के दर्शन के लिए सभी एक साथ चलो ।" वह अकेली जा सकती थी, लेकिन नहीं, वह सबको लेकर जाना चाहती है । यही तिरुप्पावै की, आंडाल की खूबी है । दुनिया में ऐसे भक्त बहुत थोड़े होते हैं, जो भगवद्-दर्शन की तैयारी में लोगों को याद रखते हैं । परन्तु आंडाल को भगवद्-दर्शन की उत्कण्ठा होते हुए भी उस मौके पर हम जैसे दोनों का स्मरण कायम है ।

•

९. गृह-लक्ष्मी अब समाज-लक्ष्मी बने

आज मानव-समाज की जो रचना है, वह सर्वनाश की रचना है और वह पुरुषों ने अपनी बुद्धि से बनायी है । पुरुष आज तक भय पर ही सारी रचना करते आये हैं, अभय पर नहीं । सारी दुनिया को आग लगाना वे जानते हैं, इसी कारण इस बीसवीं सदी में पचीस सालों में दो बड़े-बड़े विश्व-युद्ध हो चुके हैं और तीसरे का भय सिर पर मँडरा रहा है । आज दिन-ब-दिन नयी-नयी सत्ता कौ रचना हो रही है और नयी-नयी समस्याएँ खड़ी होती हैं, भय निर्माण होता है और समस्याओं का हल नहीं मिलता ।

हिंसा में पुरुष-प्रधानता

जब तक देश का संरक्षण सैन्य-शक्ति से होता है, अहिंसा-शक्ति से नहीं होता है, तब तक पुरुषों का दर्जा ऊँचा ही रहनेवाला है । पुरुष उजड्ड होता है और स्त्रियों की शरीर-रचना ऐसी होती है कि उन्हें गर्भधारण करना पड़ता है । इसलिए स्वभावत: उनके लिए हिंसा कठिन है । अगर रक्षण का साधन हिंसा ही रहेगी, तो पुरुष-प्रधान जीवन रहेगा ही । इसलिए मेरी माँग है कि समाज का संरक्षण अहिंसा-पद्धति से ही करने की शक्ति होनी चाहिए ।

भावी युग माताओं का

अभी तक समाज में हिंसा-शक्ति को स्थान था । अब हिंसा-शक्ति गड़बड़ा गयी है । वह समझ गयी है कि अब उसकी कुछ चलेगी नहीं । चलती है थोड़ी, लेकिन वह टिकनेवाली नहीं । और आगे जो युग आनेवाला है, उसमें अहिंसा-शक्ति को स्थान होगा और अहिंसा-शक्ति से समाज की रक्षा करनी होगी । तो, अहिंसक शक्ति में स्त्रियाँ पुरुषों से कम नहीं, ज्यादा ही साबित होनी चाहिए । यह महात्मा गांधी ने भी माना था ।

पुरानी बात है । शराब की दूकानों पर पिकेटिंग करना था । गांधीजी ने कहा, बहनें जायँगी । सुननेवाले भाई ने कहा, शराब की दूकान पर तो तमोगुणी लोग होते हैं, वहाँ स्त्रियों को भेजना क्या ठीक होगा ? गांधीजी ने कहा, तमोगुणी लोगों के सामने सत्त्वगुणी को भेजना चाहिए । स्त्रियाँ

सत्त्वगुणी होती हैं । यह भारत की परंपरा है । मनु ने जाहिर किया है—एक, साधारण उपाध्याय होता हैं, उससे आचार्य श्रेष्ठ होता है । सौ आचार्यों के बराबर एक पिता होता है। क्योंकि आचार्य ज्ञान देगा और अलग हो जायगा, लेकिन पिता ज्ञान भी देगा और रक्षण भी करेगा । फिर कहते हैं, हजार पिताओं से एक माता का गौरव ज्यादा है । बड़ा ही सुन्दर वाक्य है । ऐसा वाक्य कहीं देखने को मिला नहीं साहित्य में । और उपनिषदों ने आज्ञा दी विद्यार्थियों को '**मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव**'—प्रथम नंबर में मान दे दिया माता को । इसलिए इसके आगे का युग माताओं का—बहनों का है ।

पुरुषों पर अंकुश रखें

एक जमाना था, जब यह माना गया था कि स्त्रियों का क्षेत्र घर है। आज भी वह घर उनके हाथ में रहेगा ही । परंतु इन पचीस सालों के अंदर पुरुषों ने दुनिया का इस तरह बन्दोबस्त किया है कि आज दुनिया बिलकुल हैरान, बेजार हो गयी है । इस इन्तजाम में दो विश्व-युद्ध हो चुके और तीसरा कब होगा, कहा नहीं जा सकता । स्त्री-पुरुष-समानता के नाम पर ये लोग स्त्रियों के हाथ में भी बंदूक देना चाहते हैं और स्त्रियों की पलटनें खड़ी करना चाहते हैं, बजाय इसके कि स्त्रियों के हाथ में वह अंकुश आये, जिससे कि पुरुषों को ऐसे कामों से परावृत्त कर सकें और अपने मातृत्व की शक्ति जीवन में ला सकें । यह करने के बजाय रंगरूट-भर्ती में उनको भी स्थान दिया जाता है और उनकी मदद की अपेक्षा की जाती है । दुनिया में यह सब निर्भयता के खयाल से चलता है और स्त्रियाँ भी समझती हैं कि शायद हमारे हाथ में बंदूक आ जाय, तो हम निर्भय बनेंगी। लेकिन निर्भयता का बंदूक के साथ कोई संबंध नहीं है । बंदूक के बल से अगर निर्भयता आती तो आज अमेरिका और रूस के लोग निर्भय बन जाते । उनके पास इतने शस्त्रास्त्र हैं, फिर भी उनके हृदय में धड़कन है । मेरा खयाल है कि उनका तापमान भी नार्मल नहीं रहता होगा। दोनों एक-दूसरे से डरते हैं । यह सारा पुरुषों की व्यवस्था में हुआ है । इसलिए अब स्त्रियों को सामाजिक क्षेत्र में आना होगा और पुरुषों पर अंकुश रखने का काम करना होगा । भारत की स्त्रियों से मेरी यही अपेक्षा है।

करुणा का राज्य स्थापित करें

मैं चाहता हूँ कि भारत की स्त्रियाँ अपनी आत्मशक्ति का भान रखकर सामने आ जायँ । इसके आगे स्त्रियों के हाथ में समाज का अंकुश जानेवाला है । उसके लिए स्त्रियों को तैयार होना पड़ेगा । स्त्रियाँ शान्ति का कार्य उठा लेंगी, तो दुनिया बदल जायगी और आज देश के और दुनिया के सामने जो मसले उपस्थित हैं, उनसे मुक्ति होगी । पुरुषों से यह सब होनेवाला नहीं है। अब उनका दिमाग ठिकाने पर नहीं है । उन्हें कुछ सूझता ही नहीं है । सूझता है तो यही कि सेना बढ़ाओं । इस तरह विज्ञान-युग में, जब कि पुरुषों की बुद्धि स्तंभित हो गयी है, उस समय अगर स्त्रियाँ काम में आती हैं और अपने देवी गुणों के साथ, संयमशीलता के साथ, अपनी मातृशक्ति के साथ सामने आती हैं, तो करुणा का राज्य स्थापित कर सकती हैं । वैसे तो हमारे समाज की रचना पहले से ही ऐसी बनी है कि बायीं ओर स्त्रियाँ और दाहिनी ओर पुरुष रहते थे । आज हमारे समाज की स्थिति उलटी हो गयी है । स्त्रियाँ पिछड़ गयी हैं और पुरुष आगे बढ़ गये हैं । सच पूछिये, तो अब स्त्रियों को समाज की बागडोर अपने हाथ में लेनी चाहिए । उन्हें वामपंथी होना चाहिए और समाज को आगे ले जाना चाहिए ।

हिंसा और व्यभिचार का मुकाबला करें

स्त्रियाँ व्यर्थ की समता की बात में फँसेंगी, तो भयंकर होगा । 'स्त्री-पुरुष की बराबरी में है' इससे ज्यादा अपमानजनक उक्ति दूसरी क्या हो सकती है ? आज तो पश्चिम में स्त्रियों की पलटनें भी होती हैं और स्त्रियाँ हाथ में बंदूक लेकर कवायद भी करती हैं । परन्तु ऐसे भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए । मनु की यह बात याद रखनी चाहिए कि 'एक हजार पिता से एक माता का गौरव अधिक है ।' अभी तो पुरुषों ने स्त्रियों को अत्याचार का साधन बना रखा है। मातृत्व का रूपांतर व्यभिचार में हुआ है । हिंसा और व्यभिचार का मुकाबला करने के लिए स्त्रियों को आगे आना चाहिए । मातृत्व ब्रह्मचर्य में होता है, इसलिए ब्रह्मचर्य की शक्ति का विकास स्त्रियों को करना चाहिए । तभी मातृत्व की पवित्रता सिद्ध होगी और समाज की रक्षा होगी । मातृशक्ति रक्षक देवता है । पुरुष जब हिंसक शक्ति का आवाहन करते हैं, तब स्त्री उसे रूप देती है । उत्तर माँ अंबा माँ, पूरब

माँ काली माँ । काली और दुर्गा के रूप में संहारिणी शक्ति की कल्पना है । इसलिए अब स्त्रियों को समाज की बागडोर अपने हाथ में लेनी चाहिए।

स्त्रियों का अपना ढंग : करुणा

आज तक स्त्रियों को सार्वजनिक काम में खींचने की कोशिश हुई है, लेकिन वह पुरुषों के ढंग से काम करने की हुई, स्त्रियों के ढंग से नहीं । उनसे कहा गया कि "चुनाव में आओ, सेना में आओ, राइट-लेफ्ट करो, सामने उड़नेवाला पक्षी दीखे, तो उसे निशाना बनाकर अपनी कुशलता दिखाओ, जो मिलिटरीमैन की कुशलता मानी जाती है ।" मैं सोचता हूँ कि पुरुषों के साथ स्त्रियाँ भी बंदूक तानने का अभ्यास करें, इसमें पुरुषों की बराबरी करें तथा इस तरह खुद को समाज-कार्य में अग्रसर मानें, तो स्त्रियाँ कभी भी अग्रसर नहीं हो सकतीं । इससे वे 'पुच्छसर' ही होंगी, क्योंकि हिंसा के मार्ग में स्त्रियों के लिए पचासों बाधाएँ उपस्थित होती हैं, जो पुरुषों के लिए नहीं होतीं । हिंसा के मार्ग में पुरुष ही आगे जा सकते हैं । लेकिन अहिंसा-मार्ग में स्त्रियाँ पुरुषों की बराबरी कर सकती हैं और आगे भी जा सकती हैं । इसलिए यह जरूरी है कि स्त्रियाँ आगे आयें और अपने ढंग से आगे आयें । स्त्रियों का ढंग है करुणा का ढंग ।

अहिंसा स्त्री-शक्ति को जगाती है

गांधीजी की विशेषता यह थी कि उन्होंने स्त्री-शक्ति को जगाया । वे स्त्री- शक्ति को इसलिए जगा सके कि उनका कार्य अहिंसा का था । समाज में जब तक सारा आधार हिंसा पर रहेगा, तब तक स्त्रियों का स्थान गौण रहेगा । एक झाँसीवाली रानी निकली थी । परन्तु वैसी ज्यादा नहीं निकल सकतीं। अगर हमने यह माना कि हिंसा-शक्ति से समाज का बचाव होना चाहिए, तो उस कार्य में पुरुषों का ही मुख्य स्थान रहेगा, स्त्रियों का गौण स्थान रहेगा। अहिंसा में स्त्री का बहुत ज्यादा प्रवेश है । गांधीजी ने सारे सामाजिक क्षेत्र में अहिंसा को मान्य किया, इसीलिए वे स्त्री-शक्ति को जगा सके । व्यक्तिगत क्षेत्र में तो अहिंसा पहले से ही मान्य थी । परन्तु गांधीजी उसे सामाजिक क्षेत्र में ले आये। इसलिए इस क्षेत्र में स्त्रियाँ पुरुषों की बराबरी में या कुछ अधिक ही काम कर सकती हैं ।

प्रेम का विस्तार

प्राचीन ऋषियों ने लिख रखा है '**वसुधैव कुटुम्बकम्**', यानी पृथ्वी हमारा छोटा कुटुम्ब है । केवल कुटुम्ब नहीं कहा, कुटुम्बकम् कहा । इसलिए हमें अपने परिवार का विस्तार करना होगा । स्व से आगे बढ़ना होगा, स्वार्थ को केवल परिवार तक नहीं, गाँव तक बढ़ाना होगा । इसके आगे स्वार्थ नहीं चलेगा, ग्रामार्थ चाहिए । गाँव के जितने बच्चे हैं, वे सब मेरे हैं, ऐसी भावना माताओं को रखनी होगी । स्वार्थ, परार्थ और परमार्थ—यह जीवन की गति है ।

हमारे पूर्वजों ने स्त्री-पुरुष सम्बन्ध को 'विवाह' नाम दिया । इसका आशय क्या है ? मनुष्य दूसरों के लिए सहन करना सीखें । जब तक विवाह नहीं होता है, मनुष्य अपने अकेले के लिए सोचता है, परन्तु विवाह के बाद वह अपनी पत्नी और बच्चों के लिए सोचता है । गरीब होगा तो बच्चों को खिलायेगा । कहेगा कि मैं तो अपनी जवानी में बहुत खा-पी चुका हूँ । तो गृहस्थाश्रम में मनुष्य को प्रेम की तालीम मिलती है, प्रेम का अभ्यास होता है ।

बाबा का बहनों से यही कहना है कि आपने परिवार में प्रेम का प्रयोग किया, अभ्यास किया, उसमें सफलता प्राप्त की । अब अपने प्रेम का विस्तार करना चाहिए । परिवार के प्रेम को अपने गाँव तक, समाज तक विस्तृत करना चाहिए ।

यदि प्रेम परिवार में ही सीमित हो जायगा तो उस प्रेम का स्वरूप बदलकर काम-वासना में परिवर्तित हो जायगा और फिर '**कामात् क्रोधोभिजायते** ।' सब पापों का मूल काम है । परिवार में बाप-बेटे का झगड़ा, पति-पत्नी का झगड़ा शुरू हो जायगा । जैसे पानी बहता रहता है तो स्वच्छ रहता है, परन्तु छोटे से गड्ढे में इकट्ठा होकर सीमित हो जाता है तो उसमें से दुर्गन्ध आती है । प्रेम की भी यही बात है । उसको बहते रहना चाहिए । पहले मैं और मेरा, फिर हम और अपने और फिर गाँव और गाँव का और उसके बाद सब तेरा ही तेरा अर्थात् परमेश्वर का । यही है ब्रह्मविद्या का क्रमश: शिक्षण और यही है ब्रह्मविद्या का सार ।

आज तक परदे के पीछे काम किया

मानव-समाज बहनों के कारण टिका हुआ है । हिन्दुस्तान में बहनों ने आज तक पीछे रहकर जोर लगाया कि समाज में सद्भावनाएँ टिकें । भारत में जो सद्भावनाएँ टिकी हैं, वे बहनों के कारण टिकी हैं । पुरुष बाहर काम करते हैं, परन्तु उन पर भाई, पिता, पति, पुत्र आदि के नाते अंकुश रखना, धर्म-पथ को छोड़कर न जाय, इसलिए उन पर नैतिक वजन डालना, यह सारा काम चुपचाप बहनों ने किया है । इसलिए कहा जाता है कि धर्म-रक्षा का काम बहनों ने किया है, इसमें कोई शक नहीं ।

अब मंच पर आना लाजमी

परन्तु अब बहनों को थोड़ा बाहर निकलकर भी काम करना होगा । गाँव में झगड़ा होता है, तो बाहर निकलकर कौन झगड़ता है ? पुरुष । लेकिन अब बहनों में यह शक्ति और हिम्मत जगनी चाहिए कि जहाँ सुना कि झगड़ा हो रहा है, वहाँ फौरन् पहुँच जायँ और बीच में पड़कर कहें कि हम तुम्हें झगड़ने नहीं देंगी । इसे हमने शान्ति-सेना का नाम दिया है । मैं चाहता हूँ कि शान्ति-सेना का काम बहनें ही उठा लें । झगड़े शान्त कराने में बहनें घायल भी हो जायँ, तो भी उसकी परवाह उन्हें नहीं करनीं है । मर-मिटने का भी मौका आये, तो तैयार रहना चाहिए । तभी बहनें अपना कर्तव्य पूरा कर सकती हैं। यह सब हिम्मत से होगा । यदि एक बहन ने मार सहन की, तो दंगा बन्द हो जायगा । इतिहास की एक कहानी है कि राघोबा दादा ने बेवकूफी से आक्रमण किया तो अहिल्याबाई ने मुकाबले के लिए बहनों की सेना भेज दी । आखिर उसे वापस जाना पड़ा । इसलिए बहनें शान्ति-सेना बनायें ।

शान्ति-रक्षा का बोझ बहनें उठायें

अब झगड़ों के मौके पर हम पहुँचना चाहते हैं, तो घर-घर से पूर्व-परिचय होना चाहिए, तभी शान्ति के मौके पर काम कर सकेंगे । वैसे लड़ाई-झगड़े के मौके हमेशा नहीं आते, तब शान्ति-सैनिकों को घर-घर परिचय करना होगा ।

गाँवों में अम्बर चरखे चलते हैं, तो उसकी खादी घर-घर में बेचने का काम भी बहनें उठा लें । कहें कि यह अपने गाँव की बहनों की खादी है, इसे खरीदो । यह शान्ति के मौके पर करने का काम है । साथ ही साथ सर्वोदय-पात्र, संपत्तिदान, साहित्य-प्रचार का काम भी बहनें कर सकती हैं । इस तरह बहनों का द्विविध कार्यक्रम होगा : (१) अशान्ति के समय लड़ाई-झगड़े शान्त रखना । (२) शान्ति के समय सर्वोदय-पात्र, खादी-प्रचार, साहित्य-प्रचार आदि करना ।

राजनीति का क्षेत्र पुरुषों के लिए छोड़ दें । सेवा और प्रेम का काम बहनें करें । उपर्युक्त द्विविध निष्ठा से समाज को बहनों द्वारा बल मिलेगा । बहनों के राजनीति में पड़ने से समाज का नैतिक बल घटेगा । बहनें राजनैतिक पक्षों से अलग रहकर ही उन्हें बचा सकती हैं ।

'सर्वोदय पात्र' में स्त्री-शक्ति लगे

जब-जब मेरे सामने सवाल आया कि आखिर अहिंसक समाज-क्रान्ति को साकार कौन करेगा, तब मुझे मालूम हुआ कि पुरुषों से दो कदम आगे बढ़कर स्त्रियाँ ही यह काम कर सकेंगी। अहिंसा को विकसित इस तरह करना कि समाज पर उसका यत्किंचित् भी आक्रमण न हो, ऐसा लोकसम्मति प्राप्त करानेवाला कार्यक्रम 'सर्वोदय-पात्र' का मुझे सूझ पड़ा और मेरे ध्यान में आया कि स्त्री-शक्ति इस काम में लगायी जा सकती हैं ।

शान्ति-सेना की सम्पत्ति

जैसे सशस्त्र सेना के लिए टैक्स के रूप में लोगों की सम्पत्ति प्राप्त की जाती है, वैसे ही शान्ति-सेना के लिए सबकी सम्मति प्राप्त करनी चाहिए। रोज परिवार का छोटा बच्चा अपने हाथ से एक पात्र में एक नया पैसा डाले या एक मुट्ठीभर अनाज डाले । सारे समाज के लिए हम कुछ दें, यह भावना सर्वोदय पात्र के कार्यक्रम में है | विश्व-शान्ति के लिए प्रत्येक नागरिक का वह मतदान होगा । तो बहनों की शक्ति इस काम में लगनी चाहिए ।

शान्ति की मूर्ति

यह सच है कि शान्ति की मूर्ति गढ़ी नहीं जा सकती, पर मान लें कि उसे गढ़ना ही है, तो वह स्त्री की मूर्ति ही हो सकती है । काम, क्रोध, मद, मत्सर आदि विकार जेसे पुरुषों में होते हैं,

वैसे ही स्त्रियों में भी हो सकते हैं । ममता, प्रेम आदि गुण दोनों में होते हैं । इन बातों में कोई एक-दूसरे से नीचा-ऊँचा हो, ऐसी बात नहीं । फिर भी शान्ति की मूर्ति स्त्री हो सकती है, क्योंकि वह मातृस्थान है । वह सारे समाज की तारिणीशक्ति है । जो तारिणोशक्ति होगी, वही शान्ति की मूर्ति हो सकती है ।

आज स्त्री 'काम का विषय'

एक तरफ तो हम देख गये कि हिन्दुस्तान ने कितना मातृगौरव गाया है। स्त्री की इतनी शक्ति होने पर भी स्त्री की तरफ लोग देखते हैं कामिनी के तौर पर यानी काम-साधना का एक विषय ! यह मातृशक्ति का सबसे बड़ा अपमान है । इसलिए स्त्री-शाक्ति बढ़ाने के लिए प्रथम प्रहार जो-जो चीजें कामवासना-प्रेरक हैं, उन सब चीजों पर करना होगा ।

विषय-वासना का व्यापक प्रचार

उन चीजों में पहली चीज है सिनेमा और उसका पोस्टर, दोनों । वे बच्चों को भी दिखाये जाते हैं, बहनें भी देखती हैं, पुरुष भी देखते हैं और इस तरह सर्वत्र विषय-बासना का व्यापक प्रचार हो रहा है । इसके खिलाफ बाबा ने आन्दोलन शुरू किया था, पोस्टरों पर डामर (कोलतार) पोतने का काम शुरू किया था, जब बाबा नें इन्दौर में एक महीना निवास किया था। उस वक्त बाबा ने यह आन्दोलन शुरू किया था और उसका कुछ असर भी हुआ था। परन्तु, सरकार को निर्णय करना चाहिए कि इस प्रकार के खराब सिनेमा भारत में नहीं चलेंगे । ऐसा निर्णय करना चाहिए, अगर स्त्री-शक्ति आप खड़ी करना चाहती हैं ।

रशिया में मातृ-गौरव

आप लोगों को शायद मालूम होगा कि रशिया में खराब सिनेमा बनते नहीं। इंग्लैण्ड, अमेरिका वगैरह देशों में खराब सिनेमा बनते हैं, रशिया में नहीं । इसका कारण यह है कि रशिया के पास बहुत ज्यादा जमीन पड़ी है - पूरा का पूरा साइबेरिया - और लोग कम पड़ रहे हैं । इस वास्ते वे लोग संतति को प्रोत्साहन देते हैं और मातृशक्ति का गौरव करते हैं । आज रशिया में

जिस माता को १०-१२ अपत्य होंगे उसका उत्तम माता के तौर पर गौरव किया जाता है और उसे सार्वजनिक तौर पर सम्मान-पत्र दिया जाता है । वहाँ अच्छे सिनेमा क्यों होते हैं, खराब क्यों नहीं होते हैं, इसका यह कारण है। वे मातृ-शक्ति का गौरव करना चाहते हैं और सन्तान की आवश्यकता महसूस करते हैं ।

तो, स्त्री-शक्ति बढ़ाने के लिए समाज में संयम का वातावरण पैदा करना होगा । इसके लिए आवश्यक है कि रद्दी सिनेमा बिलकुल बन्द हों । इसके लिए चाहें तो आप घेराव वगैरह कर सकती हैं, पार्लमेंट के सामने भी कर सकती हैं, और इंदिराजी[१] के घर के सामने भी कर सकती हैं ।

शील मिटा तो देश मिटेगा

आज शहरों की दशा बड़ी ही खतरनाक है । नागपुर, पूना आदि सब शहरों में स्त्रियाँ कहीं अकेली जाती हैं तो पुरुषों के आक्रमण का डर बना रहता हैं । अहमदाबाद में—गांधीजी की नगरी में—भी यह सब चलता है । रास्ते में स्त्रियों को सताने के लिए अंग्रेजी में एक शब्द है—इव-टीसिंग, आदम और इव हो गये । इव को सताना यानी स्त्री को सताना । और इव-टीसिंग का दूसरा अर्थ है इवनिंग के समय । शाम को विद्यार्थी आदि बहनों को सताते हैं । पढ़ी-लिखी लड़कियाँ रास्तों पर चलती हैं, तो लड़के उनके पीछे लगते हैं । यह क्या बात है ? यह जो शील-भ्रंश हो रहा है, जिसमें गृहस्थाश्रम की प्रतिष्ठा ही गिर रही है, उसका विरोध करने के लिए बहनों को सामने आना चाहिए। माताओं को समझना चाहिए कि अगर देश का आधार शील पर नहीं रहा, तो देश टिक नहीं सकता ।

शिवाजी महाराज की सुप्रसिद्ध कहानी है । उनके एक सरदार ने लड़ाई जीती और एक यवन-स्त्री को वे शिवाजी महाराज के पास ले आये । शिवाजी महाराज ने उसकी तरफ देखकर कहा : “माँ, अगर मेरी माता तुझ जैसी सुन्दरी होती, तो मैं भी सुन्दर बनता ।” ऐसा कहकर उन्होंने उसे आदरपूर्वक बिदा किया । ऐसी संस्कृति जिस देश में चली, उस देश में इतना चारित्र्यभ्रंश हो और सब लोग देखते रहें, यह कैसे हो सकता है ?

शोचनीय और लज्जाजनक

इन्दौर में मैंने दीवाली पर इतने भद्दे चित्र देखे कि जिनकी याद से आँखों में आँसू आते हैं । माता-पिता इन चित्रों को कैसे सहन करते हैं ? इससे पहले नौ साल तक मुझे किसी शहर में घूमने का मौका नहीं मिला, इसलिए शहर की हालत मैं जानता नहीं था । लेकिन इंदौर में मैंने जो देखा, उससे मेरा हृदय बहुत ही व्यथित-व्याकुल हो उठा । तभी से मेरे ध्यान में आया कि शील-रक्षा की मुहिम होनी चाहिए और स्त्रियों को शांति-रक्षा और शील-रक्षा का दुहरा काम करना होगा । उसके बिना संस्कृति नहीं टिकेगी । जिस देश की संस्कृति में स्त्रियों के लिए अत्यन्त आदर था, वहाँ ऐसे गंदे चित्र खुलेआम दिखाये जायँ और लड़कों के दिमाग इतने विषय-वासना से भरे हुए हों कि कन्याओं के पीछे लगने में ही उन्हें पुरुषार्थ मालूम पड़े, यह कितनी शोचनीय और लज्जाजनक बात है ! जरा सोचिये कि हम कहाँ जा रहे हैं ?

---

१. इंदिराजी से यहाँ प्रधानमंत्री का अर्थ अभिप्रेत है |

धर्म कानून से ऊँचा है

इंदौर में मैने जो हालत देखी, उससे मुझे लगा कि ये गंदे पोस्टर्स दीवालों पर से हटने हीं चाहिए । यदि कानून से न हटे तो धर्म से हटाना होगा । धर्म कानून से ऊँचा होता है, अधिक होता है । जो कानून धर्म का रक्षण न करता हो, उस कानून को ठीक करने के लिए कानून-भंग करना आवश्यक हो जाता है ।

सत्त्व-रक्षा के लिए पुण्यप्रकोप

फिर मैंने सिनेमावालों को बुलाया और एक समिति बनाकर कहा कि यह समिति जिस पोस्टर को 'अशोभनीय' जाहिर करेगी, उसको हटाना होगा । यदि सिनेमावाले उसे नहीं हटायेंगे तो समिति उसे हटायेंगी । परन्तु सिनेमावालों ने लोभ या दबाववश पोस्टर हटायें नहीं और एक

तारीख तय की गयी और वेदमंत्र के साथ पोस्टर जलाया गया । पोस्टर को जलाना ही चाहिए, ऐसा मेरा आग्रह नहीं है । उसको उतारा जा सकता है, उस पर रंग छिटकाया जा सकता है । उसको ढाँका जा सकता है । परन्तु जलाने में भी कोई हर्ज नहीं । मैंने अपने पिता का शव जलाया है, अपनी कविताएँ जलायी हैं । अग्निनारायण को समर्पित करना तो मंगल कृत्य है । वेदमंत्रों के साथ जलाने पर उसमें धार्मिकता एवं गम्भीरता आने से अशांति का भी कोई कारण नही रहेगा ।

विवेक से बरतें

मैंने 'अश्लील' शब्द का उपयोग नहीं किया । 'अश्लील' तो कहीं भी बरदाश्त नहीं होगा मैं तो 'अशोभनीय' की बात करता हूँ । अश्लीलता का अर्थ देश-काल की दृष्टि से बदलता रहता है । यह संभव है कि यहाँ जो अशोभनीय होगा, वह लंदन में शोभनीय माना जाता हो । भारत में कुम्भ-मेले में साधु लोग लँगोटी पहनकर घूमते हैं । परन्तु कल यदि कोई लन्दन में लंगोटी पहनकर घूमने जायगा तो उसे जेल में डाला जायगा । वैसे तो हम लोगों को भी वह अच्छा नहीं लगता, परन्तु उसे बरदाश्त कर लेते हैं । परन्तु लन्दन में यह नहीं चलेगा । प्रत्येक देश की अपनी-अपनी सभ्यता होती है, अपने-अपने खयालात होते हैं । उसके मुताबिक चलने का सबका अधिकार होता है । तो शोभनीय-अशोभनीय में इस तरह का फर्क हो सकता है । हमारी संस्कृति की दृष्टि से जो चित्र अशोभनीय हों, उन्हें बरदाश्त करना अनुचित है ।

सत्याग्रह नहीं, स्वच्छताग्रह

इसको मैं सत्याग्रह नाम देना नहीं चाहता । मेरे मकान के सामने सूअर की लाश पड़ी हो और उसमें से बदबू आती हो और उसे न तो म्युनिसिपैलिटी हटाती हो, न सूअर का मालिक हटाता हो, ऐसी परिस्थिति में मैं ही उसे हटा दूँ तो क्या वह सत्याग्रह कहा जायगा ? वैसे व्यापक अर्थ में देखा जाय तो सत्याग्रही का प्रत्येक कार्य सत्याग्रह ही है । मेरी यात्रा जो चल रही है, वह सत्याग्रह ही है ।

विषय-वासना की मुफ्त और लाजमी तालीम

एक बात मैं स्पष्ट करना चाहता हूँ । मेरा विरोध अशोभनीय पोस्टर के सामने है । सिनेमा-उद्योग के खिलाफ मैं नहीं हूँ । मैं तो विज्ञान का समर्थक हूँ । इसलिए विज्ञान ने जो साधन दिये हैं, उनको मेरा समर्थन है । अच्छे-अच्छे चित्र प्रकाशित हों, ऐसा मैं जरूर चाहता हूँ । ऐसे कुछ चित्र बाहर पड़े भी हैं । परन्तु मैं विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय चाहता हूँ । उसके बिना दुनिया बचेगी नहीं । इसलिए मैं चाहूँगा कि रात को देर तक सिनेमा-शो न चलें । सिनेमा अच्छे हों और उनका एक ही 'शो' हो । उसमें सत्याग्रह का सवाल नहीं आता है । क्योंकि उसमें तो लोग अपनी इच्छा से, खुद पैसा खर्च करके चित्र देखने जाते हैं । अश्लील चित्र देखना उनके लिए लाजमी नहीं है। परन्तु अशोभनीय पोस्टर तो देखना लाजमी हो जाता है । आज पोस्टर देखा, जिस पर लिखा था 'हनीमून' । अब बच्चा उसको देखकर माँ से नहीं पूछेगा कि 'माँ, हनीमून यानी क्या ?' तो यह लाजमी तौर पर हो जाता है। इसे हम बरदाश्त नहीं कर सकते हैं । बच्चों पर ज्यादा असर उसका पड़ता है, जैसा कि वह बाहर देखता है । खाने बैठता है और चिड़िया उड़ रही है, तो उसका ध्यान फौरन् चिड़िया की तरफ जायगा । भूख लगी है, खाना मीठा भी लग रहा है, फिर भी चिड़िया को उड़ते देखकर उसका ध्यान फौरन् उसकी तरफ चला जाता है । तो बच्चों को मुफ्त में और लाजमी तौर पर इन चीजों का शिकार होना पड़ता है । जिन्हें ये पोस्टर्स पसन्द हैं वे भले ही अपने रंगमहलों में लगायें । परन्तु नागरिकों की आँखों पर आक्रमण करने का किसीको अधिकार नहीं है । मकान की दीवाल का बाहरी हिस्सा नागरिक (सार्वजनिक) जीवन से सम्बन्ध रखता है ।

तो, इन गन्दे चित्रों के ख़िलाफ आवाज उठाने का काम बहनों को ही करना चाहिए । समाज की जड़ें आज उखाड़ी जा रही हैं । जहाँ सारे तरुणों का चित्त केवल विषय-वासना में होगा, वहाँ समाज की बुनियाद ही उखाड़ी जायगी । इसलिए बहनों पर पावित्र्य-रक्षा की जिम्मेवारी है । झगड़ों को रोकना स्थूल कार्य है । बहनों का मुख्य कार्य समाज में पावित्र्य-रक्षा का है । यह काम बहनें करें, तो समाज बचेगा । अन्यथा उत्तरोत्तर गढ़े में जायगा । फिर हम कितनी ही कोशिश करें, तो भी शान्ति नहीं रह सकेगी ।

धर्म की प्रतिष्ठा करना अभी बाकी

अभी तक धर्म बना ही नहीं था, केवल श्रद्धाएँ बनी थीं । ऐसा धर्म नहीं बना था, जिसके विरोध में जाने की किसीकी इच्छा ही न हो । कहा जाता है कि बहुत करके सत्य, अहिंसा लाभदायी है और उस पर न चलेंगे, तो अवश्य हानि होगी, ऐसी निष्ठा और विश्वास मानव के हृदय में अभी तक प्रतिष्ठित नहीं । भले ही हिन्दू, मुसलमान आदि धर्मों के आचार्यों ने धर्म को समझाने की कोशिश की हो, फिर भी वह सफल नहीं हुई । अब विज्ञान का जमाना आया है, अतः सारी दुनिया को अध्यात्म का आधार लेना होगा । पांथिकता खतम करनी होगी । विज्ञान के जमाने में राजनीति और पांथिक धर्म को छोड़ना होगा और आध्यात्मिकता स्वीकार करनी होगी । इसका मूलारंभ शान्ति-रक्षा और शील-रक्षा के कार्य से होगा । हम अगर इस कार्य को उठायेंगे, तो फिर पचासों मसले हल करने की शक्ति भगवान् हमें देगा ।

किसी अमेरिकन ने मुझसे पूछा था कि आप आखिर किसका राज्य चाहते हैं ? तो मैंने उससे कहा था कि मुझे तो किंगडम ऑफ काइंडनेस करुणा का साम्राज्य चाहिए । आज करुणा है, परन्तु वह सत्ता की दासी है । मैं उसे साम्राज्ञी-पद पर बैठाना चाहता हूँ । स्त्रियाँ अगर आगे आकर सारा सँभाल लेंगी, अपने दैवी गुण, संस्कारिता तथा मातृवात्सल्य के साथ जिम्मेवारी उठा लेंगी, तो करुणा का साम्राज्य स्थापित होगा ही । कारुण्य, स्नेह और सेवा स्त्रियों के विशेष गुण हैं।

स्त्रियों के बारे में जब मैं बोलने बैठता हूँ, तो मैं अपना समंत्व उसमें खो भी सकता हूँ । यह विषय ही ऐसा है, जिस पर से बहुत संतुलन के साथ बोल नहीं सकता हूँ । फिर भी मेरे मुँह से इसके अलावा और कुछ बातें हो भी नहीं सकेंगी । पुरुषरचित शास्त्रों में वासना और वैराग्य दोनों के केन्द्र में स्त्री को रखा गया है । उसके लिए जब प्रखर वैराग्यवान् स्त्रियाँ निकलेंगी, जो ब्रह्मविद्या को अपने जीवन में उतारेंगी, धर्मग्रन्थ लिखेंगी और ब्रह्मविद्यामय जीवन जीयेंगी, तब स्त्री-शक्ति जागृत होगी । अब तो मेरे आखिर के दिन हैं। मैं चाहता हूँ कि इन अन्तिम दिनों में मेरी शक्ति स्त्री-शक्ति-जागरण के लिए काम में आये ।

१०. कुछ कार्यक्रम

इन दिनों, जब मैं कुल दुनिया के बारे में सोचता हूँ तो ध्यान में आता है कि अनेक मसले बहुत ज्यादा टेढ़े होते चले जा रहे हैं । मिस्र से लेकर नेपाल तक सबदूर एक व्यक्ति की ही सलतनत चल रही है । या तो किसी मिलिटरीमैन के हाथ में हुकूमत है या राजा के, जो मिलिटरी के ही आधार पर चलता है । यह एक ऐसी घटना दुनिया में हो रही है कि लगभग दो सौ साल से जो प्रयत्न हुआ, उससे उल्टा कदम उठाया जा रहा है । लोकशाही की उल्टी दिशा में, एकतन्त्र की तरफ दुनिया जा रही है । हमारे इर्द-गिर्द यह सब हो रहा है । इसमें जो दोष है, उसे दुरुस्त करना होगा । दोष यह है कि बहुत सारे पुरुष ऐसे हैं, जो पुराने इतिहास में बहे जा रहे हैं, पुराने मन से सोचते हैं । उस मन को छोड़ नहीं पाते । इस जमाने के लिए जरूरी ताजा मन उनके पास नहीं है, इसलिए वह गुत्थी कायम रहती है और सुलझने के बजाय उलझती जाती है । इसमें कोई ताजगी लानी होगी, नया तरीका दाखिल करना होगा, जो नयी शक्ति लायेगा ।

ताजा दिमाग के साथ पदार्पण हो

सर्वोदय-शक्ति ही ऐसी शक्ति हो सकती है, जो बीच में पड़कर सारी गुत्थियों को सुलझाये । लेकिन सर्वोदय-शक्ति को जगाने के लिए ऐसी आत्मा की जरूरत है, जिसने अभी तक सियासत में पड़कर अपना दिमाग खराब न किया हो । यह जब मैं सोचता हूँ, तो मुझे बहनों का स्मरण होता है । उन्होंने अपना दिमाग सियासत में पड़कर अब तक खराब नहीं किया है । उनका दिमाग ताजा है । उसे लेकर वे यदि समाज में आती हैं, तो बहुत-से झगड़े खतम कर सकती हैं । जो आज तक प्रवाह में दाखिल ही नहीं हुई थीं, ऐसी बहनें इसमें आती हैं और अपने ढंग से आती हैं, तो मसले हल हो सकते हैं ।

चिन्तन का तरीका बदलना होगा

अगर स्त्री-शक्ति राष्ट्र-कार्य में लग जाय, तो निश्चय ही राष्ट्र प्रगति करेगा । आज पुरुषों को कुछ सूझ ही नहीं पड़ रहा है । उनको बुद्धि-भ्रम हो गया है । 'जैसे को तैसा' करते-करते आज

वे 'एटम और हाइड्रोजन' तक पहुँच गये हैं। उनकी बुद्धि अब आगे नहीं चलती । पुरुषों की लज्जा का वस्त्र-हरण शुरू हो गया है । उनकी लाज सँवारने के लिए स्त्री-शक्ति को आगे आना चाहिए।

इस वक्त हिन्दुस्तान में जिस ढंग से सार्वजनिक चिन्तन चलता है, वह ढंग बदले बिना हिन्दुस्तान को अपने स्वरूप का दर्शन नहीं होगा । राजनीति का जीवन में एक स्थान अवश्य है और अच्छा स्थान है, फिर भी जिस तरह आज राजनीति को सर्वस्व समझकर हिन्दुस्तान के अखबार और शिक्षित लोग सोचा करते हैं, उससे हिन्दुस्तान का उत्थान नहीं होगा, बल्कि इन दिनों लोकशाही का अर्थ ही अन्योन्य मत्सर हो गया है । इसलिए यद्यपि राजनीति का अपना महत्त्व है, तो भी उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बातें हैं, इसका एहसास इस देश को होना चाहिए ।

पुरुषों ने तोड़ा, स्त्रियाँ जोड़ें

इन दिनों एक नयी कला आयी है । सारे पुरुष पार्टियों में फँसे हैं । अगर कुश्ती जैसा चुनाव खेलना होता तो ठीक था, परन्तु आज तो चुनाव लड़ने की जो बात चली है, उससे तो गाँव-गाँव में आग लग गयी है । अत: अब बहनों को आगे आना चाहिए और पुरुषों से कहना चाहिए कि "तुम जानों अपने झगड़े । हम उनमें पड़ना नहीं चाहतीं । तुम लोग बच्चे हो और हम हैं माता। हम किसी पक्ष में नहीं रहेंगी । हम दिल जोड़ने का काम करेंगी ।" मैं कहता हूँ, जितने पुरुष हैं, वे भले ही अलग-अलग पक्षों में बँटे रहें, पर जितनी स्त्रियाँ हैं, वे कुल की कुल हमारे पास आयें, तो फिर देखें, हिन्दुस्तान का नक्शा कैसे बनता है ।

गांधीजी की अन्तिम इच्छा स्त्रियाँ पूर्ण करें

बहनों पर गांधीजी की बहुत श्रद्धा थी । गांधीजी के कारण हजारों बहनों ने बड़े-बड़े काम किये। उनका दिल गांधीजी के सामने खुलता था। महिलाओं से उन्होंने कितनी आशा रखी थी । श्रीकृष्ण भगवान् के बाद महिलाओं में इतनी ताकत लगानेवाले और उनसे इतनी आशा रखनेवाले बापू ही निकले । उनकी उस आशा का स्पर्श बहनों को हो जाय, तो वे खूब काम कर सकती हैं ।

बापू ने अपने अन्तिम वसीयतनामे में कांग्रेस को लोक-सेवक-संघ बनाने का आदेश दिया था । लेकिन कांग्रेसवाले लोक-सेवक नहीं बन सकते थे, क्योंकि उनके दिमाग में सियासत भरी थी। तो अब स्त्रियाँ आगे आकर कहें कि पुरुषों ने वह सलाह नहीं मानी, लेकिन हम मानेंगी और लोक-सेवक-संघ बनायेंगी, जिसका सारे समाज पर नैतिक असर पड़ेगा, चुनाव पर भी प्रभाव पड़ेगा । शान्ति-सैनिक के नाते, किसी भी पार्टी में फँसकर स्वतन्त्र बुद्धि से समाज का नेतृत्व करने के लिए स्त्रियाँ आगे आयेंगी तब आज की गुत्थियाँ सुलझेंगी और दुनिया को बहुत मदद मिलेगी, ऐसा मेरा विश्वास है ।

जोड़नेवाली शक्ति बनें

यह भी पूछा जाता है कि स्त्रियों को राजनीति में भाग लेना चाहिए या नहीं ? स्त्रियों को राजनीति से उदासीन नहीं रहना चाहिए । उन्हें राजनीति का सूक्ष्म अध्ययन करना चाहिए और राजनीति में क्या-क्या हो रहा है, इसका बराबर निरीक्षण करते रहना चाहिए । स्त्रियों को तो राजनीति को जोड़ने की राजनीति हाथ में लेनी चाहिए । वैसे देखा जाय तो हिन्दुस्तान में संविधान के अनुसार महिला राष्ट्रपति भी बन सकती है और प्रधानमंत्री भी । स्त्रियों के लिए ये सारे स्थान खुले हैं । लेकिन उन्हें किसी भी स्थान पर जाकर पुरुषों का अनुसरण नहीं करना चाहिए । पुरुष पक्ष बनाते हैं और एक-दूसरे से द्वेष बनाते हैं । स्त्रियों को पक्ष नहीं बनाने चाहिए । उन्हें ऐसा निश्चय करना चाहिए कि हम पक्षमुक्त रहेंगे, पक्ष में पड़ने की हमें कोई जरूरत नहीं है । स्त्रियाँ अगर चुनाव में खड़ी होना चाहें तो किसी पार्टी की ओर से खड़ी न हों, बल्कि जनता से यह कहकर खड़ी हों कि “हम स्त्रियाँ हैं, हम सबकी सेवा करेंगी । इस ख्याल से आप हमें चुनना चाहें, तो चुनें । हम वहाँ जाकर निष्पक्ष भाव से सेवा करेंगी। किसी मनुष्य की ओर इस दृष्टि से नहीं देखेंगी कि वह अमुक पक्ष या जातिवाला है। हम सबकी समान भाव से सेवा करेंगी ।” इस तरह उन्हें स्वयं तो पक्ष से परे रहना ही चाहिए, बल्कि पुरुषों से कहना चाहिए कि “खबरदार ! वैर, द्वेष आदि फैलाओगे, तो नहीं चलेगा ।” उन्हें स्वयं पक्ष से परे रहना चाहिए और ऐसी कोशिश रहनी चाहिए कि पुरुषों को भी पक्षों से मुक्ति मिले । स्त्रियाँ मेरी यह सलाह अमल में लायेंगी, तो हिन्दुस्तान

का कलुषित वातावरण निर्मल हो जायगा । किसी भी पक्ष में रहना स्त्री के लिए शोभादायक नहीं है, उसके लिए पक्षातीत रहना ही शोभादायक है, क्योंकि वह मातृशक्ति है। दो बेटे लड़ते हैं तो माँ किसी एक का पक्ष नहीं लेती, दोनों को सँभालती है । एक बाजू में तीस और दूसरी बाजू सत्तर ऐसी कल्पना मातृत्व के खिलाफ है । मातृ-शक्ति में ऐसे टुकड़े नहीं आते हैं, क्योंकि माता तो सबका हित देखती है । एक जमाने में बहुमत पर लघुमत का राज्य था, अब लघुमत पर बहुमत का राज्य है । यह तो केवल प्रत्याघातरूप है। वास्तव में सबका हित ही स्त्री को देखना चाहिए। इस तरह चुनाव स्त्रियों के हाथ में होना चाहिए । पुरुषों की चोटी स्त्रियों के हाथ में देनी चाहिए । परन्तु अब पुरुष चोटी रखते नहीं हैं और स्त्रियों के बाल लम्बे हैं, इसलिए उन्हींकी चोटी पुरुषों के हाथ में रहने का भय है । परन्तु वास्तव में पुरुषों पर स्त्रियों का अंकुश रहना चाहिए।

शराबबंदी जरूरी

स्त्री-शक्ति के लिए और भी एक चीज करनी होगी । आज भारतभर में हमने शराब सबदूर खोल दी है । शराब पीनेवाले पतिदेव घर आकर पत्नी को ठोकते-पीटते हैं । बहनें अपने पतिदेवों से त्रस्त हो गयी हैं । इससे गरीबी तो हटती नहीं, उल्टा जो पैसा मिलता है, वह शराब में बरबाद हो जाता है और बहनों की मारपीट चलती है । शराब के बदले में सरकार को क्या मिलता है ? पैसा ! इसे मराठी में बोलते हैं—पैशाची वृत्ति—पैसेवाली वृत्ति। संस्कृत में इसका अर्थ होता है, पिशाच की वृत्ति।

राजाजी ने अपने प्रान्त में शराबबंदी की थी। वे ९४ साल तक जीये। उनके दीर्घायु का कारण पूछने पर उन्होने कहा था : "मैंने अपने राज्य में शराबबन्दी की है, उसके परिणामस्वरूप यहाँ की गरीब बहनें मुझे आशीर्वाद देती हैं । उनका जीवन अच्छा चला है, उनकी पिटाई होती नहीं । घर में सन्तोष रहता है । उनके उस आशीर्वाद के कारण मैं दीर्घायु हूँ ।"

तो हिन्दू-धर्म और इस्लाम-धर्म ने शराब का निषेध किया है, परन्तु पैसे के वास्ते शराबबन्दी नहीं हो पाती । पैसे को अपना मूल्य तो है नहीं, जो अनाज को है । इस वास्ते तो उपनिषद् ने भी आज्ञा दी है कि '**अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्**'—अन्न को ब्रह्म जान। और इसीलिए '**अन्नं बहु कुर्वीत**

तद् व्रतम्'—अन्न खूब पैदा करो, यह व्रत ले लो। आज देश में अनाज की कमी है । तो मैंने सुझाया कि आप जो जमीन-महसूल लेते हैं, वह अनाज में लें । तो सरकार के पास भी अनाज आयेगा और वह अपने कर्मचारियों को भी थोड़ा अनाज दे सकेगी । एक अच्छी चीज होगी ।

आप पूछेंगे कि इसके साथ स्त्री-शक्ति का क्या सम्बन्ध है ? स्त्रियों को घर में पकाना पड़ता है, बच्चों को खिलाना पड़ता है । उन्हें क्या खिलायें, खुद क्या खायें, यह उनके सामने सवाल आता है। जब तक घर में पूर्ण अनाज न हो, घर समृद्ध न हो, तब तक स्त्री-शक्ति बढ़ नहीं सकती, समृद्ध नहीं हो सकती, इस वास्ते यह होना चाहिए ।

पिकेटिंग करें

शराबबन्दी के लिए लोकमत खड़ा करना, जरूरत हो तो शराब की दूकानों पर पिकेटिंग करना—आदि काम खास करके बहनें उठा सकती हैं । जैसे बापू ने करवाया था । इस प्रकार का सक्रिय आन्दोलन उत्तर प्रदेश में तो करना पड़ेगा, ऐसा स्पष्ट दिखाई दे रहा है ।

मुस्लिम-लॉ में सुधार हो

स्त्री-शक्ति के लिए और भी दो बातें करनी होंगी । मुस्लिम जमात में एक पति तीन-चार पत्नियाँ करता है । हमारा राज्य धर्म-निरपेक्ष कहलाते हुए भी उसमें स्त्रियों को तकलीफ देनेवाला ऐसा विलक्षण कानून है । घर में तीन-चार बहनें हों तो कैसी कलह होती होगी, कैसी-कितनी शान्ति रह पाती होगी, आप सहज कल्पना कर सकते हैं । वे कहते हैं कि इसका कारण है मुस्लिम लॉ (कानून) । लेकिन बाबा इतना बेवकूफ नहीं हैं। बाबा ने कुरान-शरीफ का अध्ययन कम-से-कम तीस साल किया और उसका सार निकाला है रूहुल कुरान । उसमें जो मुख्य चीज है उसे 'उम्मुल किताब' कहते हैं यानी कुरान का मुख्य हिस्सा । भगवान् कैसा है, उसका स्वरूप क्या हैं, उसकी भक्ति कैसे करना, उसके लिए दान-धर्म करना, इत्यादि जो धर्म-विचार है, वह मुख्य है । बाकी जिसे 'कानून' कहते हैं, 'शरीयत', वह उत्तरोत्तर बदलती जाती हे । मुहम्मद पैगम्बर के जमाने में भी बदली है, बाद में भी बदली है । परन्तु हम लोग समझते हैं कि ऐसी माँग मुसलमानों की तरफ से आ जाय तो अच्छा है । कुछ मुसलमानों की तरफ से यह माँग आ भी रही है, हमें

जरा राह देखनी चाहिए । मैं उसके विरोध में नहीं हूँ । ठीक है, थोड़ी राह देखना अच्छा है। परन्तु उनको समझाना चाहिए कि "सब पत्नियों के साथ समान व्यवहार करना अशक्य वस्तु है । इसलिए वह चीज जानी चाहिए।" तब स्त्रियों की ताकत बनेगी ।

भंगी-मुक्ति : अन्त्योदय

भंगी-मुक्ति होगी, तब स्त्री-शक्ति जागेगी। जहाँ-जहाँ भंगी काम करते हैं वहाँ मैला उठाने का काम स्त्रियाँ करती हैं और पतिदेव बैठे रहते हैं गाड़ी पर । अन्दर जाकर मैला लाना, गाड़ी में डालना—सारी नाक बदबू से भर जाती है—यह सारा बहनों का काम ! तात्पर्य यह है कि भंगी लोग बहनों को बराबर दबाते हैं तो स्त्री-शक्ति जगाने के लिए समाज में से भंगी-मुक्ति भी करनी होगी ।

क्रान्तिमूलक कार्यक्रम उठायें

इस प्रकार स्त्रियों की शक्ति समाज-परिवर्तन के काम में लगनी चाहिए । समाज में नये मूल्य दाखिल करने होंगे । समाज की शील-रक्षा, शान्ति-रक्षा, सभ्यता तथा संस्कृति की रक्षा बहनों के द्वारा ही हो पायेगी । बाकी जो मामूली सेवा के काम हैं, वे तो दुनिया में अखण्ड चलते रहेंगे । स्त्रियों की शक्ति क्रान्ति के काम में लगनी चाहिए। अहिंसक समाज-रचना की स्थापना में बहनों का बहुत बड़ा सहयोग मिल सकता है ।

•

११. सामाजिक समस्याएँ

लड़की—पराया धन

आज समाज की हालत यह है कि कन्या पैदा होती है तो कुटुम्बीजन दुःखी होते हैं, चेहता उतर जाता है । हम कहते हैं कि आपकी माँ भी तो कन्या ही थी । अगर सब लड़के ही लड़के पैदा हों, कन्या न हो, तो क्या आप पसन्द करेंगे ? यदि नहीं, माँ और पिता की कीमत समान है, तो लड़के की कीमत अधिक और लड़की की कीमत कम क्यों ? लड़के के हाथ में जायदाद होती है, वह तालीम पाता है, पर लड़की को जायदाद का हक नहीं और वह तालीम भी नहीं पा सकती । कहा जाता है कि पिता के घर में उसे हक है ही नहीं। जब वह पति के घर जायगी, तो उसे हक मिलेगा । अगर लड़की पति के घर न जानेवाली हो, तो पिता की कृपा पर उसका नसीब निर्भर है।

पैसे का प्रेम के साथ क्या सम्बन्ध ?

आजकल तो यहाँ तक कहा जाता है कि भाई-बहन को एक हक दिया जायगा, तो उन दोनों के बीच का प्रेम-भाव घट जायगा। जब भाई को हम देते हैं, तो भाई-भाई के बीच का प्रेम भी खतम होगा। तो फिर ऐसा करो कि बाप मर गया तो सारी इस्टेट विनोबा को दे डालो । कहते हैं, अगर लड़की को हक देंगे, तो धर्म पर हमला होगा । जरा दक्षिण में जाकर देखें, तो मालूम होगा कि वहाँ तो स्त्री-प्रधान समाज है । अगर यह होता कि लड़की को पिता के घर में हक नहीं है, तो लड़की में पिता के गुण प्रकट न होते। पर कई लड़कियाँ हमने ऐसी देखी हैं कि जिनमें पिता का रूप उतरा है । लड़की में पिता का रूप आता है, पिता के गुण आते हैं । ऐसी हालत में उन्हें हक न देने के मानी क्या होते हैं ? यही पुरुष सारी सम्पत्ति अपने हाथ में रखना चाहते हैं और स्त्री पर अपना अंकुश रखना चाहते हैं । कहते हैं कि अंकुश रखना जरूरी है | यह बताने के लिए ये लोग धर्म का सहारा लेते हैं । हम कहते हैं कि अगर भला चाहते हो, तो 'किताबें डाल पानी में ।

अच्छा घर किसे कहें ?

माता-पिता चाहते हैं कि लड़की अच्छे घर में जाय । अच्छे घर के क्या लक्षण ? क्या जिस घर में पानी न खींचना पड़े ? जहाँ पानी भी नहीं खींचना पड़ता वहाँ उसे अनाज भी नहीं पचता और डाक्टरों के बिल भरने पड़ते हैं।

पार्वती ने कहा था कि मैं तो शंकर को ही वरूँगी । बड़े-बड़े ऋषि-महर्षियों ने कहा कि शंकर फकीर है, वहाँ जाकर क्या करेंगी ? किसी अच्छे घर में जाना । पर उसने तो कहा कि मुझे उसीके यहाँ जाना है ।

रामायण में भी एक कहानी है । अच्छी है । सुनने लायक है । रामजी को वनवास हुआ, तो सीताजी ने कहा : "मैं भी जाऊँगी ।" उसे ऐसे जीवन की आदत तो नहीं थी, पर उसने निश्चय कर लिया कि जहाँ रामजी, वहाँ मैं । पर जब कौशल्या ने सुना, तो बोली : "राम जायगा और सीता भी जायगी ! सीता का कैसे होगा ? मैंने तो उसे दिये की बत्ती भी जलाने नहीं दी ।" याने वहाँ भी काम की प्रतिष्ठा नहीं मानी गयी । इसमें अच्छाई भी है कि श्वशुर के घर लड़की गयी, तो उसे बेटी की तरह माना, पर मेहनत को हीन माना, यह इसमें स्पष्ट है ।

शादी—जिन्दगीभर की बरबादी

शादी में दहेज दिया जाता है । यानी आपने जहाँ लड़की दी, वहाँ इसके साथ थोड़ा-सा सुवर्ण इत्यादि देना होता है । उस पर किसीका हक नहीं माना जाता, वह 'स्त्री-धन' माना जाता है । मैं ऐसे दहेज के खिलाफ नहीं हूँ । मैं लहेज के खिलाफ हूँ । लड़के ने एम० ए० की परीक्षा पास की, उसमें इतना खर्च आया, वह लड़कीवालों से लेना । हमारे एक साथी के घर शादी थी, छोटे व्यापारी थे । वे मेरे पास आशीर्वाद माँगने आये । मैंने कहा, ठीक है, संयम से रहो, प्रेम और सेवाभाव से रहो, आशीर्वाद है बाबा का । फिर मैंने पूछा, शादी में कितना खर्च करोगे ? एक हजार! उन्होंने पाँच अँगुलियाँ दिखायीं। मैंने कहा : पाँच हजार! बोले, नहीं, पाँच लाख! अब क्या कहा जाय ! कहाँ रहेगी, स्त्री-शक्ति इसमें ! एक शादी यानी जिन्दगीभर की बरबादी! तो ऐसे

लहेज का विरोध करना होगा । उस वास्ते स्त्रियों को भी समझाते रहना चाहिए, तब स्त्री-शक्ति खड़ी होगी ।

तिलक-दहेज लेना अधर्म

लोग कहते हैं कि लड़की की शादी नहीं होती । क्या लड़के नहीं हैं या लड़कियाँ नहीं हैं ? लड़के लड़की को चाहते हैं, लड़कियाँ लड़कों को चाहती हैं । तो मुश्किल क्या है ? तिलक-दहेज देना पड़ता है । बिना पैसे के कोई बात है ही नहीं । यहाँ तक होता है कि लड़की को लड़का पसन्द होता है, लड़के को लड़की पसन्द होती है । लेकिन कहते हैं कि मेरा लड़का एम० ए० है, पाँच हजार रुपये में शादी नहीं होगी । एक भाई का हमें पत्र आया था । उसके नाम के पीछे कोई १०-१५ अक्षर जुड़े थे । तो डिग्री के ये इंजन ही लग गये । इतने इंजन के बिना जो डिब्बा हिलता नहीं, वह तो जड़ पुतला बन गया । लंदन जाकर डिग्री ले आये | तो आप क्या समझते हैं, पाँच हजार में शादी होगी ? भाव बढ़ेगा | यहाँ तो लड़का बेचा जाता है । जैसे बाजार में बैल बिकता है वैसे लड़का बेचा जाता है। यह कोई धर्म-कार्य है ? शास्त्रों का आधार लेते हैं, वेद भगवान् के मन्त्रों को तकलीफ देते हैं । और फिर भी बाजार जैसी बातें चलती हैं। कितना अधर्म है ? ऐसे अधर्म करते हैं और फिर भी बोलते हैं कि हम दु:खी हैं । जहाँ अधर्म है, वहाँ भगवान् दु:ख देगा ही ।

फी शादी एक कुआँ

शादी में तिलक-दहेज न दिया जाय । बल्कि गाँव में कुआँ खोदा जाय। फी शादी एक कुआँ, यह सिलसिला रहा, तो चालीस-पचास साल में १८ करोड़ कुएँ खुद जायेंगे। याने पचास साल में इंच-इंच जमीन तरी की बन जायगी। भगीरथ तो स्वर्ग से गंगा उतार लाये। आप लोग पाताल से सरस्वती लाओ— कुआँ खोदना शादी का एक हिस्सा समझो। जब एक कुआँ खोदने की तैयारी न हो, उतना पैसा भी जमा न हों, तो शादी मत करो ।

तलाक में उदारता बरतें

पति-पत्नी में अन्याय, अत्याचार, अनाचार और परस्पर द्वेष होता है, तो उससे बच्चों को तकलीफ होती है । इस हालत में उन्हें तलाक का हक हो तो कोई हर्ज नहीं । सारा धर्म स्वेच्छा

पर खड़ा है, कानून पर नहीं । धर्म आज्ञा देनेवाला नहीं, अनुज्ञा देनेवाला है । इसलिए विशेष परिस्थितियों में तलाक का अधिकार देना उचित माना जायगा। इस पर यदि कोई यह कहे कि 'इससे तो बहुत सारे लोग तलाक देने लग जायेंगे', तो यह मानना धर्म के लिए ठीक नहीं । हाँ, तलाक के लिए कुछ कारण रखने चाहिए । मूल विचारों को कायम रखते हुए उदार बुद्धि रखकर तलाक को मान्यता देनी चाहिए।

परदा परदेशी चीज

परदा अपने देश में था नहीं, वह मुस्लिमों के साथ आया । दूसरे का अच्छा रिवाज अपनाने में कोई हर्ज नहीं, लेकिन परदे का रिवाज तो बहुत ही बुरा है । इसमें कोई अक्ल की बात नहीं। यदि इसी तरह समाज बरतेगा, तो आजादी टिकेगी नहीं । मुसलमानों को भी अब परदा छोड़ना होगा । मैंने अजमेर में दरगाह शरीफ में मुसलमानों की सभा में कहा था कि यहाँ पर कोई स्त्री दिखायी नहीं देती । अल्लाह की मसजिद में भी स्त्री-पुरुष का भेद क्यों ? आपको परदा छोड़ना ही पड़ेगा। जिस समाज में बहनें परदे में रहेंगी, वह समाज कभी प्रगति नहीं करेगा । उन्होंने मेरा कथन प्रेम से सुन लिया, क्योंकि यह सत्यविचार है। इराक, मिस्र आदि देशों में अब परदा हट रहा है ।

परदे के बाहर आओ

स्त्रियों को यदि शक्तिशाली बनना है तो उनको परदे से बाहर लाना चाहिए। परदा उनकी शक्ति को बहुत ज्यादा रोकनेवाली चीज है। खास करके राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार में मुसलमानों के कारण एक रिवाज चल पड़ा है। वह इतना विलक्षण है कि एक बार शादी हो गयी, और घर के अन्दर पैठ गयी, फिर घर के आँगन में भी नहीं आ सकती । केवल एक ही किताब— तुलसी-रामायण पढ़ती हैं । संतोष से रहती हैं । बच्चों को भी रामायण सुनाती हैं और घर का काम करती हैं। सवाई अरविन्द है। अरविन्द घोष हो गये। वे २५-३० साल एक ही कोठरी में रहे थे । ये स्त्रियाँ तो जिन्दगीभर एक कोठरी में रहती हैं, तो वे 'सवाई अरविन्द' हैं । उनको बाहर

लाना हो तो परदा हटाना होगा। उनको समझाना होगा कि आपको घर के बाहर आना चाहिए । अन्यथा समाज के काम में आधी ताकत काम में लगेगी ।

इसके आगे स्त्रियों की दुनिया है । जब तक सेना का मुख्य आधार था, तब तक पुरुषों का ही राज चल सकता था । परन्तु इसके आगे, दुनिया धीरे-धीरे शस्त्र-परित्याग की तरफ आ रही है और कुल दुनिया में अहिंसा का राज होनेवाला है । उस अहिंसा-शक्ति को खड़ी करने में स्त्रियाँ ज्यादा कामयाब होंगी । इसके आगे का युग अहिंसा का है, यानी स्त्रियों का है । इसलिए स्त्रियों को परदे के बाहर आना चाहिए । तब स्त्री-शक्ति जाग उठेगी।

स्त्री के सभी धन्धे छीने गये

जैसे शहर के लोग देहात के धन्धों को हथिया रहे हैं, वैसे ही पुरुषों ने स्त्रियों के धन्धे हथिया लिये हैं । पहले पुरुष खेती करते थे और स्त्रियाँ बुनाई करती थीं । वेदों में जहाँ-जहाँ बुनाई का उल्लेख आया है, वहाँ-बहाँ बुननेवाली (वयन्ती) शब्द ही आया है । '**वस्त्राणि पुत्राय मातरो वयन्ति** ।' 'वयन्तीनाम्' यानी बुननेवाली । अंग्रेजी में भी पुरुष के लिए 'हसबैंड' (Husband) यानी पति किसान और स्त्री के लिए 'वाइफ' (Wife) यानी बुननेवाली (Weave पर से) शब्द है । परन्तु आगे चलकर बुनाई पुरुषों ने शुरू कर दी और स्त्रियों को कांडी भरने का काम दे दिया । यानी मुख्य कार्य पुरुषों के हाथ में रहा और गौण काम स्त्रियों के हाथ में रह गया । कांडी भरने के लिए अधिक स्त्रियों की जरूरत होती है, इसलिए बुनकरों में एक से अधिक पत्नी रखने की प्रथा चल पड़ी। इस तरह स्त्रियों को गौण स्थान मिला । आश्रम के सरंजाम कार्यालय में चरखे बनते थे, तो उसकी पेटी पर पालिश करने के लिए स्त्रियों को रखा । सुतार (बढ़ई) सभी पुरुष थे । मैंने पूछा : 'वह काम पुरुषों के बदले स्त्रियों के लिए रखना चाहिए । उनमें कला और सुन्दरता का विचार होता है । उससे स्त्रियाँ स्वावलम्बी बनेंगी । इसलिए जो काम स्त्रियों के लिए रखा गया था, वह छीन लिया गया ताकि वे पुरुषावलम्बी बनें। पहले सिलाई का काम स्त्रियों के हाथ में था, परन्तु अब सिलाई की मशीन आने के बाद वह कार्य भी पुरुषों की तरफ ही चला गया है । यन्त्र के लिए मेरी कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु स्त्रियों का काम स्त्रियों के ही हाथ में रहना चाहिए । यों

भोजन बनाने का काम स्त्रियों का माना जाता है, परन्तु होटल खुलने के बाद यह धन्धा भी पुरुषों के हाथ में चला गया है । मेरा मत है कि जो काम स्त्रियों के लिए करना शक्य हैं, वे उन्हींके लिए रहने चाहिए । इससे उनकी स्वतन्त्र प्रतिष्ठा रहेगी । अन्यथा सारे काम पुरुषों के हाथ में चले जायेंगे और स्त्रियों को सदा-सर्वदा के लिए पराधीन, पुरुषाधीन रहना होगा । स्त्रियों का पराधीन रहना उचित है, ऐसा अगर पुरुष मानते हैं तो मैं पुरुषों से कहूँगा कि आप एक गारण्टी दें कि समस्त बच्चों के बड़े होने तक हम मरेंगे नहीं। लेकिन आप लोग चाहे जब मर जाते हैं और फिर सारी जवाबदारी स्त्रियों पर आ पड़ती है । ऐसी स्थिति में जैसे देहात के लोगों के लिए कुछ धन्धे छोड़ देने पड़ते हैं वैसे ही स्त्रियों के लिए भी कुछ धन्धे छोड़ देने चाहिए ।

स्त्रियों के कुछ धन्धे सुरक्षित रखे जायँ

खेती, बढ़ईगिरी, बुनाई, सिलाई आदि काम स्त्रियाँ अच्छी तरह कर सकती हैं । आजकल जिस प्रकार मशीनों ने ग्रामोद्योगों पर आक्रमण किया है, शहरों ने गाँवों पर आक्रमण किया है, उसी प्रकार पुरुषों का भी स्त्रियों पर यह एक तरह से आक्रमण हुआ है । मैं यह नहीं कहूँगा कि पुरुषों ने जान-बूझकर स्त्रियों से धन्धे छीने हैं । स्त्रियाँ कुछ कलात्मक काम पुरुषों से अधिक भी कर सकती हैं । चित्रकला, कताई आदि कलात्मक तथा सामाजिक काम स्त्रियाँ विशेष रूप से कर सकती हैं । पुरुष उसमें अधिक न पड़ें, तो स्त्रियाँ स्वावलम्बी बन सकती हैं ।

प्रश्न : नीति की कल्पना के कारण स्त्री शुरू से ही घर के बाहर कदम नहीं रख सकती, तब क्या किया जाय ?

विनोबा : नीति के सम्बन्ध में स्त्रियों में 'सुपीरिआरिटी काम्प्लेक्स है। लगता है कि उनमें यह पुरुषों ने ही पैदा किया है । किसी माँ को अपने लड़के के बिगड़ने की खबर से जितना दुःख होगा, उससे अधिक लड़की के बिगड़ने की खबर से होगा । अर्थात् पुरुषों के बारे में स्त्रियों के मन में 'हीन-कल्पना' होती है । पुरुषों के बुरा काम करने पर स्त्रियाँ प्रायः कह देती हैं कि 'वह पुरुष ही है ।' स्त्रियों को नीतिमत्ता का जो अभिमान है, वह सही है । जैसे हम किसी जानवर के बारे में कह देते हैं कि 'वह जानवर ही तो है', वैसे ही स्त्रियाँ भी पुरुषों के बारे में कह देती हैं । हिन्दुस्तान

में कानूनन बीड़ी पीने का अधिकार होने पर भी कितनी बहनें बीड़ी पीती हैं ? कानूनन कितनी ही छूट होने पर भी स्त्रियाँ पुरुषों जितनी व्यसनी नहीं होतीं । कुछ जातियों में ऐसी प्रथा है कि पुरुष मांस खाते हैं, पर स्त्रियाँ नहीं खातीं और पकाकर भी नहीं देतीं । जो पुरुष कभी भी रसोई नहीं बनाते, उन्हें ऐसी स्थिति में कहीं अन्यत्र जाकर स्वयं पकाकर मांस खाना पड़ता है । इस तरह स्त्रियों में एक प्रकार की धर्म-रक्षण की वृत्ति है । पश्चिम की शिक्षण-पद्धति में कुछ गुणों के होते हुए भी उसमें समत्व की मूढ़ कल्पनाएँ हैं । वस्तुतः भारतीय संस्कृति में ऐसी बात नहीं है और आनेवाली भी नहीं है । हम सबको उत्तरोत्तर शुद्ध होते जाना है । स्त्रियों के पास जो नैतिक अधिकार हैं, उन्हें गँवा देने में उनका लाभ नहीं है ।

वर्ण-व्यवस्था में स्त्री की श्रेष्ठता

वर्ण-व्यवस्था में भी, अनजान में ही सही, एक प्रकार की विषमता मान ली गयी थी । पुरानी कल्पना के अनुसार अनुलोम विवाह हो सकता था । यानी उच्च वर्ण का पुरुष अपने से निम्न वर्ण की स्त्री से सम्बन्ध कर सकता था। प्रतिलोम विवाह नहीं हो सकता था यानी उच्च वर्ग की स्त्री अपने से निम्न वर्ण के पुरुष के साथ विवाह नहीं कर सकती थी । इसमें स्त्रियों की श्रेष्ठता मान्य ही की गयी है । ऐसी मान्यता थी कि ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ, क्षत्रिय उनसे जरा नीचे, वैश्य उनसे नीचे और शूद्र उनसे भी नीचे हैं । लेकिन स्त्री तो पुरुष से भी श्रेष्ठ थी । याने कोई स्त्री ब्राह्मण हो, तो वह अत्यन्त श्रेष्ठ होगी। ऐसी हालत में वह क्षत्रिय पुरुष से विवाह नहीं कर सकेगी । किन्तु कोई क्षत्रिय स्त्री हो, तो वह श्रेष्ठ होने से ब्राह्मण पुरुष से विवाह कर सकती थी । इस मान्यता में स्त्री की श्रेष्ठता गृहीत है । इसमें कहीं गलती नहीं हुई है । संतान का संगोपन करने और कोख में रखने की जवाबदारी जिस व्यक्ति पर है, वह जवाबदारीरहित व्यक्ति से श्रेष्ठ ही है । सन्तान-व्यवहार गृहीत होने पर आध्यात्मिक दृष्टि से स्त्री की पुरुष की अपेक्षा श्रेष्ठता मान्य करने पर पुरुषों को लड़ना नहीं चाहिए । स्त्रियों को अपनी श्रेष्ठता का अभिमान नहीं रखना चाहिए, पर उसे जानना चाहिए और पुरुष-वर्ग को मर्यादा में लाना चाहिए।

समाजशास्त्रियों की ऱ्हस्व-दृष्टि

कुछ समाजशास्त्रियों के स्थूल विचार होते हैं। उनका आध्यात्मिक विचारों (मूलभूत मूल्यों) से कोई सम्बन्ध नहीं होता । जैसे हिन्दुस्तान में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की संख्या अधिक है । इसलिए समाजशास्त्रकारों ने कहा कि स्त्रियाँ यदि ब्रह्मचारिणी रहने लगेंगी, तो अधिक पुरुष स्त्री-विहीन रहेंगे और फिर समाज में आपत्ति आयेगी । अत: स्त्रियों को विवाह करना ही चाहिए। इस तरह वे स्त्रियों के ब्रह्मचर्य के प्रतिकूल और पुरुषों के ब्रह्मचर्य के अनुकूल हैं । पुरुषों का ब्रह्मचारी रहना ठीक ही है, क्योंकि स्त्रियों की संख्या कम है। अगर सारे पुरुष विवाह करने लगेंगे, तो उनमें स्पर्धा निर्माण होगी, इसलिए समाजशास्त्र की दृष्टि से कुछ पुरुषों का ब्रह्मचारी रहना इष्ट ही है । हिन्दुस्तान में जो बहुपत्नीत्व आया, वह धन्धों के कारण आया, हिन्दू-धर्म ने उसे उत्तम कभी नहीं माना ।

स्त्रियों ने पुरुषों को निम्नकोटि का इसलिए भी माना कि गलत पाँव रखने का परिणाम स्त्रियों को ही अधिक भुगतना पड़ता है, अत: स्त्रियों ने यह तय किया कि हमें ज्यादा सावधान रहना चाहिए। ऐसा तय करना उचित ही है।

नहि असत्य-सम पातक पुञ्जा

'रक्षा-घरों' (रेस्क्यू होम्स) की स्त्रियों का पुनर्वास कैसे किया जाय ? इस विषय में मेरा मत क्रांतिकारक है । मैं सारे धर्मों में सत्य को श्रेष्ठ धर्म मानता हूँ और सबसे बड़ा अधर्म असत्य है । व्यभिचार भी असत्य जितना बड़ा नहीं । परन्तु इधर असत्य को गौण महत्त्व देकर व्यभिचार, हत्या आदि को बड़ा पाप माना जाने लगा है । परिणाम यह है कि सारे पापों को छिपाने का प्रयत्न किया जाता है । इस कारण सुधार हो नहीं पाता। हम रोग को छिपाते नहीं हैं, क्योंकि हम चाहते हैं कि रोग दूर हो और लोगों की मदद भी हमें मिले । इसी प्रकार हमसे अगर कोई नैतिक गलती हो जाय, तो माता-पिता और मित्रों को बताना चाहिए और कहना चाहिए कि मुझे सँभालिये, ठीक कीजिये । किन्तु आजकल ऐसी गलतियों को छिपाने की प्रवृत्ति है, क्योंकि प्रकट करने पर व्यक्ति के प्रति घृणा पैदा होती है । महारोगी अपना रोग छिपाते हैं, क्योंकि समाज में उसके प्रति घृणा

है। लेकिन उसका परिणाम यह होता है कि रोग समाज को तुरंत मालूम नहीं होता, बहुत बढ़ जाने पर वह ठीक भी नहीं हो सकता । अगर पहले ही बता दिया जाय, तो रोग दुरुस्त हो सकता है । अतः नैतिक पापों को भी छिपाना नहीं चाहिए । छिपाने से सबसे बड़ा पाप जो असत्य है, वह कमजोर पड़ जाता है ।

पाप के प्रति घृणा नहीं, दया

इसलिए ऐसा समाज बनाना चाहिए, जिससे हम पापों को घृणा का विषय नहीं मानेंगे । किसीके हाथ से गलती होने पर जैसे हम उसे ठीक करते हैं, उसके प्रति दया दिखाते हैं, वैसी ही भावना पाप के सम्बन्ध में भी होनी चाहिए । सत्य की महिमा बढ़ानी चाहिए और समझना चाहिए कि असत्य सबसे बड़ा पाप है।

इसी प्रकार छोटे बालकों से गलती होने पर उन्हें मारना नहीं चाहिए । बीस वर्ष तक की उम्र तक के लड़कों की नैतिक गलतियों को खेल की गलतियाँ ही समझें । अगर समाज में गलतियों को छिपाने का प्रयत्न होगा, तो अँधेरे में पाप अधिक होंगे । इसलिए 'रक्षा-घरों' में जानेवाली बहनें दया की पात्र हैं, घृणा की नहीं—यह ध्यान में रखकर ही काम करना चाहिए ।

भगायी हुई बहनों का स्वीकार हो

पिछले सालों में हिन्दू-मुसलमानों के संघर्ष में एक-दूसरे ने एक-दूसरे की बहनें भगायीं । बाद में जब उन्हें छुड़ाने का प्रयत्न शुरू हुआ, तब मुसलमानों ने तो अपनी बहनों को स्वीकार कर लिया, पर हिन्दुओं ने स्वीकार नहीं किया । उनसे कहना पड़ा कि वे स्वीकार करें । इसमें हिन्दुओं की दृष्टि गलत थी। ये बहनें अपनी इच्छा से नहीं गयी थीं, जबर्दस्ती भगायी गयी थीं । ऐसी हालत में उनको वहाँ बच्चे हो गये, तो भी उन्हें पतिता न माना जाय—यह सब हिन्दुओं को समझाना पड़ा । यह अनुदार वृत्ति दूर होनी चाहिए । जिस प्रकार रोगियों के दवाखाने चलते हैं, उसी प्रकार 'रेस्क्यू होम्स' भी दया के विषय समझकर चलाये जायँ ।

बांग्ला देश में हजारों स्त्रियों पर आक्रमण हुआ । इसमें स्त्रियों का कोई भी दोष मैं मानूँगा नहीं । उनकी संतान को योग्य सन्तान मानूँगा और उन स्त्रियों को सर्वथा दोष-मुक्त मानूँगा । आजकल लड़ाइयों में एक शब्द चला है—'वार बेबीज' । लड़ाई में स्त्रियों पर अत्याचार होते हैं । उसमें से जो संतान पैदा होती है, उसे 'युद्ध-संतान' (War Babies) कहते हैं और वह जायज माना जाता है । युद्ध के साथ यह होता है, ऐसा माना जाता है । बांग्ला देश में पुरुषों की तरफ से जो पशुता प्रकट हुई, वह अत्यन्त घृणास्पद थी । सुना है कि वहाँ हजारों स्त्रियाँ गर्भिणी हो गयीं । पाकिस्तान की सेना ने वहाँ कत्लें कीं, यह तो मैं समझ सकता हूँ । वह पाप कम है, लेकिन यह पाप ज्यादा है । ऐसे काम में ईसाई लोग हमेशा सेवा के लिए आगे आते हैं । हिन्दुओं की कल्पना होती है कि ये बच्चे तो व्यभिचार से पैदा हुए हैं । लेकिन यह ख्याल गलत है । उन स्त्रियों को मैं निर्दोष मानूँगा और उनकी सन्तान को जायज मानूँगा । उन स्त्रियों को तथा बच्चों को समाज में स्थान देना चाहिए।

प्रश्न : शील-रक्षण और नैतिकता को लेकर बहनों पर जो अनेक प्रतिबंध लगे हैं, क्या वे उनकी स्वतन्त्रता को स्रीमित नहीं कर देते हैं ? यदि कोई सामाजिक, नैतिक बंधन जरूरी हैं तो वे स्त्री और पुरुष, दोनों पर समान रूप से लागू क्यों न होने चाहिए ?

उत्तर : सामाजिक, नैतिक इत्यादि जो बंधन हैं, वे स्त्री-पुरुष सब पर समान रूप से लागू होने चाहिए । और इस विषय में कम-से-कम हमारे धर्म-शास्त्रों ने कोई भेद नहीं किया है । बल्कि एक जगह यह भी आया है उपनिषद् में कि '**मे जनपदे**····**न स्वैरी स्वैरिणी कुत**'—मेरे राज्य में कोई स्वैरी नहीं, तो स्वैरिणी कहाँ होगी ? इसका मतलब स्त्रियाँ व्यभिचारी कम होती हैं । व्यभिचार की प्रेरणा पुरुषों में ज्यादा होती हैं । इस वास्ते व्यभिचार की जिम्मेवारी पुरुषों पर डाली, स्त्री पर नहीं । यह अनुभव है, ऋषि-मुनियों का भी, कि जो आक्रमण हुए हैं, वे सारे पुरुषों के द्वारा हुए हैं । इस वास्ते नैतिक बंधन पुरुषों पर ज्यादा होना चाहिए ।

आपके देश (भारत) की बागडोर एक स्त्री के हाथ में है । इंदिराजी के हाथ में जितनी सत्ता है, उतनी सत्ता और किसी देश के प्रधानमंत्री के हाथ में नहीं है । नंबर दो, कोलंबो की प्रधानमंत्री

एक स्त्री है । नंबर तीन, इस्राइल की प्रधानमंत्री भी एक स्त्री है । भारत में स्त्री प्रधानमंत्री बन सकती हैं, राजदूत बन सकती है, प्रोफेसर बन सकती है । उसको वोट देने का अधिकार है। इस प्रकार कानूनी तौर पर जितना अधिकार स्त्रियों को हो सकता है, उतना सब भारत में स्त्री को है । परन्तु जब तक स्त्रियाँ सन्तान की जिम्मेवारी उठाती हैं, तब तक उनको घर के अन्दर रहना पड़ेगा । नौ माह गर्भ और बाद में बच्चें का पालन । फिर दुबारा वही । ऐसा उनका चलता है कार्यक्रम । उस कार्यक्रम के अन्दर यह कहा जाय कि स्त्रियाँ प्रोफेसर भी बनें या और दूसरा काम करें, तो वह बिलकुल जुल्म की बात । संतान के पालन की इतनी बड़ी जिम्मेवारी उसने उठायी है, इसलिए आजीविका की जिम्मेवारी उस पर नहीं होनी चाहिए ।

एक दफा एक बहन ने मुझसे पूछा कि हम ग्रामदान के काम में कैसे सहयोग दें । मैंने कहा कि आप अपने लड़के की उत्तम सेवा करें तो बाबा के ग्रामदान में आपकी पूरी मदद मिलेगी । फिर जितना समय बचेगा उतने में आसपास के लोगों से प्रेम से बात करें, सत्साहित्य पढ़ें । बाबा घूम रहा है, यह अत्यन्त आसान कार्य है । उस हिसाब से, बच्चे को पेट में रखना, उसका पालन-पोषण करना अत्यन्त कठिन काम है । बाबा की माँ ने यह कार्य न किया होता तो ग्रामदान का काम न हुआ होता । इस वास्ते स्त्री स्वातन्त्र की अधिकारी नहीं, इसका अर्थ अपनी आजीविका की जिम्मेवारी उस पर न डालें ।

तात्पर्य, स्त्री को जो पुरुषों से कम मुक्तता है, वह इस कारण है कि स्त्री माता बनती है । वह जब तक जारी रहेगा, तब तक यह रहेगा । बल्कि आध्यात्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, न्यूनता स्त्री के बारे में भारत में नहीं है। अब स्त्री को उठाना है, तो स्त्री को ब्रह्मचर्य सिखाना होगा । मीरा, मुक्ता, महादेवी, अक्का आदि ने व्यक्तिगत रूप से ब्रह्मचर्य की साधना की । अब सामूहिक तौर पर स्त्रियाँ ब्रह्मचर्य की साधना करें, तब काम हो सकता है ।

.

१२. आत्मनिर्भर बनें

यह मान्यता सैकड़ों वर्षों से चली आ रही है कि स्त्रियों की रक्षा का भार पुरुषों पर है । परन्तु जब तक यह मान्यता कायम रहेगी तब तक सही अर्थ में स्त्रियों की रक्षा होना असम्भव है । स्त्री की रक्षा की जरूरत है, ऐसा मानना गलत है । फिर भी माना तो यही गया है, क्योंकि उसके पास हिंसा के पर्याप्त साधन नहीं हैं । हिंसा के क्षेत्र में तुलनात्मक दृष्टि से वे पुरुष की अपेक्षा कमजोर पड़ जाती हैं । किसीने यह नहीं सोचा कि वे स्वरक्षित हों । इसी कारण वे पुरुषों द्वारा रक्ष्य समझी गयी हैं । इसमें प्रत्यक्ष ही हिंसा की प्रतिष्ठा को मान्य किया गया है । परन्तु आज की परिस्थिति तो हमें साफ-साफ कह रही है कि जरूरत यह है कि प्रतिष्ठा हिंसा की नहीं, अहिंसा की होनी चाहिए ।

आत्मबल से रक्षा करें

हमें यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि आत्मा के बल पर हर परिस्थिति में स्त्री अपनी रक्षा करने में समर्थ है । शरीर-बल पर अवलम्बित रहने की अपेक्षा आत्मा के बल पर जीने की कला हम सभी को सीख लेनी चाहिए । मैं तो मानता हूँ कि जिसे जीवनभर सेवा करनी है, उसे आत्मज्ञान अवश्य ही समझ लेना चाहिए । आज आत्मज्ञान शब्द हमें बहुत भारी लगता है । परन्तु यह वस्तु इतनी सरल और आसान है कि एक छोटा-सा बच्चा भी इसे समझ सकता है । गणित का विषय शायद मुश्किल है, परन्तु आत्मज्ञान तो गणित से भी आसान है । वर्डस्वर्थ की एक कविता है—वी आर सेवन अर्थात् हम सात हैं । कविता में एक लड़की अपने मरे हुए भाई की गिनती जिन्दों में करके कहती हैं कि हम सात हैं । आत्मा की अमरता का भाव उसे सहज है।

देह-परायणता से भय

यह वस्तु समझना कठिन इसलिए है कि आज हमारा सारा जीवन शरीर-प्रधान बन गया है । सौन्दर्य के बारे में या बल के बारे में भी हमारी दृष्टि शरीर-प्रधान ही है । जब तक शरीर-

परायणता बनी रहेगी, तब तक स्त्रियों के चित्त में भी सदा भय बना ही रहेगा । जुल्म करनेवालों ने लोगों की इस शरीर-परायणता का बहुत अधिक लाभ उठाया है । इसीसे भय पैदा हुआ है ।

हर स्त्री सीता बने

जब तक मनुष्य को भय का स्पर्श नहीं होता, उससे कभी पाप नहीं होगा । इसलिए निर्भयता सबसे बड़ा गुण है । बच्चों के दिल में हमें यही अंकित कर देना चाहिए कि उनको कोई कितना ही मारे तो भी मार के भय से वे एक न सुनें । ऐसा करने से ही हमारे दिलों में अहिंसा का विकास होगा । रामायण में हम सीता का वर्णन पढ़ते हैं । रावण उसे ऐसी बातें कहता है, जिससे सीता को रोष आता है । परन्तु वह उससे एक अक्षर भी नहीं बोलती थी । केवल एक बार बोली । सो भी घास का एक तिनका बीच में रखकर । इसके द्वारा उसने रावण को यह दिखाने का प्रयत्न किया कि मैं तुझे इस घास के तिनके के बराबर समझती हूँ । रावण उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सका । हमें नहीं मानना चाहिए कि सीता का उदाहरण असामान्य है । अगर ऐसी बात होती तो यह उदाहरण हमारे सामने क्यों रखा जाता ? कांग्रेस की अध्यक्षा अवश्य ही हर स्त्री नहीं हो सकती । परन्तु सीता तो जरूर हर स्त्री हो सकती है। क्योंकि यह आत्मा का विषय है । आत्मबल पर निर्भय मनुष्य की आँखों में एक प्रकार का तेज होता है । उसका असर दूसरों पर अवश्य ही पड़ता है। इस तेज को पशु भी पहचान लेते हैं ।

जीवन का महान् सिद्धान्त-निर्भय बनें

वाल्मीकि और नारद की कहानी तो सब जानते हैं । वाल्मीकि ने कितने ही लोगों की हत्या की । परन्तु नारद के समान निर्भय मनुष्य उसे अभी तक नहीं मिला था । अब तक उसे जितने भी लोग मिले या तो वे डरकर भाग जाते या उस पर उलटकर हमला करते थे । हँसकर समझदारी की बातें समझानेवाले सबसे पहले पुरुष उसे नारद ही मिले । इसका परिणाम यह हुआ कि जो मनुष्य एक हिंसक भील था वह महान् ऋषि बन गया । इस कहानी में जीवन का एक महान् सिद्धान्त भरा हुआ है । अगर हम निर्भय और शान्त रहें तो हम पर आक्रमण करने के लिए उठाया हुआ हाथ वहीं का वहीं रह जायगा।

हमला होनें पर क्या करें

किसी ने मुझसे पूछा था कि महिलाश्रम जैसी संस्था पर गुण्डे हमला कर दें तो क्या किया जाय ? इसका जवाब बिलकुल आसान है । अगर सभी को जँचे तो आक्रमण होते ही बिगुल फूँककर सबको एकत्र कर लिया जाय और भगवान् का भजन शुरू कर दिया जाय । परन्तु इसके लिए श्रद्धा की जरूरत है।

हिंसा के सामने प्रतिहिंसा

इसके विपरीत ऐसा समझिये कि आश्रम की बहनों के हाथों में हम तलवार दे दें । परन्तु सम्भव है कि आक्रमण करनेवालों के पास तलवारों की अपेक्षा अधिक तेज हथियार हों । तब हमारी तलवारें निकम्मी साबित होंगी । महायुद्ध में शरीर-बल की विफलता का हम काफी दर्शन कर चुके हैं । एक तरफ दस-दस, बीस-बीस लाख की सेनाएँ आक्रमण करती हमनें देखी हैं और दूसरी तरफ यह भी देखा है कि कितनी ही बड़ी सेनाएँ हिम्मत छोड़कर, अपने शस्त्र डालकर शरण में आ गयी हैं । जब प्रतिपक्षी देखता है कि सामनेवाला उससे बलवान् है तो अपने हथियार डाल देता है । अन्त तक लड़ते रहने की बातें तो बहुत लोग बोलते हैं ।

आत्मनिर्भर बनें

इसलिए मैं कहता हूँ कि हमें आत्मशक्ति पर निर्भर रहना चाहिए । स्त्रियों में भी आत्मशक्ति की कमी नहीं होती । परन्तु उसे प्रकट करने के लिए जीवन को ऐसा बनाना होता है । खाने के लिए न जियें, बल्कि जीने के लिए खायें । केवल ऐश या विलास के लिए नहीं, नितान्त आवश्यकता का हिसाब लगाकर शरीर को खुराक दें । क्योंकि यह एक शास्त्रीय प्रयोग है । उसमें भोग-विलास के लिए स्थान नहीं है । भोग-विलास पर आधारित जीवन मौके पर काम नहीं देता।

अपमान बनाम मृत्यु

यदि एक आदमी दूसरे आदमी से कहे कि “तुम्हें मुसलमान बनना ही पड़ेगा, नहीं तो हम तुम्हारी जान ले लेंगे”, तब वह उसे साफ-साफ समझाकर कहे कि “भले आदमी, मुसलमान बनने

के लिए एक खास प्रकार की श्रद्धा की जरूरत होती है । ऐसी श्रद्धा कभी जबरदस्ती से पैदा नहीं की जा सकती ।" इतना कहने पर भी यदि वह निरा मूर्ख हो और कहे कि "मैं कुछ नहीं जानता । कलमा पढ़ो, नहीं तो मरने के लिए तैयार हो जाओ", तो वह उसे शान्तिपूर्वक कह दे कि "अरे भाई, मरना तो सभी को है । कोई आज मरेगा, कोई कल । अच्छा, मार डालना चाहता है ? ले मार ।" परन्तु इसके विपरीत यदि वह उस आदमी की बात चुपचाप मान लेगा तो उसके तुच्छ शरीर की भले ही किसी प्रकार शायद रक्षा हो जाय, परन्तु उसकी आत्मा का बड़े-से-बड़ा अपमान होगा । अपमानित होकर जिन्दा रहने की अपेक्षा मरकर मुक्त हो जाने की शक्ति हमारे अन्दर होगी तो एक छोटा-सा बच्चा भी निर्भयतापूर्वक किसी भी संकट का सामना कर सकेगा । बहनें भी निर्भयतापूर्वक जीने और मरने की कला सीख लेंगी तो आज की नाजुक परिस्थिति में देश की बहुत बड़ी सेवा कर सकेंगी और परमश्रेय प्राप्त करेंगी ।

स्व-रक्षिता बनें

जब बहनें मुझसे पूछती हैं कि "हम अपना रक्षण कैसे करें ?" तो मैं कहता हूँ कि इसमें आपको कुछ सोचना ही नहीं है । हमें स्त्री और पुरुष में फर्क नहीं करना है, दोनों को परिपूर्ण बनाना है । इसलिए अपने हृदय में ऐसी श्रद्धा रखें कि जैसे पुरुष अपनी रक्षा करने में सहज ही समर्थ माना जाता है, यद्यपि कई दफा वैसा वह कर नहीं पाता, वैसे ही स्त्रियाँ भी अपना रक्षण स्वयं कर सकती हैं ।

सीता नहीं तो झाँसी की रानी

स्त्रियाँ कहीं अकेली जाती हैं तो उन्हें डर लगता है कि पुरुष की तरफ से आक्रमण हो, तब क्या किया जाय ? पहली बात तो यह है कि जो कन्या आदर्श हो, यानी जिसकी आँखों में विकार न हो, उस पर आक्रमण करने की हिम्मत किसीको होगी नहीं । कोई आक्रमण करने आयेगा तो वह सीता के जैसा मुकाबला करेगी । रावण आया तो सीता ने उसके सामने तिनका रखा, यह कहने के लिए कि मैं तुम्हें तिनके जैसा समझती हूँ । लंका में सीता अकेली थी, पर रावण उसे कुछ नहीं कर सका । लेकिन यह तो आदर्श है । इतनी आदर्श शक्ति सभी स्त्रियों में अपेक्षित नहीं

है । तब बहनें कहती हैं कि "पुरुषों के पास तो तलवार होती है ।" तो मैं कहता हूँ कि अगर वही आपकी कमी है, तो आप भी तलवार रख सकती हैं । जो हक पुरुषों को है, वह आपको भी होना चाहिए । अपने पास रिवाल्वर रखें । कोई आक्रमण करने आये तो उस पर गोली चलायें, लेकिन ऐसा मारें कि वह जख्मी हो जाय, मरे नहीं। मान लें, यह ठीक से सधा नहीं और वह मर गया, तो भी कोई हर्ज नहीं । मेरी तरफ से स्त्रियों को पिस्तौल रखने का अधिकार दिया गया है । इस प्रकार जो पिस्तौल चलायेगी उसको मैं अहिंसक मानता हूँ । '**नायं हन्ति न हन्यते**'—आत्मा न मरती है, न मारती है ।

निर्वैर होकर मारें

इस प्रकार कोई हमला करने के लिए आये तो क्या ऐसा आदर्श जवाब दें कि सीता के रक्षण के लिए कौन आया था ? रावण उसका कुछ भी न कर सका, क्योंकि सीता की आँखों में जो पवित्रता थी उसके सामने रावण की कुछ चली नहीं । ऐसा पावित्र्य भरा हो तो किसीकी हिम्मत हमला करने की नहीं होगी । बात सही है । लेकिन साधारण स्त्रियों पर कोई बलात्कार करने आये तो क्या कहना, दुबारा करो ? एक गाल पर मारा तो दुबारा गाल सामने करें ? एक बार अत्याचार हुआ तो दुबारा करने को कहें ? यह अपेक्षा नहीं कर सकते । अगर यह अर्थ निकलता है तो बाइबिल का इंटरप्रिटेशन भी ठीक नहीं होगा । तो क्या किया जाय । मैंने कहा, पिस्तौल रखें पास में और ऐसी कुशलता से मारें कि मरेगा नहीं, लेकिन जख्मी होकर गिरेगा। मारते समय निर्वैर भावना से मारें । प्रेम का ही रूपान्तर काम-वासना है । काम-वासना का नियमन करने के वास्ते ही गृहस्थाश्रम खोल दिया है । गृहस्थाश्रम के बाहर भोग करोगे तो वह काम-वासना मानी जायगी । गृहस्थाश्रम के अन्दर होगा तो वह प्रेम माना जायगा । तो प्रेम के खयाल से ही वह आया है, तो भगवान् उसको सदबुद्धि दे, ऐसी प्रार्थना कर मारें, निर्वैर होकर मारें ।

तो इस प्रकार दो मार्ग हैं । एक मार्ग, महावीर का—पूर्ण अहिंसा । मारना नहीं, कोई मारने आये तो मर जाना । और दूसरा है गीता का, निर्वैर होकर मारना । यद्यपि मुझे कहा गया कि इसमें तो निर्वैर होकर मारने से मरना ज्यादा आसान है ।

स्त्री रक्ष्य नहीं, बल्कि रक्षिका

शिकारी की कहानी है । वह शेर के एक बच्चे को पकड़कर अपने तम्बू में ले आया । शेर और शेरनी, दोनों बच्चे को खोजने आये । बन्दूक चलायी गयी । बन्दूक की आवाज सुनकर शेर भाग गया । लेकिन शेरनी नहीं भागी। वह अपने बच्चे के संरक्षण के लिए खड़ी रही । पिताजी भागे तो भागे ही। लेकिन शेरनी अपने ढंग से बार-बार तम्बू पर हमला करती रही, जहाँ उसका बच्चा रखा था । उसको बन्दूक दिखायी जाती तो दो-चार कदम पीछे हट जाती, फिर आती । आखिर उसको मारना पड़ा । शेर और शेरनी का फर्क शिकारियों ने देखा है । तो नारी क्यों नहीं बहादुर हो सकती ? इसलिए यह मानना कि स्त्री रक्षणीय है, ठीक नहीं । वह तो माता है और उसके पास दुनिया को बचाने का सामर्थ्य है । और आगे आनेवाला युग महिला का है, माता का है।

संरक्षण का भार उठायें

आनेवाले जमाने में दुनिया की हालत ऐसी होनेवाली हैं कि समाज को जो रक्षण पुरुष न दे सका, वह स्त्रियाँ दे सकेंगी । पुरुषों ने सारा मामला बिगाड़ दिया है । ऐसी हालत में स्त्रियाँ केवल स्व-रक्षित ही बनकर कृतकृत्य न हो जायँ, बल्कि वे सारे समाज के रक्षण का भी कार्य उठायें । विज्ञान-युग ने ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी है । अब रक्षण की सम्पूर्ण जिम्मेवारी अहिंसा पर ही आनेवाली है, और इसीलिए अब स्त्रियाँ ही समाजरक्षक बननेवाली हैं । उनके लिए इतना बड़ा क्षेत्र खुलने जा रहा है । अतएव उन्हें भी स्वयंप्रज्ञ बनना होगा । मनुष्य में जब स्वयंकर्तृत्व आता है, तभी उसे स्वयंप्रज्ञा प्राप्त होती है। कर्मयोग का प्रज्ञा के साथ अटूट सम्बन्ध है ।

•

१३. स्वाध्याय और साधना

वैदिक काल में स्त्रियाँ बड़ी ही ज्ञानवती होती थीं । एक प्रसंग है । याज्ञवल्क्य की सभा में चर्चा चल रही थी । गार्गी उठ खड़ी हुई और उसने याज्ञवल्क्य से कहा : "जैसे काशी या विदेह का क्षत्रिय वीर बाण मारता है, वैसे ही मैं तुझे प्रश्नरूपी बाण मारती हूँ । अपनी छाती सामने कर, मैं प्रश्नों से ताड़ना करूँगी ।" उसने दो सवाल पूछे । याज्ञवल्क्य ने जवाब दिये । तब उसने हिम्मत के साथ पण्डितों से कहा कि "पण्डितो ! अब याज्ञवल्क्य से चर्चा मत करो । इसे नमस्कार करो, इससे कठिन सवाल नहीं होंगे ।" गार्गी वीर के समान खड़ी होकर हिम्मत के साथ कहती है कि "मुझसे कठिन सवाल कौन पूछेगा ?" वह वेद और उपनिषदों का जमाना था और आज ?

गार्गी की कहानी पढ़कर मन में कई विचार उठे । उस जमाने में गार्गी के सवाल सबसे कठिन थे, लेकिन याज्ञवल्क्य उनका जवाब दे सका । क्या इस युग में ऐसी कोई गार्गी पैदा नहीं होगी, जिसके सवालों का जवाब कोई भी याज्ञवल्क्य न दे सकेगा और हार मान लेगा ?

अखण्ड ज्ञान-लालसा

स्त्रियों को मेरा खास सन्देश है कि अखंड ज्ञान की लालसा रखिये । ज्ञान-तृष्णा कभी नष्ट न होने दें । ज्ञान की उपासना से ही आप दुनिया को जीत सकती हैं । सरस्वती की तेजस्विता आयेगी, तब उनमें आक्रमणकारी शक्ति आयेगी । स्त्रियाँ अध्यात्मनिष्ठ बनेंगी, तब यह होगा । शंकराचार्य ने अपने शिष्यों को शारदा की उपासना करने को कहा । शारदा यानी सरस्वती । स्त्री शारदा की प्रतिनिधि होनी चाहिए । पुरुष स्त्रियों की मदद चाहते हैं, परन्तु वे उन्हें सुधारें, ऐसा नहीं चाहते । स्त्रियों में पुरुषों को सुधारने की शक्ति आनी चाहिए।

स्त्रियाँ ज्ञान-साधना करें

स्त्रियों को खूब ज्ञानाभ्यास करना चाहिए । ज्ञान की छोटी-सी पूँजी पर स्त्री तेजस्वी नहीं बन सकती और पुरुष-प्रधान समाज में स्वतंत्र होकर काम करने की शक्ति उसमें नहीं आती है । इसलिए स्त्रियों को ज्ञान में थोड़ा-सा भी पीछे नहीं रहना चाहिए । सरस्वती जैसी ज्ञान में अग्रसर

स्त्रियाँ होनी चाहिए । पुरुषों को कम ज्ञान हो तो चलता है, परन्तु स्त्रियों को बहुत-से काम करने हैं, संस्कृति की रक्षा करनी है, प्रकृति से ऊपर उठना है, इसलिए उन्हें पूरा ज्ञान होना चाहिए । पुरुष प्रकृति से ऊपर उठे, ऐसा भी उन्हें करना है । इसलिए स्त्रियों को पूरा ज्ञान होना चाहिए । साथ ही भक्ति होनी चाहिए । उनका ज्ञान गहरा होना चाहिए । उसके लिए ज्ञान-साधना करनी चाहिए । इस ज्ञान के साथ भक्ति जोड़ी जायगी, तब वे समाज का मार्गदर्शन कर सकेंगी और समाज का विकास हो सकेगा ।

विद्या की देवी—सरस्वती

यह ठीक है कि श्रेष्ठ शक्ति चिन्तन-शक्ति ही है। किन्तु सरस्वती कौन हैं ? वहाँ कोई पुरुष नहीं, बल्कि स्त्री खड़ी की गयी है । वेद में वर्णन आता है कि दुनिया को सरस्वती ने सत्य-निष्ठा की प्रेरणा दी है । प्रज्ञा का धारण किया है । वह सारे समाज को सत्कार्य की प्रेरणा दे रही है । सर्वत्र सुमति जगाती है । सरस्वती को ही विद्या की देवी, वाग्देवता माना है । सरस्वती का अधिकार जिन्हें है, वे चुपचाप खामोश रहें, नीची नजरवाली रहें, सिर ढाँक लें, हाथपाँव में बेड़ियाँ डालें, यह ठीक नहीं । वे बेड़ियाँ सोने की होने के कारण महसूस नहीं होतीं, लेकिन हैं तो वे बेड़ियाँ ही ।

स्त्रियाँ शेर के समान गर्जना करें

स्त्रियाँ वाग्मी बननी चाहिए । अक्सर कहा जाता है कि स्त्रियाँ चुपचाप काम करें । लेकिन बोलने के मौके पर न बोलना चोरी है । भगवान् ने हमें एक शक्ति दी है, उसका उपयोग करना चाहिए । मैं चाहता हूँ कि स्त्रियाँ वाग्मी बनें और शेर के समान गर्जना करें । उस गर्जना में नैतिक आचरण और अन्दर की ब्रह्मनिष्ठा की ताकत हो और बाहर वक्तृत्व प्रकट हो । यह नहीं होना चाहिए कि स्त्रियाँ दब जाती हैं, झुक जाती हैं । बल्कि यह होना चाहिए कि कहीं भी वे गयीं, तो शेर के समान पराक्रम करती हैं, ताकत के साथ काम करती हैं, इसलिए स्त्रियों की वाक्शक्ति खुलनी चाहिए, चिन्तन-शक्ति भी बढ़नी चाहिए ।

समाज को प्रभावित करें

स्त्रियों से कहा जाता है कि नीची निगाह रखो । बात तो ठीक है । लेकिन नीची निगाह रखना अच्छा है, तो सब रखें । स्त्रियों से ही क्यों कहा जाता है ? नम्रता जरूर होनी चाहिए, लेकिन सबमें होनी चाहिए । अक्सर कहा जाता है कि रचनात्मक कार्यकर्ताओं को चुपचाप काम करना चाहिए । लेकिन यह चुपचापवाली बात वे बोलते हैं, जो खुद कभी चुप नहीं रहते, बल्कि समाज में आकर ऊधम मचाते रहते हैं । वे दूसरों से कहते हैं कि चुपचाप काम करो, जिससे कि उनकी ऊधम मचाने को ताकत बनी रहे । यह चुपचापवाली बात बहनों के लिए नहीं है । उन्हें समाज को अपनी सम्पूर्ण शक्ति से प्रभावित करना चाहिए ।

ज्ञान के सामने अज्ञान टिकता नहीं

जब ज्ञानी से कहा गया कि तू अतिवादी है, बहुत बोलनेवाला है, तो वह कहता है कि "छिपाने की कोई जरूरत नहीं है, में हूँ अतिवादी, आओ मेरे सामने ।" इस तरह हिम्मत के साथ जाना चाहिए । जैसे शंकराचार्य जाते थे, झगड़ा करने के लिए नहीं, बल्कि शंकाओं का निरसन करने के लिए और कहते थे कि "लाओ अपनी सारी शंकाएँ । आपका अज्ञान ज्ञान के सामने टिक नहीं सकता है ।" मैं चाहता हूँ कि इस तरह स्त्रियाँ गरजें ।

आत्मज्ञान देनेवाली उमा

मैं चाहता हूँ कि स्त्रियों को ज्ञान-विज्ञान में अग्रसर होना चाहिए । स्त्रियों में ज्ञान की किसी प्रकार की कोई कमी मैं पसन्द नहीं करूँगा । पुरुषों से मैं कहूँगा कि तुम कर्मप्रधान बनो, खेती करो, बैल के साथ काम करो, बैल मत बनो । लेकिन स्त्रियों के लिए तो मैं चाहता हूँ कि उन्हें पूरी विद्या मिलनी चाहिए । वेद में कहा है कि अग्नि और इन्द्र ने तपस्या की, लेकिन उन्हें ब्रह्म के दर्शन नहीं हुए । फिर उमा हैमवती के दर्शन उन्हें हुए और उस उमा ने इन्द्र और अग्नि को आत्मज्ञान दिया । इस तरह दुनिया को आत्मज्ञान देनेवाली उमाएँ प्रकट हों ।

मुख्य बात चित्त-शुद्धि

'ब्रह्मसूत्र' या कोई ग्रंथ सीखना, यह (अपने-आप में) धर्म नहीं है । धर्म तो है आत्मज्ञान प्राप्त करना । ब्रह्मसूत्र उसमें मददरूप होगा, यह ठीक । कभी-कभी ग्रंथों की नाहक माया लग जाती हे, ग्रंथों की भी आसक्ति हो जाती है । आत्मज्ञान की जरूरत है, तो उसी की चर्चा करें । मुख्य बात यह है कि चित्तशुद्धि हो । चित्त का मल धुल जाय । वैद्य की किताब में हजारों किस्म की दवाएँ होती हैं, पर हमें जिस दवा की जरूरत होती है, वही लेते हैं । इसी तरह चित्त में आलस्य, मत्सर या अन्य कोई दोष होने पर उसे दूर करने के लिए जो साधना जरूरी हो, वह करें । उसके लिए योग्य गुरु चाहिए । सत्संग से दोषों का क्षय होता है । तुम्हें नदी पार करनी है । चार-पाँच नौकाएँ सामने हैं । क्या उन सब पर सवार होंगे ? एक में चढ़कर ही पार करोगे न ? वैसे ही कोई भी एक किताब ऐसी हो सकती है, जिससे सब-कुछ मिल सकता है।

ज्ञान का परिग्रह गलत

मन में यह रखने की जरूरत नहीं कि मैंने यह नहीं पढ़ा, वह नहीं पढ़ा । इससे मनुष्य नाहक पराधीन हो जाता है । हम अज्ञानी हैं, यह मानना ही एक बहुत बड़ा अज्ञान है | हमें जितनी जरूरत है, उतना ज्ञान है । मुझे घड़ा बनाना नहीं आता, संगीत नहीं आता, यों कहकर, मैं रोता बैठूँ, तो कैसे चलेगा ? मुझे जो चीजें नहीं आती, उनकी फेहरिश्त बनाने बैठूँ, तो लोग तो मुझे ज्ञानी समझते हैं, लेकिन मैं 'अज्ञानी' ही साबित होऊँगा ! जैसे दुनियाभर के पैसे का संग्रह गलत है, वैसे ही दुनियाभर के ज्ञान का परिग्रह भी गलत है।

चर योग्यताएँ

'ब्रह्मसूत्र' में चार योग्यताएँ बतायी हैं : १. नित्यानित्यविवेक, २. ऐहिक और पारलौकिक भोगों के प्रति वैराग्य, ३. शमदमादि साधन-सम्पत्ति और ४. मुमुक्षुत्व । ऐसी चार योग्यताएँ होंगी, तभी ब्रह्मसूत्र का अध्ययन करना चाहिए । वैसे कॉलेज के विद्यार्थी 'दर्शन' (फिलॉसॉफी) विषय लेते हैं, आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म आदि बातें करते हैं, पर उन्हें कोई ब्रह्म-जिज्ञासा नहीं होती ।

तीन आवश्यक ज्ञान

हर चीज के ज्ञान के पीछे दौड़ने के बजाय हम ऐसा मानें कि हम सब एक हैं । जो चीज तेरे पास है, वह मेरे पास है ही । हम सब एक ध्येय पर चल रहे हैं । उसमें कोई एक विषय में प्रवीण है, कोई दूसरे में । उसमें बिगड़ता नहीं है । हाँ, कुछ चीजें ऐसी हैं, जिनका ज्ञान सबको होना चाहिए। जैसे मुझे आरोग्य-ज्ञान है और तुम्हें नहीं है, तो मैं पहलवान बनूँगा और तुम बीमार पड़ोगे । सारांश, तुम्हें भी आरोग्य-ज्ञान की जरूरत है । वैसे संस्कृत-ज्ञान सबको होना चाहिए, यह जरूरी नहीं है । वैसे ही मुझे बढ़ई का काम आता है और तुझे बुनकर का काम आता है । मुझे वह नहीं आता और तुझे यह नहीं आता, तो भी दोनों का चल सकता है । इसका नाम है वर्णधर्म । कोई बढ़ई का काम करके समाज की सेवा कर सकता है, कोई खेती से, तो कोई संगीत से ।

आत्मज्ञान ही सही 'ज्ञान' है, जिसकी सबको जरूरत है । वैसे आजकल लड़कियाँ काफी पढ़ती हैं, नौकरियाँ करती हैं, पर मुख्य रूप से तीन प्रकार का ज्ञान हरएक को होना चाहिए : १. आरोग्य-ज्ञान, २. नीतिज्ञान और ३. आत्मज्ञान ।

बहनें ब्रह्म-विद्या सीखें

इन दिनों लोग कहते हैं कि बहनों को आगे आना चाहिए । लेकिन मैं दूसरे अर्थ में कहता हूँ । बहनें फौज में, दफ्तर में, सरकार में जायँ, इससे मेरा समाधान नहीं होता । मैं चाहता हूँ कि बहनों को आत्मज्ञानी बनना चाहिए ।

गांधीजी ने जो विचार दिये हैं उसकी जिम्मेवारी स्त्रियों पर अधिक है। बापू ने स्त्रियों को जितना समय दिया, उतना कृष्ण के अलावा और किसीने नहीं दिया । परन्तु उसका खास परिणाम नहीं आया । कृष्ण के जमाने में शस्त्र-बल के रक्षण करने की बात थी, बापू के जमाने में भी अहिंसा की बात चली, परन्तु बापू शस्त्र-बल को खत्म नहीं कर सके । इसलिए कृष्ण और गांधी दोनों के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप समाज की बुनियादी निष्ठा में खास फर्क नहीं हुआ । आज की समाज-रचना में प्रधान पुरुष हैं, स्त्री नहीं । जब तक स्त्रियाँ आगे नहीं आयेंगी, स्त्री शास्त्रकार

नहीं बनेगी, तब तक उसकी हैसियत हमेशा गौण ही रहेगी । स्त्री भक्त बनी, देवी बनी, परन्तु आज तक शास्त्रकार नहीं बनी । राजकारण, सेना और धर्म—इन तीनों चीजों से मुक्त होकर केवल ब्रह्मविद्या का आधार लिया जायगा, तभी यह काम होगा ।

धर्मान्धता नहीं, अध्यात्मपरायणता

राजनीति और सेना से मुक्त होने की बात तो समझना सरल है, परन्तु मैं उसके साथ 'धर्म' को भी जोड़ रहा हूँ । स्त्रियों पर धर्म का प्रभुत्व अधिक है । उनमें एक प्रकार की भक्ति है और इसीलिए बहुत सारी बातें वे बिना समझे मान्य कर लेती हैं । इस चीज को मैं हटाना चाहता हूँ और केवल आध्यात्मिक शक्ति ही विकसित हो, ऐसा चाहता हूँ । आज धर्म में ऐसी कितनी बातें हैं, जो मनुष्य को पकड़कर बाँध लेती हैं । उसमें से मुक्त होना चाहिए । राजनीति, सेना और धर्म—इन तीनों चीजों से मुक्त होकर स्त्रियाँ आगे आयेंगी तो वे भारत को जीत सकेंगी और समाज-रचना पर असर डाल सकेंगी । आज तक मोक्षप्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करने का अधिकार स्त्री-देह को नहीं था, परन्तु अब स्त्रियाँ आगे बढ़ सकती हैं ।

यहाँ जो मैं 'धर्म' शब्द इस्तेमाल करता हूँ, इसको समझ लेना चाहिए। धर्म यानी विविध सम्प्रदाय । मैं हिन्दू हूँ, तुम मुस्लिम हो । हिन्दू में भी मैं ब्राह्मण हूँ, तुम शूद्र हो । तो धर्म के नाम पर हम मानव-मानव अलग पड़ जाते हैं । ईश्वर कभी यह नहीं चाहेगा कि हम अलग हों । ईश्वर तो एक है। अनन्त है । ईश्वर के पास अपनी चित्त-शुद्धि के अलावा और किसी भी चीज की प्रार्थना नहीं होनी चाहिए । परन्तु हम कामनाग्रस्त हैं और भगवान् को अलग-अलग नाम देकर उन कामनाओं की पूर्ति के लिए प्रार्थना करते हैं । ईश्वर का नाम लेकर हम देवताओं की उपासना करते हैं । हे लक्ष्मी देवी, तेरी कृपा मुझ पर कायम रहे या हे सरस्वती, तेरी कृपा से मैं मैट्रिक पास हो जाऊँ—तो ये सारी देवताओं की उपासना है । यह ईश्वर-भक्ति नहीं । यह सच्ची धार्मिकता भी नहीं है । इसीलिए मुझे कहना पड़ता है कि हमें ऐसा धर्म नहीं चाहिए, जो मानव-मानव के बीच दीवार बनकर आता हो । हमें तो अध्यात्म चाहिए।

अध्यात्म-तत्त्व का सार मैंने पाँच चीजों में निकाला है । वह इस प्रकार है :

१. जीवन की एकता और पवित्रता ।

२. मृत्यु के बाद जीवन की अखंडता ।

३. निरपेक्ष मूल्यों की निष्ठा ।

४. कर्म-विपाक, जो अटल है ।

५. विश्व में एक रचना है, व्यवस्था है ।

अध्यात्म यानी अशेष विश्वास

अध्यात्म-विद्या का मेरा अर्थ यह है कि हम केवल इसी एक ही देह में नहीं रहते हैं, बल्कि दुनिया में जितने भी शरीर हैं, उनमें रहते हैं । ऐसी अनुभूति के साथ जितना विश्वास मुझे स्वयं अपने पर है उतना ही सब पर रहे । जब इतना होगा तब अध्यात्म-विद्या आयेगी । प्रेम एक बात है और विश्वास दूसरी । माँ को बच्चे पर प्रेम होता है, उससे उस पर विश्वास भी होता है, ऐसा नहीं कह सकते । विश्वास बहुत बड़ी शक्ति है । प्रेम सामान्य चीज है। प्रेम न होना यानी निर्जीव बनना । परन्तु प्राणीमात्र के प्रति विश्वास पैदा होना—एक शक्ति है । सामान्यतः होता यह है कि मेरा दो-चार मनुष्यों पर ही विश्वास होता है, जब कि प्रेम सभी पर होता है । दो-चार व्यक्ति ही ऐसे होते हैं, जिनके समक्ष दिल अशेषत: खुलता हो । ऐसा भी देखने को मिलता है कि पति-पत्नी एक-दूसरे पर प्रेम रखते हैं, परन्तु उनके दिल परस्पर मुक्त रूप में खुलते न हों । दोनों प्रेमपूर्वक्क अपना संसार निभाते हों, बच्चों की परवरिश भी करें, परन्तु अपने दिल एक-दूसरे के सामने न खोलें । प्रेम तो कम-से-कम आवश्यकता है । जीने की न्यूनतम आवश्यकता, जब कि विश्वास एक बहुत बड़ी शक्ति है । आज राजकीय, सामाजिक और कौटुम्बिक क्षेत्रों में अविश्वास का जोर बढ़ा है । अविश्वास का क्षेत्र बहुत लम्बा-चौड़ा हो गया है । जिसका समस्त सृष्टि पर विश्वास है, किसी पर थोड़ा-सा भी अविश्वास नहीं, अपना दिल किसीके भी सामने खोलने में जिसको कोई अड़चन नहीं आती, दूसरों का भी दिल जिसके सामने पूरा खुलता है, उसीमें ब्रह्मविद्या का पूरा विकास हुआ, ऐसा समझना चाहिए ।

स्नेह में तीन चीजें आती हैं : प्रेम, आदर और विश्वास ।

हम देखते हैं कि माँ-बाप, पति-पत्नी, माता-पुत्र इन सबके बीच सामान्यतः प्रेम तो होता है परन्तु आदर नहीं होता । कई कुटुम्ब ऐसे भी मिलेंगे, जिनमें प्रेम और आदर तो होगा; परन्तु परस्पर विश्वास नहीं मिलेगा । इकट्ठे रहने के कारण एक-दूसरे के दोष दिखते हैं । नजदीक से देखने पर जमीन ऊबड़-खाबड़ दिखती है, परन्तु दूर से देखनेवालों को पृथ्वी गोल ही मालूम होती है । इसी तरह परिवार में होता है । ऐसे परिवार बहुत ही कम मिलेंगे, जिनमें दोष-दर्शन होने पर भी परस्पर प्रेम, आदर और विश्वास हो ।

त्रिवर्ग-सम्पर्क से अलग हों

वास्तव में, ब्रह्मविद्या के लिए विचार, विकार और कर्म के त्रिवर्ग से अलग हो जाने की शक्ति हासिल करने की अभिलाषा जगनी चाहिए । अंतस्तल में गोता लगाने के लिए यह त्रिवर्ग का सम्पर्क कम-से-कम रहे, यह जरूरी है । जब चाहें, तब इनसे अलग हो जाने की शक्ति प्राप्त होगी । तब चाहे जितनी प्रवृत्ति हो, हमारे लिए एकांत सहज बन जायगा ।

लेकिन मान लीजिये कि कोई स्त्री है, जो माता बन चुकी है, जिसको अपने बच्चे हैं । और, दूसरी एक अविवाहिता है, जिसने पहले से सावधान होकर असंग का मार्ग लिया है । तो यह दूसरी स्त्री त्रिवर्ग-सम्पर्क जितना कम कर सकेगी, उतना वह माता स्त्री नहीं कर पायेगी । माँ बच्चे के प्रति लापरवाह हो, यह भी नहीं चलेगा । परन्तु माँ की भी यह कोशिश रहनी चाहिए कि बच्चे जल्द-से-जल्द स्वावलम्बी बनें । बच्चों का भला भी उसीमें है ।

भूदान में बहनों का पराक्रम

भूदान-यज्ञ-आरोहण के कार्य में स्त्रियों ने जो हिस्सा लिया है, वह मुझे तो अद्भुत ही मालूम होता है । इसमें अपना अध्ययन, नौकरी, घर-बार आदि सब-कुछ छोड़कर बहनें काम में लगी हैं । वे थोड़ी हैं, परन्तु उन्होंने बहुत काम किया है ।

भूदान का इतिहास देखा जाता, तो पता चलता कि किस तरह कोरापुट के जंगलों में स्त्रियों ने अकेले घूमकर अलख जगाया है । परन्तु इन सबका कोई पता ही इस देश को नहीं है । इस आरोहण-कार्य में स्त्रियों ने जो कार्य किया, उसका अपना स्वतंत्र इतिहास रहेगा । मीराबाई का एक पद है :

'मातु छाँड़ि, पिता छाँड़ि, छाँड़ि सगा सोई ।
अँसुअन जल सींच-सींच प्रेम, बेलबोई ॥'

ठीक इसी तरह से कई बहनों ने अपना सर्वस्व छोड़कर भूदान-यज्ञ-आरोहण में काम किया है । बहनों के आध्यात्मिक अधिकारों के बारे में उन्हें अच्छी तरह सोचना चाहिए और पुरुषों की इस दुनिया में बगावत करके खड़े होना चाहिए । इसके बिना आज जो गलत मूल्य रूढ़ हुए हैं, वे नहीं बदलेंगे। मीरा की बगावत में जो ताकत थी, वह ब्रह्म-विद्या की थी । स्त्रियों को इसी ब्रह्मविद्या की अत्यन्त आवश्यकता है । हृदय में चाह हो, तड़पन हो तो ब्रह्म-विद्या की इच्छामात्रेण प्राप्ति होती है । मैं चाहता हूँ कि सबके हृदय में इसकी प्राप्ति की आकांक्षा हो ।

.

१४. मातृहस्तेन भोजनम् : मातृमुखेन शिक्षणम्

भगवान् कृष्ण जब अपने गुरु के घर से पढ़ाई करने के बाद वापस लौट रहे थे, तब उनके गुरु ने उनसे वरदान माँगने को कहा । तब भगवान् ने वर माँगा : "**मातृहस्तेन भोजनम्**"—मैं जब तक जीऊँ, मुझे माँ के हाथ का भोजन मिले । कहते हैं कि जब तक भगवान् जीये, तब तक उनकी माँ मरी नहीं और उन्हें माँ के हाथ का भोजन मिलता रहा । जब यह कहानी मैं सुनता हूँ तो मुझे लगता है कि यदि मुझे वरदान माँगने को कहा जाता तो '**मातृहस्तेन भोजनम्**' के साथ '**मातृमुखेन शिक्षणम्**' जोड़ देता ।

रसोई—एक उपासना

कहते हैं, स्त्रियाँ उत्पादन का काम नहीं करतीं, सिर्फ रसोई करती हैं। अगर नयी चीज पैदा करने को उत्पादन कहते हैं ती वह तो ब्रह्मदेव ही करता है, बाकी सब कृति है । हम कोई कर्ता नहीं । जैसे काठ की कुर्सी बनाना काठ का रूपान्तर करना है, वैसे ही गेहूँ का आटा बनाकर रोटी बनाना रूपान्तर है । क्या इसे उत्पादन तब समझेंगे, जब हमारी माताएँ, बहनें कहेंगी कि हम रोटी बनायेंगी, बशर्ते कि हमें अठारह आना रोज मिले ?

माता अपने बच्चे की सेवा रात-दिन करती है । जब उसके पास कोई सेवा की रिपोर्ट माँगने जायगा, तो वह क्या रिपोर्ट देगी ? वह तो कहेगी कि "मैंने तो लड़कों की कुछ सेवा नहीं की ।" भला, माता की रिपोर्ट इतनी छोटी क्यों ? क्योंकि मांता के हृदय में बच्चे के प्रति जो प्रेम है, उसके मुकाबले उसकी कुछ भी सेवा नहीं हुई है, ऐसा उसे लगता है । सेवा करने में उसे कष्ट कुछ नहीं सहने पड़े हैं, लेकिन वे कष्ट उसे कष्ट मालूम नहीं हुए ।

अपने पास कम खाना है तो वह पहले बच्चे को खिलायेगी, खुद भूखी रहेगी, फिर भी वह आन्तरिक सुख अनुभव करेगी । यही माता का मातृत्व है। इसका मतलब यही हुआ कि माता की यह भावना अपने बच्चों के साथ सर्वोदय-भावना है । नि:संदेह उसकी भावना, उसका समाज या अपना सर्व अपने बच्चे तक ही मर्यादित है, इसलिए उसकी सर्वोदय की भावना भी मर्यादित है।

रसोई फाइनर आर्ट है

अपने हाथ से रसोई बनाकर लड़के को खिलाने से बढ़कर वशीकरण शक्ति क्या हो सकती है ? गांधीजी ने भी हम लोगों को आश्रम में रसोई परोसी है । इससे ज्यादा सेवा दूसरी कोई हो नहीं सकती । मातृ-वात्सल्य की बड़ी कीमत है । इसलिए मैं तो रसोई की बड़ी कीमत करता हूँ और कहता हूँ कि संगीत, चित्रकला, नृत्य जैसी ललित-कला है, फाइनेस्ट आर्ट है, परन्तु रसोई तो उससे भी बढ़कर 'फाइनर आर्ट' है । यह कला भी माता की बहुत बड़ी शक्ति हो सकती है । पर आज तो होटल खुल रहे हैं और धीरे-धीरे यह कला भी माताओं के हाथ से जा रही है । स्त्रियों को टप-टप टाइपिस्ट का काम, यांत्रिक काम दे देते हैं । कहते हैं कि स्त्रियों की अँगुलियाँ तेज चलती हैं, इसलिए उन्हें दफ्तर में बैठाते हैं । यह काम स्त्रियों को नहीं करना चाहिए, ऐसा मैं नहीं कहता । मेरा कहना यही है कि उन्हें ऐसे **काम करने चाहिए, जिनसे स्त्री-शक्ति का विकास हो और शान्ति की रक्षा हो** । जिस धन्धे में पावित्र्य हो, शांति हो, ऐसा काम करने का आग्रह स्त्रियों को रखना चाहिए।

श्रेष्ठ सेवा की मिसाल

कितनी ही स्त्रियाँ दुःखी, बीमार, बेरोजगार होती हैं । उन सबके पास पहुँचना है । उनकी सेवा करनी है । मुझे स्मरण है कि जब किसीके यहाँ रसोई की अड़चन पड़ती, मेरी माँ स्वयं वहाँ पहुँच जाती और रसोई बना आती। अपने घर की रसोई पहले ही वह बना लेती । इस पर मैने पूछा : “यह स्वार्थ क्यों ? पहले हमारे लिए पकाती हो, फिर उनके लिए ?” माँ ने कहा : “यह स्वार्थ नहीं, परमार्थ ही है । अगर पहले उनकी रसोई कर आऊँगी और बाद में तुम्हारी करूँगी, तो तुम्हें खाने के समय गरम रसोई मिलेगी, लेकिन उनके खाने के समय तक वह सबेरे की रसोई ठंडी हो जायगी ।”

प्रेम-साधन और ज्ञान-साधन

माता का आलसी मातृत्व रसोई में ही है । अच्छी-से-अच्छी रसोई बनाना, बच्चों को प्रेम से खिलाना, इसमें कितना ज्ञान और प्रेम-भावना भरी है ? रसोई का काम यदि माताओं से ले

लिया जाय, तो उनका प्रेम-साधन ही चला जायगा । प्रेमभाव प्रकट करने का मौका कोई माता छोड़ने के लिए तैयार न होगी । उसीके सहारे तो वह जिन्दा रहती है । कोई यह न समझे कि किसी-न-किसी बहाने स्त्रियों पर रोटी पकाने का बोझ मैं लादना चाहता हूँ । मैं तो उनका बोझ हल्का करना चाहता हूँ । इसलिए हमने आश्रम में तो रसोई का काम मुख्यतः पुरुषों से ही कराया है । मेरे कहने का मतलब इतना ही है कि रसोई का काम यदि बहनें छोड़ देंगी, तो उनके हाथ में से ज्ञान-साधन और प्रेम-साधन चला जायगा ।

श्रेष्ठतम गुरु : माता

बच्चे को सबसे पहले तालीम देनेवाली माँ है । माँ प्रथम गुरु है । बाद में पिता और गुरु आते हैं । जब तक माँ-बाप मौजूद हैं और बिना माता-पिता के बच्चे पैदा नहीं होते, तब तक बच्चों को ज्ञान मिलता रहेगा । परमेश्वर की योजना ही ऐसी बनी है कि जहाँ उसने बच्चे को भूख दी, वहाँ माँ के स्तन में दूध भी पैदा किया । बच्चे को भूख के साथ माँ को पिलाने की प्रेरणा दी । इस तरह बचपन से माँ के जरिये प्रेम की तालीम दी जाती है। बच्चों को मातृभाषा सिखाने के लिए सरकार कितने-कितने करोड़ रुपये खर्च करती है, लेकिन माँ तो दूध पिलाते-पिलाते बच्चे को मातृभाषा सिखाती है । दुनियाभर के बच्चे माँ से भाषा सीखते हैं । माँ बच्चे से कहती है कि यह देखो चाँद ! बच्चा सुनता है । माँ फिर उससे पूछती है कि चाँद किधर है, बताओ ? वह परीक्षा लेती है । बच्चा अँगुली से बताता है कि चाँद कहाँ है । बाद में वह बोलने लगता है । च् च् च् न् द और फिर 'चाँद-चाँद' कहता है याने पहले वस्तु ग्रहण करता है और फिर बोलता है । यह जो सारा ज्ञान है, भाषा सीखने का ज्ञान है क्या वह विद्यालयों की शिक्षा से कम है ? दो-ढाई साल में शून्य में से ज्ञान पैदा किया जाता है और माताएँ ही यह सब करती हैं । शिक्षणशास्त्री अनुभव और निरीक्षण से कहते हैं कि बच्चे को शुरू के साल-दो साल में जितना ज्ञान मिलता है, उतना ज्ञान आगे की सारी जिन्दगी में नहीं मिलता । इसलिए दुनियाभर के लोगों ने माना है कि अगर माताएँ संस्कारवान् बनीं, तो दुनिया बचेगी । इसलिए सबसे प्रथम और सबसे श्रेष्ठतम गुरु तो माता ही है।

धर्मपरायण माता से ही सुनागरिक

हिन्दुस्तान में स्त्रियों ने धर्म की रक्षा की है । पुरुषों में जितने व्यक्ति व्यसनी मिलते हैं, उससे बहुत कम स्त्रियाँ व्यसनी मिलेंगी । स्त्रियों ने दुनिया में सदाचार जिन्दा रखा है, इसीलिए उन पर बच्चों की जिम्मेवारी होती हैं । बच्चों में अच्छी आदतें डालना और उनको साफ-सुथरा रखना स्त्रियों के हाथ में है । स्त्रियाँ अपने बच्चों को सच्चरित्र बनायेंगी, तो देश को अच्छे नागरिक मिलेंगे । बच्चे तो बड़ी सम्पत्ति हैं । इनसे बढ़कर कौन-सा धन है ? कौशल्या की कोख से भगवान् रामचन्द्रजी और देवकी की कोख से भगवान् श्रीकृष्ण पैदा हुए । जितने भी सत्पुरुष हुए हैं, उनकी माताएँ धर्मपरायण थीं । जिस घर की स्त्रियाँ भगवान् का स्मरण करती हैं, सत्य का पालन करती हैं, प्रेमभाव से रहती हैं, उस घर में अच्छी सन्तान पैदा होती है । यह बात दुनियाभर में प्रसिद्ध है।

बच्चों को उत्तम संस्कार देने के लिए माँ से बढ़कर साधन नहीं । बच्चे बचपन से माँ के पास ही होते हैं, अगर आजकल की माताएँ बच्चों को चार-पाँच साल की उम्र में ही छोटे बच्चों के स्कूल में भेज देती हैं, झंझट गयी मानकर । परन्तु छोटी उम्र में माँ से बढ़कर और गुरु कौन हो सकता है ? बच्चों को कहानियाँ सुनना अच्छा लगता है । बच्चों को जो कहानियाँ कहनी हैं, वे माँ के द्वारा कही जानी चाहिए, वह काम माताओं को सौंपना चाहिए।

कहानियाँ कैसी कहें ?

आज की माताओं को ऐसी कहानियाँ कम मालूम होती हैं । क्योंकि आज की माता 'येसफेस' पढ़ती है । इसको 'येसफेस' नाम हमारी माँ ने दिया है । बचपन में, एक दिन मैं वर्ड्सवर्थ की एक कविता पढ़ रहा था बड़ी आवाज से । माँ ने सुन लिया और बोली : 'अरे विन्या, सुबह-सुबह 'येसफेस' कर रहे हो ?' मैंने तुरन्त वह बन्द कर दिया और 'मनाचे श्लोक' गाना आरम्भ कर दिया । बाद में मैंने उसको वर्ड्सवर्थ की कविता का अर्थ समझाया और कहा कि कविता खराब

नहीं थी । तब वह बोली : "कविता अच्छी ही हे, लेकिन दोपहर में पढ़ना चाहिए ।" अंग्रेजी से मेरा कोई विरोध नहीं, परन्तु अल्पज्ञान खतरनाक होता है । उन बहनों को प्राचीन ज्ञान कुछ होता नहीं । कहानियों के बारे में मेरा तो मानना है कि बच्चों को जो कहानियाँ प्राचीन काल से घोटी गयी हैं, उनका असर अधिक होगा । ध्रुव और प्रह्लाद की कहानियाँ पाँच हजार साल से घोटी गयी हैं । इसलिए उनकी पोटेन्सी बढ़ी है । मैंने बहुत सारे श्लोक अपने जीवन में कंठस्थ किये हैं और दस-पन्द्रह हजार श्लोक तो आज भी स्मरण हैं, परन्तु बचपन में मेरे काका ने मुझे जो पहला श्लोक सिखाया, वह मन पर जितना अंकित हुआ, उतना दूसरा कोई भी नहीं हुआ।

हम बनानेवाले कौन ?

बच्चों के बारे में एक महत्त्व की बात यह भी कहना चाहता हूँ कि बच्चों की हम सेवा जरूर करें, परन्तु बच्चों को हम बनानेवाले हैं, यह मानना ठीक नहीं । बच्चे भगवान् के घर से आते हैं और उसके निकट होते हैं । उन पर कुसंस्कार न होने दें, इतना ही हमारा काम है । इतना करेंगे तो बच्चे उत्तम ही बनेंगे । लेकिन हम क्या करते हैं ? बच्चा घर की कोई बात बाहर कह देता है तो हम उसे मना करते हैं, यानी उसे झूठ बोलना सिखाते हैं । बच्चा स्वभावतया सच ही बोलता है । जब उससे कहा जाता है कि 'सत्य बोलो', तब उसे बड़ा आश्चर्य होता है कि जैसा होता है वैसा ही तो कहना होता है और मैं यही तो करता हूँ । आजकल घरों में और बाहर दोनों जगह बच्चों को अच्छी शिक्षा नहीं मिलती । तरह-तरह के जहर उसके सामने आज परोसे जाते हैं, उससे उसको अलग रखेंगे तो उसकी आध्यात्मिक वृत्ति सहज ही है। मिठाई बच्चों को बड़ी प्यारी है, परन्तु उसके सामने कौआ आ जाता है तो खाना बन्द करके वह कौए की ओर देखेगा । चैतन्य का चैतन्य की ओर स्वाभाविक ही खिंचाव रहता है । मुझे कहना यह है कि बचपन में बच्चे परमात्मा से निकट ही होते हैं । खींच-खींचकर हम उन्हें नीचे ले आते हें । इसलिए उन्हें बनाना है, ऐसा नहीं, कुसंस्कार होने न दें, इतना ही हमारा काम ।

माँ-बाप केवल माध्यम

वैसे एक बात और है । बेटे अपनी कामना के अनुसार माँ-बाप का चुनाव करते हैं । एक गणितज्ञ थे, सुन्दर थे, उनकी पत्नी भी सुन्दर थी । उनके दो बेटे थे । एक गणित में होशियार बना,

लेकिन कुरूप था । दूसरा बेटा सुन्दर था, लेकिन बिलकुल बेवकूफ था । दोनों एक ही माता-पिता के बेटे । तो बच्चे अपनी चोइस (पसन्दगी) से आते हैं । इसलिए 'मेरे लड़के' मत कहिये। आप उनके चुने हुए माता-पिता हैं । आपके पास से उन्हें जो लेना था, वह ले लिया है । बाकी जो होगा वह उनका स्वतंत्र होगा, उनके पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार ।

बालकोपासना चले

किस माँ के पेट से कौन पैदा होगा, कह नहीं सकते । कहते हैं कि कौशल्या और देवकी दोनों जानती थीं कि उनके घर में प्रभु का अवतार होनेवाला है । परन्तु अपने बच्चे को जब गोद में ले लिया तब वह भूल ही गयीं कि यह तो प्रभु का अवतार है और उसे बच्चा मानकर ही उसका पालन-पोषण किया । तो जो जानती थीं, वे भी भूल गयीं । तो जो जानते ही नहीं, वे भूल जायेंगे, इसमें कौन-सा आश्चर्य !

इसलिए हमारा कर्तव्य है कि देश में जो बच्चा जन्मे, उसमें भगवान् की मूर्ति छिपी है, ऐसा मानकर ही उसका पालन-पोषण हो । परन्तु अपने देश में जन-संख्या अधिक होने से और विषमता होने से बच्चों के उत्तम संगोपन और शिक्षण की व्यवस्था नहीं हो पायी है ।

हमारी संस्कृति में बालक का बहुत गौरव किया गया है । भगवान् श्रीकृष्ण का पूरा जीवन ज्ञान, कारुण्य और पराक्रम से भरा है; परंतु भारत के लोगों को 'बालगोपाल कृष्ण' का ही अधिक परिचय है । बालकृष्ण की जितनी महिमा है, उतनी गीता-कृष्ण की नहीं है, क्योंकि आखिर उस ज्ञानी और महापराक्रमी कृष्ण का निर्माण भी तो आखिर उस बालकृष्ण में से ही हुआ था । तो इस बाल-कृष्ण की उपासना तो हमारे यहाँ चली, परन्तु बालकों की उपासना यहाँ नहीं चली । जब तक असमानता होगी, तब तक बालोपासना संभव नहीं ।

गौतम बुद्ध राजा के कुल में जन्मे और शंकराचार्य एक अति दरिद्र ब्राह्मण के कुल में जन्मे । महापुरुष श्रीमंत के घर ही या गरीब ही के घर पैदा होंगे, ऐसा कोई नियम नहीं बना सकते । वे राजमहल में जन्मे बच्चे के रूप में भी आ सकते हैं और फुटपाथ पर पले उपेक्षित बच्चे के रूप में भी आ सकते हैं । इसलिए प्रत्येक बच्चे की उत्तम परवरिश होनी चाहिए । हम लोग मूर्ति की

उपासना तो बहुत करते हैं, परन्तु हमारे सामने साक्षात् भगवद्-मूर्ति ही बच्चे के रूप में है, उसकी उपासना करनी चाहिए ।

सबसे ज्यादा बलदायिनी—मेरी माँ

मेरा जीवन बनाने में अनेकों के साथ-साथ माँ के भी अनन्त उपकार हैं । मुझे बहुत ग्रंथ पढ़ने को मिले हैं, जो अनुभव से भरे हैं और सत्संगति भी मिली है । उन सबको मैं एक पलड़े में रखता हूँ और माँ से मुझे साक्षात् भक्ति का जो शिक्षण मिला, उसे दूसरे पलड़े में रखकर तौलता हूँ तो वह दूसरा पलड़ा भारी लगता है । मुझे सबसे ज्यादा बल यदि किसीने दिया है तो वह है मेरी माँ । उसने मुझ पर अत्यन्त विश्वास रखा । उसका वजन अधिक होता है । हमारी माँ संसार में थी, लेकिन उसके चित्त में, उसकी वाणी में संसार नहीं था । भगवान् के भजन जब वह गाती थी तो अत्यंत प्रेम, भक्ति और तन्मय होकर गाती थी ।

माँ अगर पुरुष होती !

मुझ पर उसकी बहुत भक्ति थी । मुझमें बचपन से ही वैराग्य की प्रेरणा थी । नमक न खाना, बिस्तर पर न सोना, जूते नहीं पहनना इत्यादि प्रयोग मैं करता रहता था । मेरी माँ यह सारा देखती थी । एक दिन कहा : "विन्या, तुम वैराग्य का नाटक तो खूब करते हो, लेकिन अगर मैं पुरुष होती, तो बताती कि असली वैराग्य कया होता है ?" मतलब, स्त्री होने के कारण वैराग्य सधता

नहीं । स्त्रियों की गुलामी का सूचन भी उसमें था, अगरचे हमारे घर में पिताजी की ओर से सबको पूर्ण स्वातन्त्र्य दिया हुआ था । तो, माँ से मुझे बहुत सीखने को मिला । इसीलिए मैं कहता हूँ कि शिक्षण तो माँ के मुँह से मिलना चाहिए ।

मातृमुखेन शिक्षणम्

मेरे विचार में प्राथमिक शालाएँ स्त्रियों के हाथ में ही रहनी चाहिए । उनमें लड़के और लड़कियाँ एक साथ पढ़ें । अगर सारा प्राथमिक शिक्षण स्त्रियों के हाथ में रहेगा, तो बच्चों का

विकास ठीक-ठीक होगा, वे ठीक रास्ते लगेंगे। समाज को मर्यादा में रखने की भी कुछ शक्ति स्त्रियों में आयेगी । आज अगर स्त्रियों में उतनी योग्यता या शिक्षण नहीं है, पंचवर्षीय योजना में उसकी व्यवस्था होनी चाहिए । वस्तुतः पुरुषों में बच्चों को तालीम देने लायक कोई अक्ल नहीं दीखती । बड़े होने पर भले ही पुरुष उन्हें तालीम दे सकें, परन्तु प्राइमरी स्कूल के बच्चों के साथ कैसा व्यवहार किया जाय, यह पुरुष क्या जानें ? वह सारा-का-सारा क्षेत्र स्त्रियों के हाथ में आना चाहिए । साहित्य, तालीम, धर्म का आयोजन अदि क्षेत्रों में स्त्रियों को स्थान मिलना चाहिए ।

अध्यात्म-शिक्षण दिया जाय

जहाँ तक स्त्रियों की शिक्षा का सवाल है, उसमें अध्यात्म-ज्ञान पहले दिया जाय । हमारे यहाँ की स्त्रियाँ अध्यात्म-परायण होती थीं । महाभारत में सुलभा ने जनक को ज्ञान दिया है । इस तरह की और भी कहानियाँ हैं । इतना गौरव एक जमाने में हिन्दुस्तान में स्त्री का था । वह हालत आज नहीं है । पहली आवश्यकता अध्यात्म-ज्ञान की ही है । हम देह से अलग, अविनाशी, आत्मरूप हैं, परमेश्वर अन्दर विराजमान है, इसी जन्म में दर्शन सुलभ है, सारे जीव हमारे रूप हैं—इस अध्यात्म-विचार में बहनें प्रवीण हों । तालीम का सारा आधार आत्मा का ज्ञान हो । स्त्री-शिक्षण में सत्य-निष्ठा और जीवन-तपस्या की सख्त जरूरत है, ताकि स्त्री में मौजूदा समाज के खिलाफ बगावत करने की हिम्मत आये । जिसके अन्दर अध्यात्म-विद्या है, उसे सारी दुनिया भी नहीं दबा सकती । मेरा विश्वास है कि अध्यात्म-विद्या से जबरदस्त क्रांति की जा सकती है । पुस्तकों से मदद जरूर मिलती है । उत्तम ग्रंथ पड़े हैं, गीता है, उपनिषद् है, फिर आधुनिक जमाने के भी ग्रंथ हैं । लेकिन पुस्तकों से मेरा मतलब नहीं, मूल विचार से है । अगर वह मिलता है, तो आगे की बात अच्छी तरह चल सकती है ।

स्त्री और पुरुष-की शिक्षा में कुछ समान अंश रहता है तो कुछ दोनों का विशेष अंश रहता है । शिक्षा में स्त्री-पुरुष के लिए समान अंश बहुत अधिक है, विशेष अंश कम । पहले हम समान अंशों को देखें ।

मानव के नाते दोनों समान

स्त्री और पुरुष दोनों की आत्मा समान संस्कारवान् होती है । इस विषय में दोनों में कोई मतभेद नहीं । यह है पहली समानता । दूसरी समानता वासना- सम्बन्धी है । क्षुधा और तृष्णा आदि वासनाएँ दोनों में समान होती हैं । दोनों का सृष्टि के साथ का सम्बन्ध, यानी विज्ञान का सम्बन्ध भी समान है । एक को सृष्टि एक प्रकार की दिखती है और दूसरे को दूसरे प्रकार की, ऐसा तो है नहीं । यह हुई तीसरी समानता ।

इसलिए शिक्षा भी समान ही हो

इससे स्पष्ट है कि स्त्री और पुरुष की शिक्षा के अधिकांश अंश समान होते हैं । गुण-विकास के नियम भी दोनों के लिए समान ही लागू होते हैं। इसे ध्यान में रखकर मैं तो कहता हूँ कि स्त्री-पुरुष को समान शिक्षा मिलनी चाहिए और साथ ही मिलनी चाहिए ।

सह-जीवन है तो सह-शिक्षा क्यों नहीं ?

लोग पूछते हैं कि क्या सह-शिक्षा ठीक है ? लेकिन मैं नहीं समझता कि यह सवाल ही क्यों उठता है ? इसका उत्तर तो खुद ईश्वर ने ही दे दिया है । अगर वह सह-शिक्षा नहीं चाहता, तो कुछ घरों में केवल बेटे देता और कुछ घरों में केवल बेटियाँ, लेकिन उसने तो हर घर में दोनों दिये हैं । इससे ध्यान में आ सकता है कि ईश्वरेच्छा के अनुसार शिक्षण एकत्र ही होना चाहिए । शिक्षा के अवसर तो दोनों को समान देने ही चाहिए, फिर वे अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार ही बढ़ेंगे । कृत्रिम उपायों से लड़के-लड़कियों को अलग रखने से उनका विकास नहीं, विकार-पोषण होगा या अति एकांगी शिक्षा मिलेगी ।

रसोई-क्षेत्र से पुरुष बाहर क्यों ?

सारी शिक्षा में समान अंश तो अधिक हैं, फर्क सिर्फ कर्मयोग में आता है । शारीरिक श्रम के करण कुछ काम ऐसे होंगे, जो स्त्रियों और परुषों के भिन्न रहेंगे । लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि आजकल जिस प्रकार चल रहा है, उस प्रकार हरएक काम अलग ही निश्चित हो ।

उदाहरण के लिए रसोई के काम को ले लीजिये । सामान्यतः स्त्रियाँ ही रसोई बनाती हैं, लेकिन ऐसा नहीं होना चाहिए कि वह स्त्रियों का ही काम माना जाय । इसमें पुरुषों को भी प्रवीण बनना चाहिए । रसोई एक उत्पादक काम है । वैसे उसमें कोई नया उत्पादन नहीं करना होता । नया उत्पादन तो परमेश्वर ही करता है। मनुष्य तो केवल रूपान्तर करता है । जैसे गेहूँ से रोटी बना ली, लकड़ी से टेबल या कपास से कपड़ा बना लिया । लेकिन रसोई आखिरी क्रिया है । उसमें गलती नहीं चल सकती । शुरू की क्रिया में गलती हो, तो कम नुकसान होता है, आखिरी क्रिया में हो तो अधिक नुकसान होता है । सुसंस्कृत, संपूर्ण निर्दोष रखने के उत्पादक कार्य, रसोई से हम लड़कों को कैसे वंचित रख सकते हैं ? यह तो उन पर अन्याय होगा । इस प्रकार अगर हम लड़के और लड़कियों के कामों को अलग बना देंगे, तो समाज के टुकड़े हो जायेंगे और उसका एक अंग बोझरूप बन जायगा । लड़कों को रसोई-कर्म से नफरत नहीं होनी चाहिए। हालाँकि मैं यह मानता हूँ कि रसोई की प्रधान जिम्मेवारी स्त्री की रहेगी, लेकिन वह उन्हींका काम न समझा जाय । कर्मयोग में स्त्री-पुरुषों के कामों के प्राधान्य में अंतर पड़ जायगा, लेकिन वहाँ भी दो टुकड़े नहीं पड़ने देने चाहिए । नहीं तो उससे आत्मा ही खण्डित हो जायगी ।

रसोई की तो केवल एक मिसाल दी । घर के सब कामों में पुरुषों को अवश्य हिस्सा लेना चाहिए । वैसे ही बाहर के कामों में स्त्रियों को भी योग देना चाहिए । दोनों के कामों में भारी अंतर है । कौन किस पर अधिक जोर देता है, यही देखना है ।

आज लड़के-लड़कियों की अभिरुचि और शालेय विषयों के चुनाव में जो फर्क दिखायी देता है, उसका कारण है सामाजिक उपाधियाँ । रसोई, सीना- पिरोना इत्यादि विषय लड़कियों को अधिक पसन्द होते हैं, ऐसा कहना गौण ही है । मैंने ऐसी लड़कियाँ देखी हैं, जिनकी गणित में रुचि है । और रसोई बनाने का शौक रखनेवाला पुरुष तो मैं खुद ही हूँ । मुझे गणित की भी रुचि है । ऐसा एक भी विषय मुझे नहीं दिखा, जो मुझे अच्छा न लगा हो । आज के कृत्रिम वातावरण को यदि हटा दें और बेमतलब के निष्क्रिय बौद्धिक विषयों की पढ़ाई बन्द कर दी जाय,

तो मेरे समान सभी को सब विषय अच्छे लगने लगेंगे और पढ़ाई में स्त्री-पुरुष का भेद भी नहीं रहेगा ।

हमारे यहाँ तो स्त्री-पुरुष के साथ रहने के बारे में भी काफी सवाल उठते हैं । वातावरण पवित्र कैसे रहेगा—यही उसमें फिक्र होती है । पवित्रता की फिक्र तो मुझे भी है । जितनी आज है, उससे सहस्त्रगुनी पवित्रता में चाहता हूँ । क्योंकि जानता हूँ कि आज जो पवित्रता हममे है, वह ऊपर-ऊपर की है । मैं यह नहीं कहता कि समाज ने पवित्रता का कुछ भी रक्षण नहीं किया है । कुछ किया है, परन्तु दीवारें खड़ी करके । इससे तो पवित्रता का बहुत-सा आभासमात्र निर्माण हो सकता है ।

पवित्रता तो आंतेरिक वस्तु है । मैं तो मानता हूँ कि स्त्री-पुरुषों के एकत्र रहने से पवित्र बनने में मदद मिलनी चाहिए । लेकिन आज का वातावरण इसके विपरीत है । उसका कारण हमारा साहित्य है । मैं केवल अर्वाचीन साहित्य की बात नहीं कर रहा हूँ । वह तो शायद उसका परिणाम है । प्राचीन साहित्य, जिसमें धार्मिक माने गये साहित्य का भी मैं समावेश करता हूँ, उसके लिए जिम्मेवार है । साहित्य की दृष्टि ही कलुषित हो गयी है । उसे हमें फेंक देना होगा।

संस्कृत कवियों ने स्त्री को 'भीरु' कहा है । भीरु याने 'पापभीरु' होता, तो वह एक उत्तम विशेषण होता । लेकिन भीरु यानी 'कायर' का विशेषण उन्होंने प्रशंसा के रूप में स्त्रियों को भेट किया है । देनेवाले ने भले ही प्रशंसा के रूप में दिया हो, परन्तु लेनेवाले ने स्वीकार क्यों किया ? उसने स्वीकार किया है, इतना ही नहीं, सहर्ष स्वीकार किया है । आप कहेंगी कि यह सब पुरुषों ने किया है । तब तो जड़-चेतन की बात आप मानती हैं, यही अर्थ होगा । क्या सचमुच पुरुष चेतन और स्त्री जड़ है ? तब तो घड़ी की तरह वह उसे जैसा रखे, वैसी रहेगी ।

स्त्रियों के लिए ध्यान, भक्ति अनुकूल

स्त्रियों में पुरुषों से अधिक एकाग्रता होती है । यह एक कुदरती देन है। बाल-संगोपन इस गुण के बिना हो ही नहीं सकता । इस गुण के कारण स्त्रियों की अवस्था ध्यान-योग और भक्ति-योग के लिए अधिक अनुकूल है । कर्म-योग और ज्ञान-योग पुरुषों के लिए अधिक अनुकूल है ।

कर्मयोग में भी ऐसे काम, जिनमें अधिक एकाग्रता की जरूरत पड़ती है, स्त्रियाँ कुशलतापूर्वक कर सकती हैं । सबसे आखिर की प्रक्रियाएँ (Finishing) स्त्रियाँ अच्छी तरह से कर सकती हैं।

बाल-संगोपन आदि कुछ काम स्त्रियों के विशेष हो सकते हैं—हालाँकि इस विषय में भी ज्ञान तो दोनों का होना चाहिए । लेकिन पालन का ज्ञान स्त्री को अधिक होना चाहिए । बाकी सारा शिक्षण सर्वसामान्य ही चल सकता है ।

सांस्कृतिक क्षेत्र स्त्रियों के हाथ में हो

स्त्रियों को वे सरे क्षेत्र हाथ में लेने चाहिए, जो सांस्कृतिक माने जाते हैं । आज तक इन क्षेत्रों में प्रकट रूप में ज्यादातर पुरुषों का हाथ रहा है, अप्रकट रूप में स्त्रियों का हाथ रहा है । दुनिया के महान् काव्य, जिनका दुनिया पर असर है, चाहे वह वाल्मीकि रामायण हो, व्यास का महाभारत हो, होमर, दान्ते, मिल्टन आदि के काव्य हों, सब के सब पुरुषों ने लिखे हैं । वेद में थोड़ी स्त्रियाँ भी ऋषि हैं, जिन्होंने मन्त्र रचे हैं । फिर बीच में मीराबाई, अक्का जैसे दो-चार नाम हैं । परन्तु कुल साहित्य पर स्त्रियों का ज्यादा असर नहीं रहा है । अभी यूरोप में कुछ स्त्रियां लिखने लगी हैं । यह उनका सामाजिक कार्य माना जाता है ।

स्त्रियाँ आश्रम बनायें

इसके अलावा, स्त्रियों को विशेष काम यह करना चाहिए कि वे आश्रमों की रचना करें । गांधीजी, अरविन्द आदि ने आश्रम खोले, जिनमें स्त्री-पुरुष दोनों रहते थे । परन्तु किसी स्त्री ने ऐसा आश्रम नहीं खोला, जिसमें दोनो रहते हों । मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) के गुरुकुल ने, रवीन्द्रनाथ के शान्ति-निकेतन ने, श्री अरविन्द के आश्रम ने भारत पर जो असर डाला, वैसा असर देश पर डालनेवाली स्त्रियाँ क्यों नहीं निकल सकतीं ? स्त्री-पुरुष में जो भेद है, वह कल्पनामात्र माना जाता, अगर उससे समाज का काम ठीक चलता । परन्तु इधर तो पुरुषों की अक्ल का दिवाला निकला है । वे स्त्रियों से भी कहने लगे हैं कि तुम बन्दूक लेकर आओ । इसलिए इसके आगे वह पुराना बँटवारा नहीं चलेगा । अब स्त्रियों को हिन्दुस्तान पर असर डालने का काम उठा लेना चाहिए और वे उसे उठायेंगी, तो बहुत असर डाल सकती हैं ।

स्त्रियों पर घर का, बच्चों के पालन का जिम्मा है, जो एक बहुत बड़ा काम है । हम अपनी माता के प्रति बहुत ही कृतज्ञ हैं । तो वह उपकार तो अपार है । वह तो चलेगा ही । स्त्रियों का वह अधिकार कोई छीन नहीं सकता । अगर पुरुष वह अधिकार छीन सकते, तो छीनते । परन्तु परमेश्वर ने योजना ही ऐसी बनायी है कि बच्चा माँ के उदर से पैदा होता है, इसलिए वह पुरुषों के हाथ में आ ही नहीं सकता । वे स्त्रियों को इस पर से हटा नहीं सकते। बाकी कुल कामों से हटा रहे हैं । अगर स्त्रियाँ आश्रम-रचना करें, तो उनके कार्यों का समाज पर बड़ा भारी प्रभाव, स्थायी प्रभाव, सांस्कृतिक प्रभाव पड़ेगा ।

राष्ट्र-संरक्षण तक के काम स्त्रियाँ कर सकती हैं । अभी तक उसमें हिंसा का ही आश्रय लिया जाता रहा, इसलिए कम ताकतवाली होने के कारण स्त्रियों को उसमें नहीं लेते थे । लेकिन अहिंसा का नया रास्ता निकलने के बाद वह दिशा भी स्त्रियों के लिए खुल गयी है । समाज-रक्षण आदि कामों में तो स्त्रियों को अधिक हिस्सा लेना ही चाहिए । तभी दुनिया हिंसा से बचेगी । पुरुषों द्वारा यह क्षेत्र सँभालने के कारण द्वेष बढ़ा है । इस काम में स्त्रियों और पुरुषों का स्थान बराबरी का होना चाहिए । एक अत्यन्त विशेष क्षेत्र विषयों के लिए बच्चों की तालीम का है । बुनियादी तालीम स्त्रियों के ही हाथ में होनी चाहिए।

सिंह, व्याघ्र आदि प्राणियों में यह पाया जाता है कि सन्तान-रक्षा का भार तो मादा पर ही रहता है । वह अपने खाने के लिए शिकार भी खुद ही हासिल कर लेती है । प्राणियों की बुरी बातों का हम अनुकरण न करें, लेकिन अच्छी बातों का तो कर ही सकते हैं । आजीविका-संपादन की जिम्मेवारी से स्त्री को मुक्त होने की जरूरत नहीं है । हाँ, स्त्रियों को उनके कामों में जरूरी रिआयतें मिलनी चाहिए । आज स्त्रियों को कम मजदूरी देने का जो रिवाज चल रहा है, वह तो बिलकुल उल्टा और उन पर अन्याय है । स्त्रियों को तो मजदूरी ज्यादा देनी चाहिए, क्योंकि उन्हें घर का भी सब देखना होता है। बच्चों का लालन-पालन करना होता है । ज्यादा तो नहीं ही देते, बराबरी का भी नहीं देते और फिर स्त्रियों को भार समझते हैं, क्योंकि काम की प्रतिष्ठा ही नहीं है ।

प्रश्न : मेरी माँ कहा करती थी कि लड़कियों को पाठशाला जाने की क्या जरूरत है ? उनकी शाला तो पति का घर ही होता है ।

विनोबा : मैं स्वीकार करता हूँ कि पति के घर में भी स्त्री का काफी शिक्षण होता है, लेकिन यह खयाल गलत है कि स्त्री का धर्म पुरुषों की सेवा करना ही है । बिलकुल गलत खयाल है । आत्मा में स्त्री और पुरुष का भेद नहीं होता ।

यह ठीक है कि मातृ-भावना भी एक महान् कर्त्तव्य है । उसकी योग्यता भी मैं कम नहीं समझता । हमारे सीता, सती-सावित्री आदि जो आदर्श हैं, उनमें मूल में ब्रह्मचर्य का आदर्श है । पुरुष ईश्वर का नाम लेता हुआ दुनियाभर में घूमता है, उसी प्रकार स्त्रियों में भी कोई आदर्श होना चाहिए । मीराबाई का एक किस्सा जरूर हमारे सामने है । लेकिन उसे तो लोगों ने हरि के पीछे पागल समझ लिया । इस अलौकिक और अद्वितीय किस्से ने नारी को स्वातन्त्र्य दिलाने में कोई मदद नहीं की है । मीरा के उदाहरण का किसीने अनुकरण नहीं किया ।

मैं तो मानता हूँ कि स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य, संन्यास, वेदाभ्यास, आत्मचिन्तन आदि का स्वतन्त्र रूप से अधिकार होना चाहिए । इसके बिना हमारे प्रगति के मार्ग में बहुत बड़ी रुकावट आ गयी है । हिन्दू-धर्म में स्त्रियों को वैधव्य की स्थिति में ब्रह्मचर्य का अधिकार दिया गया है । लेकिन उतना काफी नहीं है । यह तो लाचारी है ।

स्त्रियों में वात्सल्य-भाव स्वाभाविक तौर पर रहता है । अगर वे माता बनेंगी, तो मैं उनका दोष नहीं निकालूँगा, बल्कि उनका गुण ही गाऊँगा । लेकिन अगर कोई स्त्री ब्रह्मचारिणी रहना चाहे, तो उसे रोकना क्यों चाहिए ? लड़की मात्र को दूसरे के घर भेजने की वृत्ति ठीक नहीं है ।

•

१५. ब्रह्म-विद्या-मन्दिर—लोक-यात्रा

भूदान-आन्दोलन के बीच मानसिक संशोधन करने का बहुत मौका मिला । उसमें मुझे बार-बार लगता रहा कि शंकर और रामानुज जैसे एक परम्परा छोड़ गये, जिसका अध्ययन और अनुसरण हजार-हजार वर्षों के बाद भी आज हिन्दुस्तान में चल रहा है । उनकी कोटि की विभूतियाँ इस जमाने में रामकृष्ण परमहंस और गांधीजी ये दो हुईं । श्री रामकृष्ण, अरविन्द, स्वामी दयानन्द, तिलक और टैगोर—इन सबका अध्ययन करने का मौका मुझे मिला और मैंने अपनी पूर्व-परम्परा के उत्तम फलस्वरूप एक परिपूर्ण जीवन-दर्शन गांधीजी के विचारों में पाया ।

गांधी-ज्ञान-परम्परा चले

मेरे मन में बार-बार आता रहा कि इतना सांगोपांग और मूल्यवान् विचार हमें मिला है, तो उसकी ज्ञान-परम्परा चलनी चाहिए । मुझे यह विचार ही घुमा रहा है । तो, इस विचार का ज्ञान-बीज गहरा कैसे जायगा—इस पर मैं सोचता रहा । मेरे ध्यान में आया कि शंकर और रामानुज के पास जो चीजें थीं, उनमें से एक चीज की कमी गांधीजी के पास रह गयी । वे दोनों मैस्टिक थे, अनुवभवी भक्त थे, ज्ञानी थे, अलावा इसके दोनों समाज-सुधारक और कर्मयोगी थे । दोनों काफी घूमे, परन्तु जीवन के हर पहलू को हाथ में लेने की उन्हें जरूरत नहीं पड़ी, जिसकी पारतन्त्र्य के कारण गांधीजी को आवश्यकता पड़ी । परिणामस्वरूप कर्मयोग का माद्दा उनमें अधिक रहा । यह लाभ उन दोनों को नहीं मिला था, लेकिन जैसे यह लाभ हुआ, वैसे एक न्यूनता भी रह गयी । सब धर्मों के सारभूत तत्त्व अहिंसा, सत्य आदि को हमने उठा तो लिया, पर जो मूल में उसकी बुनियाद है—ब्रह्म-विद्या की, वह अछूती रह गयी । उसे नहीं उठाया ।

परिपूर्ण दर्शन में ब्रह्म-विद्या की कमी

बचपन से मेरा झुकाव ब्रह्म-विद्या की तरफ था । उसकी कमी महसूस होती थी । बापू के जाने के बाद वह ज्यादा महसूस होने लगी और अब मन में यह निश्चय हो गया है कि इस भूमिका

पर हम नहीं पहुँचते हैं, तो ये ऊपर-ऊपरवाली चीजें टिकेंगी नहीं । कम-से-कम हिंदुस्तान में तो नहीं टिकेंगी । क्योंकि हिन्दुस्तान तत्त्वज्ञान की भूमि है ।

ब्रह्म-विद्या-मन्दिर आवश्यक

इसलिए मुझे लगा कि इस चीज की कमी इसमें रह गयी है । उसकी पूर्ति किये बिना हमारा यह विचार अखण्ड प्रवाह में नहीं बहेगा । यह उत्तम विचार है, इसलिए दुनिया के सब सज्जनों को प्रेरणा देगा, यह अलग बात है। किन्तु उसका जो प्रवाह बहना चाहिए, वह नहीं बहेगा । इसका निर्णय मेरे मन में हुआ और इस बात का विचार किये बिना कि मुझमें उतनी शक्ति है या नहीं है, मैंने ब्रह्म-विद्या-मंदिर शुरू करने का तय किया । शक्ति से भक्ति श्रेष्ठ है । मुझमें शक्ति उतनी नहीं होगी, परन्तु उस विचार की भक्ति मुझमें अवश्य है । उसी भक्ति पर दारोमदार रखकर अब ब्रह्म-विद्या-मन्दिर की स्थापना होने जा रही है ।

मन्दिर का संचालन स्त्रियों के हाथ

फिर, यह भी मुझे लगा कि ऐसे आश्रम की स्थापना में कुल व्यवस्था बहनों के हाथ में होनी चाहिए । यह भी एक प्यास मेरे मन में थी । स्त्रियों की साधना हमेशा गुप्त रही है । उसका प्रभाव किसी-न-किसी व्यक्ति पर जरूर रहा है, परन्तु उस साधना के प्रकट होने की भी बहुत जरूरत है । उसके बिना विश्व-शान्ति अकेले पुरुष नहीं कर सकते । ब्रह्म-विद्या में स्त्री-पुरुष भेद नहीं रहता, इसलिए दोनों उसमें रहेंगे ।

यह इस जमाने की माँग है, नहीं तो बुद्ध ने तो स्त्री को प्रथम प्रवेश नहीं दिया था, और दिया तो यह कहकर कि 'मैं एक खतरा उठा रहा हूँ।' लेकिन वह तो पुराना जमाना था । मैं तो इसमें खतरा मानता हूँ कि पुरुष के साथ स्त्री को स्थान न हो । उसमें ब्रह्म-विद्या अधूरी रहती है, उस ब्रह्म के टुकड़े-टुकड़े होते हैं । मैं स्त्रियों के हाथ में संचालन देकर उस ब्रह्म के उलटे टुकड़े करने नहीं जा रहा हूँ । जमाने की आवश्यकता है, इसलिए संचालन स्त्रियों के हाथ में रहेगा, तो वह सुरक्षित ही रहेगा ।

मित्रों से मेरी प्रार्थना रहेगी कि ब्रह्म-विचार की बुनियाद का संशोधन हो न हो, हम अपने जीवन को उस दिशा में मोड़ने की कोशिश करें ।

चित्त को नया परिवेश मिले

दुनिया में आज सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्र में, आज की समाज-रचना कायम रखकर, कुछ हलचलें चल रही हैं । लेकिन विज्ञान-युग में वे हलचलें निकम्मी साबित होंगी। कुछ हलचलें ऐसी भी चलती हैं, जैसी हम चला रहे हैं कि समाज-रचना की बुनियाद बदलें । 'मैं' की जगह 'हम' की स्थापना करें, परिवार बड़ा बनायें और विश्व को कुटुम्ब समझें । ग्रामदानादि द्वारा जो काम हो रहा है, उसमें क्रांति का विचार है । यह जो दूसरा काम है, उसकी बुनियाद है—नया मन, परिवर्तित मन । पुराना मन पुराने ढंग से सोचता है । राग-द्वेष, मानापमान, ऊँच-नीच-भाव, अहंकार, वासना आदि कायम रखकर हम सोचते हैं । वैसी आदत से चित्त को छुड़ाना चाहिए । चित्त को एक नया परिवेश प्राप्त होना चाहिए ।

यह नया परिवेश चित्त को प्राप्त हो और चित्त विकारों में न जाकर, निर्विकार भूमिका में रहे और शक्ति का जो स्त्रोत अन्दर आत्मा में है, उसका स्पर्श हो। इस प्रकार के चित्त का नमूना कहीं देखने को मिलेगा, तो वह विश्व में फैल सकता है । उसकी चाह भी विश्व को है । ब्रह्म-विद्या-मन्दिर में इस चीज की अल्प-सी कोशिश चलती है । बहनें बहुत ज्यादा विधि-निषेधात्मक मार्गदर्शन के बिना कुछ चला रही हैं । चित्त को नया परिवेश मिलेगा तो उससे बहुत ज्यादा काम बनेगा, उस कल्पना पर यह ब्रह्म-विद्या-मन्दिर खड़ा है ।

जीवन के दो प्रवेश-पथ

जीवन में दो प्रवेश पथ हैं, दो दृष्टिकोण हैं । एक यज्ञ और दूसरा तप। यज्ञ होता है, कर्म-प्रधान और तप होता है, वृत्ति-संशोधन-प्रधान या संक्षेप में कहना हो तो वृत्ति-प्रधान । दोनों में दोनों का खयाल रखना पड़ता है । जो यज्ञ-मार्ग से जाते हैं, वे समाज के अनेक कामों में 'यज्ञ' समझकर शरीक होंगे और उनकी कोशिश रहेगी कि वृत्ति निर्मल रहे । वे यज्ञ करते हुए उसमें

वृत्ति का शोधन करते रहेंगे । यह यज्ञ-पथ है । दूसरा तप-पथ है, जिसमें वृत्ति-शोधन ही प्रधान रहेगा और उसके लिए कर्म किया जायगा ।

ब्रह्म-विद्या-मन्दिर में वृत्ति-शोधन

यज्ञ-पथ में कहीं अगर उद्वेग-भावनाएँ पैदा होती हैं तो उसके लिए चित्त-शुद्धि से और विकर्म जोड़ दिये जाय, लेकिन मूल कर्म नहीं छूटेगा । लेकिन तप-पथ में किसी काम में विकार पैदा होने का यत्किंचित् भी अवकाश मिलेगा, तो वह कर्म टाला जायगा । वृत्ति के अनुकूल जितने कर्म हैं, उतने ही किये जायेंगे ।

ब्रह्म-विद्या-मन्दिर में वृत्ति-प्रधान दृष्टि रही है । वहाँ कर्म तो हो, लेकिन वृत्ति-शोधन की दृष्टि से हो । जैसे प्रयोगशाला में विशिष्ट प्रयोग होते हैं, जहाँ संशोधन किये जाते हैं और उनके नतीजे समाज पर लागू करते हैं, ऐसा ही वह स्थान है । कुछ लोग सहजभाव से वहाँ आये हैं । वे बहुत ऊँचे हैं, ऐसा नहीं । दूसरी दृष्टि रखकर आये हैं । एक तरफ अत्यन्त निर्मल कर्म और दूसरी तरफ अत्बन्त निर्मल वृत्ति । यानी दोनों बाजू अत्यन्त निर्मलता आवश्यक है । ये दोनों प्रयोग हम भारत में कर रहे हैं ।

चित्त निरुपाधिक बना रहे

ब्रह्म-विद्या-मंदिर में पाँच-छह घंटे काम के रखे गये हैं । बाकी घूमना आदि हो । दो घण्टे तो व्यक्तिगत जीवन के लिए, जैसे अपनी कोठरी साफ करना, कपड़े धोना आदि । सुव्यवस्थित ढंग से पूरी नींद ली जाय, कपड़े स्वच्छ रहें, उसमें कंजूसी न करें । शेष बारह घण्टे बुद्धि और शरीर से काम करें। दो घण्टे अकर्म के लिए, जिसमें जिसे जो सूझे, जो सहजभाव से करने की इच्छा हों, करे । साधक अपनी वृत्ति के अनुसार उसका उपयोग करेगा । उसे व्यर्थ नहीं गँवायेगा। वह अपनी रुचि के अनुसार खेल सकता है, जा सकता है, घूम सकता है, लिख सकता है । इसमें दृष्टि यह है कि बहनें ब्रह्म-विद्या की साधना करें, परन्तु उन पर आजीविका की कोई चिन्ता न हो। वैसे वहाँ बहनें खेत में और प्रेस में काम करती हैं, भोजनालय चलाती हैं और बीमारों की सेवा भी करती हैं, परन्तु उन पर आजीविका की कोई जिम्मेवारी नहीं है।

इतना काम भी इसलिए कि चित्त-शान्ति रहे । प्राणायाम भी चित्त को शान्त करने के लिए और खेती भी चित्त को शान्त करने के लिए । जीवन को अन्य कोई जिम्मेवारी के बिना चित्त कितना ऊँचा उठाया जा सकता है, इसका यह प्रयोग है ।

इस प्रयोग को बारह साल हो गये । तो ब्रह्मचर्य, ऐच्छिक दारिद्र्य और भक्ति—इन तीन चीजों में कोई खास कमी बाह्यापेक्षा से यहाँ नहीं है । बाह्यापेक्षा से इसलिए कहा कि किसीको अपने मन में अन्तर की परीक्षा करके कभी मालूम हो सकती है ।

ब्रह्म-विद्या की परीक्षा

आत्मा परिशुद्ध है और वह सब जीवों में निहित है, इसलिए सब समान हैं—इस तरह जो लोग सबको समान दृष्टि से देखेंगे, वे ब्रह्म-विद्या में उत्तीर्ण हो जायेंगे । परन्तु जिनकी आँख ऐसा नहीं देखेगी, वे चाहे जितना सुन्दर काम करेंगे तो भी ब्रह्म-विद्या में वे निष्फल साबित होंगे । ये सारी बहनें भी सुस्त, जड़ और आलसी निकलेंगी और उनके निश्चित जीवन का परिणाम गैरजिम्मेवारी और बेखबरी में आयेगा तो वे भी नापास सिद्ध होगी । इसके बदले यदि उनके दिल में सबके लिए समानभाव और प्रेम पैदा होगा, उनका चित्त शान्त होगा, आत्मा में वे लीन हो जायँगी तो वे ब्रह्म-विद्या में पास हो जायेंगी ।

अखतरा में खतरा होता है

बहनों का यह प्रयोग मानसिक (Psychological) है । वह सफल होगा तो उसमें से सर्वोत्तम चीज निकलेगी, यदि वह सफल नहीं हुआ तो उस प्रयोग का बोझ समाज पर पड़ा, ऐसा कहा जायगा। यह दूसरा प्रयोग खतरनाक है । जहाँ-जहाँ मानसशास्त्र के प्रयोग करने होते हैं, वहाँ ऐसे खतरे उठाने पड़ते हैं । विज्ञान की नयी-नयी खोजों के पीछे करोड़ों रुपये खर्च किये जाते हैं । उसमें से कोई निष्पत्ति होगी या नहीं, पहले से नहीं कहा जा सकता । निष्पत्ति का विचार किये बिना प्रयोग करने पड़ते हैं। वैसा ही मानसशास्त्र के प्रयोगों में होता है। जो लोग जोखिम उठाने के लिए तैयार होंगे, वे ही ऐसे प्रयोग में शामिल होंगे ।

सामूहिक समाधि

ब्रह्म-विद्या-मन्दिर बहुत गहरी चीज है । उसमें से शून्य भी निकल सकता है और अनन्त भी । लेकिन शून्य निकलना सम्भव नहीं, क्योंकि बहनें काम कर रही हैं, कुछ न कुछ आदर्श समाज के सामने आ ही जायगा । इतनी बहनें ब्रह्मचर्य व्रत लेकर एक साथ इकट्ठा रहती हैं, जिनमें सब जातियों की, सब धर्मों की बहनें हैं । वे शरीर-परिश्रम करती हैं । और शरीर-श्रम करके अपना कमाया हुआ खाती हैं, भगवान् का नाम लेती हैं, इसलिए बिलकुल शून्य तो नहीं बनेगा।

लेकिन यह प्रयोग गहरा है । मैंने तो यहाँ तक कहा कि यहाँ से कोई मीरा या मुक्ता निकले, इससे बाबा को प्रसन्नता नहीं होगी । बाबा की अपेक्षा यह है कि यहाँ सामूहिक समाधि हो । बहुत बड़ा शब्द हो जाता है । भारत में पाँच बहनों के नाम मशहूर हैं—मीरा, ललला, अक्का, मुक्ता और आण्डाल। परन्तु वे शास्त्रकार नहीं बनी हैं । शास्त्रकार जितने बने, सब पुरुष ही थे । मैं यहाँ तक अपेक्षा करता हूँ कि अभी तक ब्रह्म-विद्या का जो शास्त्र बना, जो पुरुषों ने बनाया है, वह एकांगी बना, उसमें संशोधन हो और संशोधित ब्रह्म-विद्या दुनिया के सामने आये और वह काम बहनों के द्वारा हो । अपेक्षा करना बाबा के हाथ में है, फलश्रुति भगवान् के हाथ में है ।

प्रतिपर्व रसोदयम्

हजारों वर्षों के बाद यह घटना हुई है कि ब्रह्म का नाम लेकर सब छोड़कर बहनें इकट्ठा हुईं हैं । ब्रह्म में तो स्त्री-पुरुष का भेद होता नहीं है, देह-तत्त्व स्त्री-पुरुष में समान ही है । वैसे ही आत्मतत्त्व भी । लेकिन इतने दिन जो ब्रह्म की उपासना हुई, वह ज्यादातर पुरुषों ने की । वेदान्त का विचार ज्यादातर पुरुषों के द्वारा फैला। इसलिए सारी ब्रह्म-विद्या ही एकांगी बनी । 'माया', 'प्रकृति' ये शब्द स्त्रीलिंगी और 'पुरुष-आत्मा' यह शब्द पुलिंग—बस, इतने आधार पर स्त्री माया-प्रतिनिधि और पुरुष आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि, ऐसा एक तत्त्वज्ञान ही भारत के अनेक तत्त्ववेत्ताओं ने और कवियों ने प्रतिपादित किया है । इसलिए बड़ी भूल हुई है । सारी ब्रह्म-विद्या ही एकांगी बन गयी। पुरुषों की आसक्ति का भी केन्द्र स्त्री बनी और विरक्ति का भी वह ही केन्द्र बनी और उसकी भक्ति का केन्द्र भी वही बनी । स्त्रियों के बारे में आसक्ति का कवि वर्णन करें, उनके बारे

में विरक्ति वेदांती सिखायें और उनके बारे में भक्ति, 'राधा-कृष्णादि' सांप्रदायिक रूढ़ करें—इस एकांगी चिंतन का निरसन तभी होगा, जब स्त्रियाँ ही ब्रह्म-विद्या को रूप देंगी । भारतीय ब्रह्म-विद्या का स्वरूप परिष्कृत होने के लिए काफी गुंजाइश है । नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी को पीछे छोड़कर आगे नही बढ़ेगी तो ब्रह्म-विद्या फिसलने लगी, ऐसा होगा । इसलिए 'प्रतिपर्व रसोदयम्' इस वचन के अनुसार ब्रह्मविद्या-काण्ड उत्तरोत्तर अधिकाधिक रसमय बनना चाहिए ।

जंगम ब्रह्म-विद्या-मन्दिर—लोक-यात्रा

हिन्दुस्तान स्त्री-शक्ति में पिछड़ा हुआ है । खासकर बिहार, उत्तर-प्रदेश, मध्य-प्रदेश, राजस्थान—ये प्रान्त पिछड़े हुए हैं । केरल, गुजरात, महाराष्ट्र और असम आगे हैं । असम में स्त्री-शक्ति काफी संगठित है । लोगों के मन में उनके लिए आदर, सम्मान है। उसका मुख्य कारण अमलप्रभाबहन हैं । वे काम कर रही हैं और उनके इर्दगिर्द बहनों का निष्ठावान् दल तैयार हुआ है। स्त्री-शक्ति जागृत करनी हो, तो वह आध्यात्मिक दृष्टि से ही हो सकेगी। यह दृष्टि लेकर धर्मसंस्थापना का बुनियादी काम करने के लिए स्त्रियों को आगे आना चाहिए। इसलिए हमनें बहनों की भारत-यात्रा की बात सामने रखी है और चार बहनों की लोक-यात्रा भारतभर में घूम भी रही है ।

हिन्दुस्तान की ब्रह्म-विद्या में बहनों का योगदान कम रहने से ब्रह्म-विद्या एकांगी बनी है । उसको पूर्ण बनाना है । सामाजिक आक्रमण का सामना करने की शक्ति स्त्रियों में जगनी चाहिए और थोड़ी जगी भी है । लेकिन ब्रह्म-विद्या का ही आदेश लेकर स्त्रियाँ निकली हों, ऐसा अब तक हुआ नहीं । ऐसी यह पहली ही 'लोक-यात्रा' है। 'लोक-यात्रा' के नाम में यात्रा के पीछे की प्रेरणा, यात्रा का क्षेत्र और कार्य संज्ञित हुआ है। उसकी गाइड लाइन रहेगी—प्रेम, संयम, शील और शान्ति।

•

संदर्भ-तालिका

(प्रत्येक प्रकरण में जिन प्रवचनों में से अंश लिये गये हैं, उनकी तारीख, समय तथा स्थान यहाँ दिये गये हैं । इनके अलावा, 'स्त्री-शक्ति' 'बहनों ने'—आदि किताबों से भी सामग्री संकलित की गयी है—सं०)

१

नवम्बर १९४६ 'महिला-आश्रम' पत्रिका

२१-१२-१९५८ साबरमती

मार्च १९६१

जनवरी १९७३-पवनार

२३-२-१९४७-महाराष्ट्र धर्म

गांधी जैसा देखा-समझा विनोबा ने

महिलाश्रम पत्रिका—नवम्बर १९४६

५-१२-१९५७ कानेहल्ली, मैसूर

१-१०-१९५७ बेल्लार-मैसूर

३१-५-१९५८ महाराष्ट्र

२८-१०-१९५८ गुजरात

—१९५६ तमिलनाड-पदयात्रा में

मैत्री ३-पृ० ७५४

मैत्री ५ पृ० ५५१

मैत्री ४ पृ० ४८४

भू० पु०—७-११-९

भू० पु०—७-२५-१०

भू० पु०—१०-२९-४

भू० पु०—१२-३३-१

भू० पु०—१५-६-२

भू० पु०—१६-९-३

२

१३-८-१९७३ पवनार

३१-५-१९५८ पंढरपुर

२४-११-१९५२ लोहरदगा

नवम्बर १९४६ महिला-आश्रम-पत्रिका

२१-१२-१९५८ साबरमती

१६-१०-१९५७ बंगलोर

२८-१०-१९५८ सोखड़ा

१३-८-१९७३ पवनार

३

अगस्त-सितम्बर-कस्तूरबाग्राम-इन्दौर

४

मैत्री ३- ६०७

३- २९७

३-१०००

३-५१९

३-१०६५

५-२८३

७-८५५

१०-३२२

२०-१-१९५५ मेटिया (बंगाल)

१५-११-१९५६ तमिलनाड

१७-१२-१९५७ मैसूर

११-५-१९५८ कोल्हापुर

१-८-१९६० इन्दौर

१३-८-१९७३ पवनार

विनोबा-चिन्तन ५-९७

७-२७-८ भूमिपूत्र

२५-३१-१५ भूमिपूत्र

९-२९-१ भूमिपुत्र

९-३६-३ भूमिपुत्र

मैत्री- ३ पृ० २९७

३ पृ० १०००

९ पृ० ५१७

पृ० ५१९

३ पृ० १०६५

७ पृ० ८५५

५

२६-२-१९५९-हटुंडी (अजमेर)

भूमिपुत्र १६-२-१

१४-३-१९६६ जमशेदपुर

२६-४-१९५१ तुरपल्ली

१९६३-बंगाल यात्रा

१७-१-१९७० गोपुरी

३१-१२-१९७० पवनार

मैत्री-व० ७ पृ० ३५३

मैत्री-व ० ८ पृ० २९५

१९६२-असमयात्रा

२०-१०-१९४६ हरिजन

मैत्री ९-६२९

२३-२-१९४९ महाराष्ट्र धर्म

२७-८-१९६० इन्दौर

१८-१०-१९५७ मैसूर

३१-५-१९५८ पंढरपुर

मैत्री ३ पृ० १२ १९९५

१६-५-१९५४ (शाहाबाद)

२२-१०-१९५३ जमालपुर

अप्रैल-१९५१ सर्वोदय

१६-६-१९५४ पखनाहा (चंपारन)

मैत्री—३ पृ० ७१५

मैत्री—३ पृ० १०६०

मैत्री—९ पृ० २०८

मैत्री—६ पृ० ६०

मैत्री—७ पृ० १५८

मैत्री—७ पृ० ३५३

मैत्री—१० पृ० ७३९

मैत्री—१० पृ० ३२२

भूमिपुत्र १७-१५-४

१२-१९-११

६

दिसम्बर १९५८—गुजरात

मैत्री ९-५१७

९-५२०

१२-९-१९७२ पवनार

२०-२-१९६६ जमशेदपुर

२-४-१९६५

७-५-१९६५

७-१-१९६५

२१-५-१९६५

२८-८-१९६०

२०-८-१९६०

१३-३-१९५६ पेदपाडु (कर्नूल)

मैत्री ७ पृ० २३३

मैत्री ७ पृ० ४९३

मैत्री ४ पृ० ४२४

मैत्री १० पृ० ७५६

भूमिपुत्र-५-३०-१०

भूमिपुत्र-४-१४-७

भूमिपुत्र-२०-५-७

भूमिपुत्र-७-११-८

भूमिपुत्र-१२-१२-९

भूमिपुत्र-१२-२७-९

भूमिपुत्र-१२-३२-६

भूमिपुत्र-२०-८-४

७

३१-५-१९५८ पंढरपुर

२८-८-१९६० इंदौर

१६-९-१९७३ पवनार

२८-१०-१९५८ गुजरात

११-१०-१९५६ वड्डुनपालेयम्

मैत्री-३ पृ० १०२४

मैत्री-३ पृ० ७५५

८

२८-२-१९५९ अजमेर

विनोबा चिंतन ३ पृ० १७

विनोबा चिंतन ३ पृ० १३५

विनोबा चिंतन २ पृ० ६०

विनोबा चिंतन २ पृ २९८

९

१६-१०-१९५७ बँगलोर

३१-७-१९५८ पंढरपुर

१८-१०-१९६० बैतुल

३१-८-१९५८ पंढरपुर

२०-२-१९६१ हुसुलदंगा-बंगाल

२६-९-१९५७ मैसूर

६-७-१९५८ राजूरी

२०-८-१९६० इंदौर

मैत्री-११ पृ० २८५

भू० पु० ७-१९-४

भू० पु० ७-१९-९

भू० पु० ४-३१-१

भू० पु० १५-६-२

भू० पु० १६-९-३

भू० पु० १६-३५-२

भू० पु० ७-५-४

भू० पु० ७-७-७

७, ७-९-३

१०

मैत्री-९-१७७

जनवरी १९७३-पवनार

२८-२-१९५९ अजमेर

६-७-१९५८ राजूरो

मैत्री १०-१

मैत्री-११-३

११

८-७-१९५८ हिरापुर

मैत्री—११-३

मैत्री-६-४४५

भूमिपुत्र-७-२८-७

मैत्री-११-१९६

१२

२६-१-१९४७ हरिजन

११-४-१९५८ गोपुरी

५-११-१९४६ महिलाश्रम, वर्धा

१६-१०-१९५७ बंगलोर

मैत्री-९ पृ० १०६६

१३

१५-७-१९५७ पराप्पडी

२२-२-१९६६ जमशेदपुर

२८-२-१९६० पंजाब

४-५-१९६३ आरामबाग

भूमिपुत्र-७-३१-३

७-१-१९६९ राजगीर

३-५-१९६३ बंगाल यात्रा

भूमिपुत्र-७-१२-११

१४

मैत्री-९-७१९

२१-६-१९६३

८-७-१९५८ (राजूरी) (बीड)

१४-८-१९५४ (कस्तूरबा-दर्शन)

अप्रैल १९५१-सर्वोदय

मैत्री-७-७७५

-७४९

२८-१०-१९५८ सोखड़ा

१-१-१९५५ बलरामपुर

१७-७-१९६५ पवनार

४-५-१९५२ सफदरगंज (बाराबंकी)

२७-८-१९५२ काशी विद्यापीठ

२६-५-१९५८ पंढरपुर

२६-९-१९५७ मैसूर

१७-१२-१९६० रमरेपुर (वाराणसी)

विनोबा चिंतन-५ पृ० ३९२-४१६

१५

२४-८-१९६५ पवनार

मैत्री ८-३१३

मैत्री-९-१२१

१३-३-१९५९ काशी का नाटा, सीकर

मैत्री-३ पृ० ३१३

* * * * *